ओ३म्

स्वामी दयानन्द सरस्वती

सचित्र आदर्श जीवन-चरित्र



नवीन परिवर्तित ९वाँ संस्करण

दयानन्द संस्थान
नई दिल्ली-११०००५

जन-ज्ञान प्रकाशन का १२९वाँ पुष्प

जन-ज्ञान प्रकाशन
१५६७ हरध्यानसिंह मार्ग
करौल बाग, नई दिल्ली-५

दूरभाष ५६६६३९

—सम्पादक
पंडिता राकेश रानी

●

श्री देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय, स्वामी सत्यानन्द सरस्वती
व प० लेखराम लिखित जीवन चरित्रो के आधार पर लिखित

मूल्य केवल २ रु० : सजिल्द ४) रु०

आर्यसमाज स्थापना शताब्दी तक प्रत्येक ऋषिभक्त इस जीवन चरित्र की कम से कम २ प्रतियां प्रति मास बांटे

मुद्रक—सैनी प्रिन्टर्स, पहाड़ी धीरज, दिल्ली-६

भूमिका

मानव उद्धारक दयानन्द

इतिहास के पृष्ठो मे क्या कोई ऐसा व्यक्ति आपको खोजने पर भी मिलेगा जिसने मनुष्य को मनुष्य बनाकर धरती पर रहना सिखाया हो। वर्ग, देश, जाति और काल की समस्त दीवारो को गिराकर जिसने ससार के प्रत्येक मनुष्य को एक ईश्वर का पुत्र होने के नाते भाई बताकर मनुष्य और मनुष्य के मध्य खडे समस्त भेदभावो को समाप्त कर एक साथ सुख-दुःख बाँटकर प्यार से जीवन बिताने की प्रेरणा दी हो। सारा इतिहास ढूंढ़ लीजिए, स्वामी दयानन्द के सिवा और कोई महापुरुष आपको ऐसा न मिलेगा।

स्वामी दयानन्द अपने ढग के अकेले महापुरुष थे। उन्होंने धरती के प्रत्येक मनुष्य को ऐसा रास्ता दिखाया है जिस पर चलकर मनुष्य दुःख और अशान्ति से छुटकारा पाकर प्रेम, शान्ति और आनन्द से हँसता हुआ अपनी जीवन-यात्रा पूरी कर सकता है। स्वामी दयानन्द ऐसे देवता थे जिन्होंने प्यार का मन्त्र देकर भेदो को मिटाया और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे ऐसा मार्ग-दर्शन दिया जो युक्ति, तर्क और विज्ञान की कसौटी पर खरा उतरता है।

आधुनिक युग को प्रकाश की पहली किरण देने वाले महापुरुष स्वामी दयानन्द थे। वे प्रत्येक पहलू से महान् क्रान्तिकारी थे। उनकी क्रान्ति सर्जक थी, प्रेरक थी, शान्ति और प्रेम के अस्त्र से बुद्धि का विकास उनका इष्ट था। वे क्रान्ति चाहते थे, पर न राज्य की, न नाम की, अपितु केवल विचारो की। प्रत्येक मनुष्य के सोचने का ढग बदलना ही उनका लक्ष्य था।

वे मनुष्य की एक जाति मानते थे—मानव जाति, एक धर्म—मानव धर्म, और उनका यह विज्ञान-तर्क-सगत विश्वास था कि 'ज्ञान' का सम्पूर्ण आधार सृष्टि के आदि मे प्रभु-प्रदत्त वेद की पवित्र ऋचाओ मे वर्णित है। उन्होंने अपूर्व पाडित्य से यह सिद्ध किया कि वेद सब सत्य विद्याओ का पुस्तक है और उसमे कोई भी बात सत्य, विज्ञान, युक्ति और प्रकृति के नियमो के विपरीत नही है।

स्वामी दयानन्द का यह दृढ़ विश्वास था कि जब तक मनुष्य को मनुष्य से अलग करने वाली, भेदभावो की प्रतीक मजहब की दीवारें रहेगी, जब तक मनुष्य इस्लाम, ईसाइयत, यहूदी और बौद्ध आदि मतो मे बँटा रहेगा तब तक ससार मे झगडे रहेगे। इसलिए उनकी इच्छा थी कि इन सभी मजहबो की हस्ती को, जिन्होने न जाने कितने इन्सानो का खून बहाया है, धरती से मिटा दिया जाए और मनुष्य बस मनुष्य बन कर धरती पर रहे।

स्वामी दयानन्द ने ज्ञान के क्षेत्र मे जो दर्शन दिया उसका आधार अध्यात्मवाद व भौतिकवाद का समन्वय या उचित सतुलन है। उन्होने ससार मे रह कर सत्य और नैतिकता को जीवन का अनिवार्य अङ्ग बताकर अधर्म के ऊपर जो प्रहार किया है उसकी मिसाल मिलनी कठिन है।

वह अभूतपूर्व योगी, उच्चतम दार्शनिक, गम्भीर विचारक और क्रांति के दूरदर्शी सदेशवाहक थे। छोटे-बड़े, नीच-ऊँच की बुनियादो को स्वामी दयानन्द ने जड से मिटाया। जहा-जहा भी अन्धेरा था, वहा उजाला दिखाया। जो दिमाग अंध-श्रद्धा से मजहब के ठेकेदारो ने बन्द कर रखे थे, उन्हे स्वामी दयानन्द ने अपने सुदृढ हाथो से खोल कर सभी को सचाई के रास्ते पर चलने का निमन्त्रण दिया।

उन्हे परमात्मा पर विश्वास था, यह विश्वास ही उनकी शक्ति और पूजी थी। इसी के बल पर अकेले होते हुए भी उन्होने सारी धरती के पाखण्डो पर प्रबल प्रहार किया। अज्ञान, अन्ध-विश्वास और मजहबी ढोगो के विरुद्ध युद्ध घोषणा की और वे विजयी हुए। न केवल भारत मे अपितु सारे ससार मे उन्होने सोचने के ढग मे मौलिक परिवर्तन कर दिया।

मूर्तिपूजा, अवतारवाद और छूत-छात के वे कट्टर विरोधी थे। नारी जाति को ऊपर उठाने मे उन्होने जो कुछ किया वह और कौन कर सकता था। सूरज की तरह ज्योतिर्मय दयानन्द स्वामी से प्रकाश लेकर उनके बाद वाली पीढी ने जो प्रकाशमान मार्ग पाया है उसके लिए मनुष्यमात्र स्वामी जी का सदा ऋणी रहेगा।

उनका यह सक्षिप्त जीवन-चरित्र पढ कर आप स्वय अनुभव करेंगे कि हम एक ऐसे प्रकाश पुज का सामीप्य प्राप्त कर रहे हैं जो हमारे अन्तरतम को नई ज्योति प्रदान कर रहा है। दया, आनन्द और सत्य के साकार स्वरूप ऋषिवर दयानन्द की जय बोल कर हम सचमुच अपने जीवन को पवित्र कर अन्तर के समस्त कलुष को धो डालते हैं।

प्रभु के महान् पुत्र, योगीश्वर, मानव उद्धारक, सत्य के प्रसारक, निर्भय दयानन्द के चरणो मे कोटिश प्रणाम! कोटिश प्रणाम उस प्रभु को, जिसने हमे गुरुदेव के चरणचिह्नो पर चलने और उनका जीवन प्रकाश फैलाने की प्रेरणा दी—

युग-युग तक अमर रहेगी, ऋषि दयानन्द की गाथा।
मानव उसको स्मरण करेगा, कह कर अपना त्राता॥

—भारतेन्द्र नाथ

सम्पादकीय

प्यार का देवता

सात समुद्र की मसि करूँ, लेखनी सब बनराय।
सब धरती कागद करूँ, ऋषि गुण लिखा न जाय ॥

संसार के सम्पूर्ण इतिहास मे अपने ढग के अकेले महापुरुष थे युग-प्रवर्त्तक देव दयानन्द। उनकी जीवन गाथा और उनके गुण गौरव गान करने की सामर्थ्य हम साधारण जनो मे कहाँ!

वे देवता थे, योगी थे, मानवता के उद्धारक, दीनो के त्राता और सत्य के अनुपम उपासक थे। वे सत्य के लिए उभरे, सत्य के लिए ही सघर्ष किया, ईंट-पत्थर खाकर, विष के प्याले पीकर भी वे अपनी पूरी शक्ति से सत्य का उद्घोष करते रहे।

ऋषि दयानन्द सचमुच दया और आनन्द के सागर थे। मानव मात्र के प्रति माँ के ममता भरे हृदय के समान वे सभी पर अपना दुलार लुटाते रहे। मृत्यु की ओर बढते प्रभु-पुत्रो को वे देख न सके और उन्होंने अज्ञान की राहो पर चलने से सभी को रोकने के लिए प्रत्येक सम्भव प्रयास किया। प्राणिमात्र के प्रति उनके उमडते प्यार ने उन्हे **"प्यार के देवता"** के रूप मे प्रतिष्ठित किया। वे न होते तो आज राम और कृष्ण का नाम भी शेष न होता। गीता, रामायण, महाभारत, दर्शन और उपनिषद् का उदात्त ज्ञान भी विधर्मियो के आक्रमण से सम्भवत नष्ट हो जाता। वेद की पावन ऋचाओ का उद्धार, उनकी पुनः प्रतिष्ठा और प्रचार तो ऋषि की वह देन है जिससे मानव जाति कभी उऋण न हो सकेगी।

ऐसे युग पुरुष दयानन्द का यह सक्षिप्त जीवन-चरित्र हम इस विश्वास से भेंट कर रहे हैं कि इसे पढ कर पाठक उस महान् आत्मा के प्रकाश से अपने जीवन को ज्योतित कर सकेंगे।

यह अत्यन्त हर्ष का विषय है कि इसके आठ सस्करण चार वर्षों मे ही समाप्त हो गए। अब यह नवम सस्करण आपके हाथ मे है। हमने इसे सर्वथा नवीन रूप दिया है। आशा है पाठक इसे और भी अधिक पसन्द करेंगे।

हमारी इच्छा है कि इसका अधिकाधिक प्रचार हो। प्रभु की कृपा और आपका आशीर्वाद मिलता रहा तो भावना पूरी होगी, यह विश्वास है।

आर्य जनता ने उत्साह से प्रचार मे सहयोग दिया, जाने अनजाने अनेको का आशीर्वाद और स्नेह मिला। सभी के प्रति हम हृदय से आभारी हैं। प्रभु हमे बल दें कि हम अडिग उनकी राह पर चलते रहे।

ज्योतिर्मय का प्रकाश अन्धकार मिटा सके। इस भावना से यह ऋषि-चरित्र जन-जन को अर्पित है।

—राकेश रानी

सुनो बात ऋषि की !

दयानन्द ग्रानन्द दाता, ऋषि था,
सुधा-सार सबको पिलाता ऋषि था।
महत् था, मधुरतम, महा क्रांतिकारी,
दयामय दया का था अनुपम पुजारी।

सभी भेदभावो को जग से मिटाना,
अँधेरे मतो को हटाना था ठाना।
वह सच्चा था योगी, युगो का विजेता,
मनुज मात्र का था अकेला ही नेता।

न उस सा था कोई, न आगे भी होगा,
ऋषि सा न कोई सुधारक भी होगा।
सभी को बचाया, सभी को उठाया,
कातिल भी सीने से जिसने लगाया।

महादेव देवो का सरताज वह था,
महापूत पावन पवन वेग वह था।
उसे रोक पाया न तूफान युग का,
उसे बाँध पाया न जजाल जग का।

वह सब का गुरु था सफल मन्त्रदाता,
सकल मानवों का वही एक त्राता।
उसी ने दिखायी थी जीवन की राहे,
उसी ने सुनी दीन जन की कराहे।

सुनो बात ऋषि की, उसी पर चलो सब,
सभी भेदभावो की भाषा हटा दो !
सचाई के रस्ते को मानो सभी तुम,
पापो की गठरी जला दो, मिटा दो !

—भारतेन्द्र नाथ

महर्षि दयानन्द के सिद्धान्त

१. ऋषि दयानन्द सत्य को सर्वोपरि मानते थे। उनका दृढ विश्वास था कि—"जो सत्य है उसको सत्य और जो मिथ्या है उसको मिथ्या ही प्रतिपादन करना सत्य अर्थ का प्रकाश समझा जाता है क्योंकि सत्योपदेश के बिना अन्य कोई भी मनुष्य जाति की उन्नति का कारण नही।"

२ ऋषि ससार के सब मनुष्यो को एक ईश्वर का पुत्र होने के नाते भाई मानते थे। मनुष्य व मनुष्य के मध्य खडी भेद की समस्त दीवारो को वे समूल नष्ट करना चाहते थे। मनुष्य मात्र की एक जाति, एक धर्म, एक लक्ष्य की स्थापना उनका इष्ट था। जन्म से मनुष्य समान और कर्म से ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य और शूद्र हैं। वर्ण गुण, कर्म, स्वभाव सूचक हैं, जाति सूचक नही।

३ ऋषि का लक्ष्य मनुष्य मात्र को यह ज्ञात कराना था कि वह शरीर नही, शरीर का स्वामी आत्मा है। आत्मतत्त्व को जान, ईश्वर का निरन्तर सान्निध्य प्राप्त कर मनुष्य सच्चे अर्थों मे मनुष्य बनता है। ज्ञान का उद्देश्य आत्म-तत्त्व की प्राप्ति का मार्ग निर्देशन है। हम ससार के समस्त कर्मों को करते हुए उस ऐश्वर्य का सग्रह करें जो धरती से विदा होते हुए साथ जा सके। भोगवाद और अध्यात्म का समन्वय ऋषि का विशेष सन्देश था।

४. ऋषि का यह अटूट विश्वास था कि वेद सब सत्य विद्याओ का पुस्तक है। वेद का पढना-पढ़ाना, सुनना-सुनाना वे परम धर्म मानते थे। वेद ज्ञान के प्रचार के अतिरिक्त और कोई मनुष्य जाति की उन्नति का कारण नही। उनका विचार था कि जब से भारतवासियो ने वेद का स्वाध्याय छोडा है तभी से भारत का पतन आरम्भ हुआ है। वस्तुत वेद की विचारधारा का साम्राज्य धरती पर स्थापित करना ऋषि का चरम लक्ष्य था।

५. नारी जाति को ऋषि पूजनीय मानते थे। उन्होने ५००० वर्षों के बाद सबल स्वरो मे फिर यह घोषित किया कि—"**यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमते तत्र देवता**।"

६. ऋषि की दृष्टि मे धर्म वह है, **जिसका विरोधी कोई भी न हो सके।** उनका कथन था कि "**मैं अपना मतव्य उसी को मानता हूँ कि जो तीन काल में सबको एक सा मानने योग्य है। जो सत्य है उसका मानना-मनवाना, और जो असत्य है उस का छोडना-छुडवाना मुझ को अभीष्ट है।**"

७ ऋषि का आदेश था कि "अन्यायकारी बलवान् से भी न डरे और धर्मात्मा निर्बल से भी डरता रहे, इतना ही नही किन्तु अपने सर्व सामर्थ्य से धर्मात्माओ की, चाहे वे महा अनाथ, निर्बल और गुण रहित क्यो न हो, उनकी रक्षा, उन्नति, प्रियाचरण और अधर्मी चाहे चक्रवर्ती, सनाथ, महाबलवान् और गुणवान् भी हो तथापि उनका अप्रियाचरण सदा किया करें।"

८ ईश्वर, जीव और प्रकृति को अनादि मानते हुए, जीव को भोक्ता, प्रकृति को साधन, मान ईश्वर से नित्य आनन्द प्राप्त करना जीव का लक्ष्य है। निरन्तर कर्म करते हुए, प्रभु की प्राप्ति के लिए यत्नशील रहना ही ज्ञानमार्ग उन्होंने बताया।

९ गगा स्नान, व्रत, पूजा से पाप क्षमा नहीं होते। कर्मों का फल सभी को भोगना होगा। ऋषि का यह विश्वास पुण्य और धर्म भाव की आधार-शिला था।

१० मूर्तिपूजा, अवतारवाद, छूतछात, गुरुडम और अन्धविश्वास, भूतप्रेतादि और मत-मतान्तरो के ऋषि प्रबलतम विरोधी थे और वे उन्हें मनुष्य जाति के पतन का कारण मानते थे।

११ ऋषि दयानन्द एक ईश्वर को ही उपास्य देव मानते थे। देवी-देवताओ की पूजा और अवतारवाद को वे पतन का हेतु समझते थे। उनकी मान्यता थी कि मनुष्य मात्र अपने शुभ कर्मों से मोक्ष को प्राप्त कर सकता है। इसके लिए किसी पैगम्बर या गुरु की सिफारिश आवश्यक नही।

१२ महर्षि दयानन्द ऐसी सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, और आध्यात्मिक व्यवस्था चाहते थे, जिसके द्वारा ससार स्वर्ग बन जाए और जन्म से मृत्यु तक कोई भी मनुष्य दुःख, कष्ट, क्लेश अनुभव न करे।

१३ "सर्व सत्य का प्रचार कर, सब को ऐक्य मत मे करा, द्वेष छुडा, परस्पर मे दृढ प्रीतियुक्त कराके, सब से सब को सुख, लाभ पहुँचाने के लिए मेरा प्रयत्न और अभिप्राय है," ऋषि का यह चरम लक्ष्य उनके ही शब्दो मे कितना स्पष्ट है।

१४ अपने चरम लक्ष्य को पूरा करने की ऋषि की अत्यन्त उत्कण्ठा थी। वे लिखते है—"सर्वशक्तिमान् परमात्मा की कृपा, सहाय और आप्त जनो की सहानुभूति से यह सिद्धान्त सर्वत्र भूगोल मे शीघ्र प्रवृत्त हो जाए।'

क्यों प्रवृत्त हो जाए ? इसका उत्तर ऋषि के ही शब्दो मे इस प्रकार है—"जिस से सब लोग सहज से धर्मार्थ काम मोक्ष की सिद्धि करके सदा उन्नत और आनन्दित होते रहें। यही मेरा मुख्य प्रयोजन है।

पाठक गण ! आपने देखे ऋषि के सिद्धान्त, देखी महान् विश्व प्रेम की उनकी उदात्त भावना, उनका सत्य प्रेम, ईश्वर विश्वास।"

आपके जीवन को इससे यदि प्रकाश और प्रेरणा मिली हो तो इन गुणों को अपने जीवन मे धारण कीजिए। मूर्ति की पूजा छोड प्रभु की शरण मे जाने के लिए ऋषि का महान ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश पढ़िये। विश्वास रखिए, ऋषि दयानन्द की बतायी राह पर चलने से आपको जीवन मे कभी दुःख कष्ट क्लेश नहीं मिलेगा।

संसार के कल्याण के लिए बोलिए
ऋषिवर दयानन्द की जय ! —भारतेन्द्र नाथ

विषयसूची

		पृष्ठसख्या
अवतरण		१ से ८४ तक
१	युग पुरुष का जन्म	१
२	बाल्यकाल	२
३	अद्भुत प्रबोध	३
४	मृत्युजय बनने का सकल्प	४
५	एक और आघात, तीव्र प्रतिक्रिया	५
६	गृहत्याग	६
७	पुन गिरफ्त मे किन्तु	६
८	सन्यास की दीक्षा एव पर्यटन	८
९	एक कटु अनुभव	१०
१०	उत्तराखड	११
११	बद्रीनाथ	१२
१२	दृढ़ सकल्प आपदा को निमन्त्रण	१२
१३	शवपरीक्षा	१४
१४	गंगातट से नर्मदा स्रोत की ओर	१५
१५	स्वामी विरजानन्द के चरणो मे	१८
१६	गुरु दक्षिणा	१९
१७	महर्षि दयानन्द कार्य क्षेत्र मे	२०
१८	आगरा मे	२१
१९	जयपुर मे	२३
२०	स्वामी जी अचरोल मे	२४
२१	शास्त्रार्थ मे वैष्णवो की पराजय	२५
२२	पुष्कर मेले मे शास्त्रार्थ	२५
२३	रुष्ट पुजारी भी भक्त	२६
२४	महर्षि पुन अजमेर मे, पादरियो से शास्त्रार्थ	२८
२५	कर्नल ब्रुक ने गोरक्षा का महत्त्व माना	२९
२६	महन्त जी का पलायन	२९
२७	"एकाकी हू, किन्तु "	३०
२८	स्वामी जी फिर आगरा में	३१
२९	स्वामी विरजानन्द से अन्तिम भेंट	३१
३०	वासना पर विजय का मार्ग	३१
३१	गगा तट पर विचरण और कार्य	३२
३२	दादूपन्थी वेदपन्थी बना	३४
३३	स्वदेश की दशा का दर्शन	३४
३४	सर्वं वै पूर्णं ँ स्वाहा	३५
३५	मौन भग	३५
३६	गगातट कार्यक्षेत्र बना	३७
३७	पर्णकुटी	३७
३८	पुन कर्णवास मे	३९
३९	एक और शास्त्रार्थ	३९
४०	अनूपशहर मे	४०
४१	विषयुक्त पान अधम को भी अभयदान	४१
४२	नवीन वेदान्त पर चपत	४२
४३	उपेक्षितो को भी उपदेश	४२
४४	रामघाट मे	४३
४५	दयानन्द विजयी कृष्णानन्द पराजित	४४
४६	स्वामी जी की दिनचर्या	४५

४७ महिला को गायत्री मन्त्र का उपदेश ४५
४८ कलैक्टर सेवा मे उपस्थित ४६
४६ अस्तेयव्रती दयानन्द ४७
५० योगबल का प्रदर्शन ४७
५१ चिरस्मरणीय निशा ४७
५२ गढियाघाट मे ४८
५३ भागवत भक्त का रोष ४६
५४ कारवा बढता गया ४६
५५ स्वामी जी की सहनशीलता ५१
५६ राव करणसिंह का दर्प चूर ५१
५७ साधु को दिशा निर्देश ५३
५८ व्याकरण का सूर्य अस्त ५४
५६ हत्या का एक और प्रयास ५४
६० काकोडा के मेले मे ५५
६१. कायमगज प्रवास ५६
६२ पुन फर्रुखाबाद आगमन ५६
६३ 'साध' का भोजन ५७
६४. कुछ और प्रसग ५७
६५ ओछे हथकण्डे मुँहतोड उत्तर ५८
६६. दुष्ट का भी हृदयपरिवर्तन ५६
६७ हलधर भी हारे ६०
६८ कुपथगामी को दिशादान ६०
६६ शिवाला (शिवालय) नही, पाठशाला ६१
७० आदित्य ब्रह्मचारी का बल ६१
७१ मनोरजक शास्त्रार्थ ६२
७२ कानपुर मे महर्षि का सत्य धर्मप्रचार ६२
७३ ऐतिहासिक शास्त्रार्थ ६४
७४ निंदक भी प्रशसक बना ६६
७५ द्वन्द्वातीत दयानन्द ६६
७६ ब्राह्मणवाद के गढ़ मे जयनाद ६७
७७. काशी मे कोलाहल ६८
७८ शास्त्रार्थ मे विजय ७०
७६ सिद्धपुरुष दयानन्द ७२
८० सत्य उजागर होकर रहा ७२
८१ हत्या के प्रयास ७३
८२ समाज सुधार अभियान ७४
८३ प्रवृत्ति और निवृत्ति मार्ग का विवेचन ७४
८४ देश दुर्दशा की टीस ७५
८५ अनिष्टकर्त्ता को ईश्वरीय दण्ड ७५
८६ निर्भयता का प्रदर्शन ७६
८७ पादरी की शका का निवारण ७७
८८ पाठशाला की स्थापना ७७
८६ पुन कासगज मे ७८
६० बिछुडो को मिलाया ७८
६१. शास्त्रार्थ मे विजय ७६
६२ चाणक्य और चैतन्य की भूमि मे ७६
६३ पटना की घटना ८०
६४ योग बल का चमत्कार ८०
६५ केशवचन्द्र सेन से भेंट ८१
६६ परामर्श स्वीकार ८२
६७ विद्वद् गोष्ठी ८२
६८ वाइसराय के समक्ष स्वराज्य का उद्घोष ८२
६६ पत्रपत्रिकाओ द्वारा जय-जयकार ८३
१०० हुगली मे धर्मप्रचार ८३
१०१ बर्दवान व भागलपुर में ८३
पुन॰ उत्तर प्रदेश मे ८५ से ६१ तक
१०२ कानपुर व लखनऊ मे ८५
१०३. पुनः फर्रुखाबाद मे ८६
१०४. गोरक्षा के महत्त्व का प्रतिपादन ८६
१०५ भ्रान्ति का निवारण ८६

१०६ अलीगढ मे ज्ञानामृत की वर्षा ८७
१ ७ स्वदेशी पर जोर ८७
१०८ सर सैयद अहमद भी तर्क-बल के समक्ष झुके ८७
१०९ वृन्दावन मे ८८
११० दुर्जन भी सम्पर्क से सज्जन बने ८९
१११ पुन. प्रयाग मे ९०
११२ योग बल का चमत्कार ९०

बम्बई, गुजरात और महाराष्ट्र की यात्रा
९२ से ९४ तक

११३ लेखन कार्य भी ९२
११४ आर्यसमाज स्थापना का विचार ९२
११५ अपनो के पाषाण भी पुष्प समान ९३
११६ भले बुरे सब अपने ९३
११७. आर्य मर्यादा के सूत्र ९३
११८ "यदि ऐसा न होगा तो " ९४

पुनः बम्बई मे आर्यसमाज की स्थापना
९४ से १०३ तक

११९ श्यामजी कृष्ण वर्मा सम्पर्क मे आये ९५
१२० श्री रानाडे के निमन्त्रण पर पूना मे ९६
१२१ यथा नाम तथा गुण ९६
१२२ बडौदा के प्रधान मन्त्री का श्रद्धा ज्ञापन ९७
१२३. प्रो० मोनियर विलियम्स से वार्त्ता ९८
१२४. इन्दौर मे अमृत वर्षा ९८
१२५ उत्तर प्रदेश की तृतीय यात्रा ९८
१२६ "तो फिर उड़ा दो" ९९
१२७ अनेक नगरो का भ्रमण ९९
१२८. पादरी पार्क निरुत्तर ९९
१२९ दिल्ली दरबार के अवसर पर १००
१३० सार्वभौम धर्म का आह्वान १००
१३१ मेला चादपुर मे धाक १०१

स्वामी जी पजाब में
१०३ से ११२

१३२ लाहौर मे धर्म प्रचार १०३
१३३ ब्राह्मसमाजी रुष्ट १०४
१३४. आर्यसमाज की स्थापना १०४
१३५ मठ नही बनाया १०५
१३६. अमृतसर आगमन १०५
१३७ हिन्दू धर्म की दृढता १०५
१३८ गुरुदासपुर में धर्म प्रचार १०६
१३९ ब्रह्मचर्य का अद्भुत बल १०६
१४० स्वामी जी फीरोजपुर मे १०७
१४१ स्वामी जी की नियमप्रियता १०७
१४२ स्वामी जी रावलपिण्डी मे १०८
१४३ तहसीलदार का जीवन बदला १०८
१४४. गुजरात मे जागरण सदेश १०९
१४५ स्वामी जी की सरलता १०९
१४६. स्वामी जी गुजरावाला मे १०९
१४७ "जहां भी रहूँगा, सत्य कहूगा" ११०
१४८ मुलतान मे धर्म प्रचार ११०
१४९. सत्सग में नीद आने का रहस्य ११०
१५० अमृतसर मे अमृतवर्षा १११
१५१ "मुझ पर धूल पडे तो पडे, जाति का उपवन हरा रहे" १११
१५२ महान् चमत्कार ११२

उत्तर प्रदेश की चतुर्थ यात्रा
११२ से ११६

१५३ अनेक प्रभावित ११३
१५४ नियम पालन ११४

१५५. "दुराग्रह त्याज्य" ११४
१५६ अलीगढ़ मे ११४
१५७. मेरठ मे धर्म जागृति ११४
१५८ बल का प्रदर्शन ११५
१५९ योग बल की एक झलक ११५
१६० जाति के पराभव पर सजल नेत्र ११५
१६१ दिल्ली मे ११६

राजपूताना की द्वितीय यात्रा ११६ से ११९ तक

१६२ पौराणिक प्रवंचना, जो सफल न हुई ११६
१६३ पुष्कर मे व्याख्यान ११७
१६४ धनुर्वेद के २।। पृष्ठ ११७
१६५ दयानिधान दयानन्द ११८
१६६. स्वामी जी मसूदा मे ११८
१६७ स्वामी जी रिवाड़ी मे ११९

उत्तर प्रदेश की पांचवीं यात्रा ११९ से १३७ तक

१६८ उपदेशामृत का प्रभाव ११९
१६९ १८७९ ई० का कुम्भ मेला १२०
१७० आनन्दवन जी का संशय-वन तिरोहित १२०
१७१ निर्मलो का चित्त निर्मल १२१
१७२ वेदना आहत दयार्द्र मन १२१
१७३ शारीरिक अस्वस्थता मे भी शास्त्रार्थ १२१
१७४ आर्यभाषा ही राष्ट्रभाषा का महामन्त्र १२२
१७५ महामारी की पूर्व सूचना १२२
१७६ देहरादून मे अमृतवर्षा पादरी का पलायन १२२
१७७ युवको को सत्यपथ दर्शाया १२३
१७८ कई नगरो मे वैदिक शखनाद १२३
१७९ राजनीति पर मार्मिक प्रवचन १२४
१८० "वार्त्तालाप स्वभाषा मे ही करो" १२४
१८१ नमस्ते : श्रेष्ठ अभिवादन १२४
१८२. श्रद्धालु जन को यज्ञोपवीत १२५
१८३. सुयोग्य शिष्य क्यो न मिले ? १२५
१८४ बरेली मे आगमन १२६
१८५ पादरी स्काट से शास्त्रार्थ १२६
१८६ प्रजापालन का ध्यान दोष किसका ? १२७
१८७ निर्भयता की मूर्ति १२७
१८८ मुन्शीराम का कायाकल्प १२९
१८९ शाहजहापुर मे आगमन १३०
१९०. "वेदो का शखासुर द्वारा अपहरण" १३०
१९१ गोरक्षा का महत्त्व १३१
१९२ दान का सच्चा स्वरूप १३१
१९३ कर्मफल क्या है ? १३२
१९४ "देवालय तोडना मेरा काम नही" १३२
१९५ सहानुभूति पूर्ण हृदय १३२
१९६ कई नगरो का भ्रमण १३३
१९७ "मतमतान्तरो की पोल खोलने से न रुकूगा" १३३
१९८ देश की दुर्दशा दयानन्द के आँसू
१९९ निरभिमान सन्यासी १३४
२०० वाराणसी में वैदिक यन्त्रालय की स्थापना १३४
२०१ "हिन्द समाज से कटना नही चाहता" १३५
२०२ पुन फर्रुखाबाद आगमन १३५
२०३ अल्काट की आलोचना १३५
२०४ आगरा मे नास्तिको की बोलती बन्द १३६
२०५ "स्वदेश की रीति वरेण्य" १३६

२०६ महान तत्त्वदर्शी १३७

राजस्थान की तृतीय यात्रा
१३८ से १४४ तक

२०७ अजमेर आगमन : पं० लेखराम श्रीचरणों मे १३८
२०८ स्वामी जी फिर मसूद में १३९
२०९ पादरी शूलब्रेड से वार्त्ता १४०
२१० भक्तो को यज्ञोपवीत १४०
२११ आर्य ललनाओ का उद्धार १४०
२१२ भावभीनी विदाई १४०
२१३ रायपुर मे १४१
२१४ "दासीपुत्र को मन्त्री बनाना अनुचित" १४१
२१५ महर्षि बनेडा मे १४२
२१६ चित्तौडगढ़ मे आगमन १४२
२१७ महाराणा सज्जनसिंह से भेंट १४३
२१८ मातृशक्ति का सम्मान १४४

बम्बई की अन्तिम यात्रा
१४४ से १४८ तक

२१९ आर्यसमाज का वार्षिकोत्सव १४५
२२० अद्भुत स्मरणशक्ति १४५
२२१ इधर प्रश्न, उधर उत्तर १४५
२२२ यथायोग्य उपदेश १४६
२२३ ब्राह्मण को सदुपदेश १४६
२२४ "भिक्षुक नही बनाना चाहता" १४६
२२५ महादेव गोविन्द रानाडे से भेंट १४७
२२६ मोनियर विलियम्स से मिलन १४७
२२७ गोरक्षार्थ प्रबल प्रयास १४७

स्वामी जी और महाराणा सज्जनसिंह
१४८ से १५२ तक

२२८ महाराणा के जीवन की नई दिशा १४८
२२९ भारत का पूर्ण हित कब ? १४९
२३० स्वामी जी का क्रोध १५०
२३१ सदुपदेश १५०
२३२ परोपकारिणी सभा का गठन १५०

स्वामी जी शाहपुरा मे
१५२ से १५३ तक

१३३ दैनिक कार्यक्रम १५२
२३४ रामस्नेही शास्त्रार्थ को आये १५२
२३५ योगबल से सूक्ष्म विषय का भी ज्ञान १५३
२३६ जोधपुर से निमन्त्रण १५३
२३७ विदाई १५३

जोधपुर आगमन
१५४ से १५५ तक

२३८ "सत्योपदेश ही करूगा" १५४
२३९ भेंट समर्पण १५४
२४० महाराजा जोधपुर से भेंट १५५

स्वामी जी के अन्तिम दिन
१५६ से

२४१ कट्टरपथी विरोधी १५६
२४२ अपने भी, पराये भी १५६
२४३ जोधपुर राजमहल की स्थिति १५७
२४४ नन्ही का महाराजा पर प्रभाव १५७
२४५ नन्ही का वैभव १५७
१४६ महर्षि का आह्वान १५८
२४७ षड्यन्त्रकारियो को बल १५८
२४८ दूध मे विष १५९
२४९ रोग बढता ही गया १५९
२५० ऋषि की परहितचिन्ता १६०
२५१ देहावसान १६१
२५२ श्रद्धाजलियाँ १६४

स्तुता मया वरदा वेदमाता प्रचोदयन्तां पावमानी द्विजानाम्।
आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम्। मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्मलोकम्॥

अथर्व० १९-७१-१

स्तुति करते हम वेद ज्ञान की,
जो माता है प्रेरक~पालक,
पावन करती मनुज मात्र को।
आयु, बल, सन्तति, पशु कीर्ति,
धन, मेधा, विद्या का दान।
सब कुछ देकर हमें दिया है,
मोक्ष मार्ग का पावन ज्ञान।



धर्म रक्षक
सत्य सनातन वैदिक धर्म प्रसारक
महर्षि दयानन्द सरस्वती

महर्षि दयानन्द की जय !

सारी धरती मिल कर बोले,
जय दयानन्द ऋषिराज की ।
अवनी अम्बर मे गूँजे,
जय दयानन्द महाराज की ।।

उठो आर्यजन, उठो वीरवर, वेद-ज्ञान फैलाओ रे ।।
त्रस्त मनुज के अन्तस्तल मे, वेद-सुधा छितराओ रे ।।
वेदामृत का पान करेंगे, दयानन्द का गान करेंगे ।
समय आयेगा सत्य ज्ञान पर, सारे ही अभिमान करेंगे ।।
तब बोलेगे उच्च स्वरो मे ऋषिवर दयानन्द की जय ।
मुनिवर दयानन्द की जय, गुरुवर दयानन्द की जय ।।
दयानन्द सा नही हुआ है, मानव का उपकारी ।
मनुज मात्र का जीवन-रक्षक, सत्यव्रती ब्रह्मचारी ।।
उसके गीत गुजाओ रे, धरती नई बनाओ रे ।
तम अज्ञान हटाओ रे, स्वर्ग यहाँ पर लाओ रे ।।
आर्य वीर जागो अब तो तुम, जय बोलो ऋषिराज की ।
जन मन तक पहुचा दो गाथा मानवता अधिराज की ।।
कर लो उसको कोटि प्रणाम, जो था युग का भाग्य ललाम ।
सबसे ऊँचा और महान्, दिये सभी को शुभ वरदान ।।
बलिदानी की जय-जयकार, वीरव्रती की जय-जयकार ।
गूँजेगी जिस दिन अम्बर मे, दयानन्द की जय-जयकार ।।
(उस दिन) दनुज नही रह पायेगा, मनुज नही रो पायेगा ।
कष्ट क्लेश कट जायेगा, स्वर्ग धरा पर आयेगा ।।

मिलकर बोलो, उठकर बोलो ।
बढकर बोलो, जमकर बोलो ।

ऋषिवर दयानन्द की जय,
मुनिवर दयानन्द की जय ।।

—राकेश रानी



स्वामी दयानन्द सरस्वती



सोता देश जगाया, बोध रात्रि के दिव्य प्रहर ने ।
कहा देव है रहता सच्चा, प्रश्न उठा था मन मन्दिर मे ।।
बालक 'मूल' सत्य भाव से, जाग उठा ले सच्चा ज्ञान ।
आओ हम भी जागें साधक, 'वेद' सूर्य का फैले ज्ञान ।।

अवतरण

देव भूमि भारतवर्ष की महिमामयी गोद मे समय-समय पर अनेक महापुरुषों ने जन्म ग्रहण कर विश्व की विभ्रान्त मानवता को सत्य पथ का दर्शन करा धराधाम मे व्याप्त अज्ञान के गहन तिमिर को विदीर्ण कर ज्ञान का प्रकाश फैलाया है । इसी धरती पर उत्पन्न हुए ऋषि-महर्षियो ने अपनी वर्षों की कठिन साधना से अर्जित ज्ञान-विज्ञान की अमृतमयी सरिताओ को प्रवाहित कर जन-जन मे सत्य की साधना को पनपाया है ।

इस देश मे समय-समय पर उत्पन्न हुए ऋषि-महर्षियो एव नर-पु गवो ने 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' के उद्‌घोष को हृदयगम कर अपने क्रियाकलापो से इस देश की आर्यावर्त, भारतवर्ष आदि सज्ञाओ को सार्थक किया है । उसी का यह सुफल है कि जहा यूनान, मिस्र, रोम एव चीन की प्राचीन सस्कृतिया शोधकर्ताओ के अन्वेषण की विषय-वस्तु बन कर रह गई हैं वहाँ भारत आज भी अपने दार्शनिको एव महर्षियो की महान् देन को हृदय मदिर मे बसाये, गर्वोन्नत भाल उठाये, विश्व को यह सदेश दे रहा है कि 'ऐ ससार के पथ-भ्रष्ट लोगो ! तुम्हारी समस्याओ का निदान, तुम्हारे कल्याण का मार्ग, कोरे भौतिकवादी दर्शन से न होकर सर्वांगीण विकास कराने मे समर्थ उदात्त वैदिक दर्शन द्वारा ही सभव है ।'

युग पुरुष का जन्म

इन्ही महापुरुषो की शृ खला की कडी के रूप मे सत्रस्त मानवता का पुन: उद्धार करने और उसके समक्ष सत्यपथ प्रदर्शित करने हेतु १९वी शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे काठियावाड के मोरवी राज्यान्तर्गत टकारा नामक स्थान मे १२ फरवरी सन् १८२५ (फाल्गुन बदि दशमी सवत् १८८१) को देव दयानन्द का जन्म हुआ था ।

जब महर्षि का जन्म हुआ तो सम्पूर्ण भारतवर्ष निराशा के प्रवाह मे बहा जा रहा था । आर्य जाति अपनी महान् सस्कृति, गौरव, इतिहास, परम्परा एव धर्म के सत्य स्वरूप को बिसार अज्ञान के गहन अधकार मे सोई पडी थी । धर्म के नाम पर कुरीतिया पनप रही थी । नारी जाति की स्थिति दयनीय थी, और धर्म के ठेकेदार 'स्त्रीशूद्रौ नाधीयाताम्' के नारे गुजा कर स्त्री जाति

व शूद्रो को वेद पढ़ने के अधिकार से वचित कर चुके थे। इतना ही नही, अपितु 'द्वार किमेक नरकस्य नारी'—नरक का एक मात्र द्वार क्या है—नारी। यह उत्तर देकर श्री शकराचार्य ने उसे नरक का द्वार घोषित कर दिया था। कुछ वर्गों मे तो लोग बालिकाओ को उत्पन्न होते ही भूमि मे गाड देना अपने गौरव की रक्षा का एक समाधान मान बैठे थे। इस भाति आर्य भूमि की पावन माटी, पोपलीलाओ की परिपाटियो के कारण 'त्राहि माम् त्राहि माम्' कह उठी थी।

बाल्यकाल

इस दयनीय स्थिति से आर्य जाति को उबार समग्र मानवता का पथ प्रदर्शन करने वाले देव दयानन्द का बाल्यकाल का नाम था मूलशकर। मौरवी राज्य के एक सुसपन्न, उच्च कुलीन वेदपाठी सामवेदी औदीच्य ब्राह्मण कर्षण तिवारी के कुलदीपक के रूप मे उन का जन्म हुआ था। कर्षण जी को एक सुसम्मानित राज्य अधिकारी के रूप मे मौरवी राज्य मे उल्लेखनीय स्थान प्राप्त था। १८८३ ई० मे मन्ना चौधरी से वार्तालाप के प्रसग मे महर्षि दयानन्द ने बताया था कि "मेरे पिताजी का टकारा मे वही पद था जिसे ब्रिटिश भारत मे रेवेन्यु कलैक्टर (भूराजस्व अधिकारी) कहते हैं।"

ऐसे सभ्रान्त कुल मे जन्मे बालक मूलशकर का लालन, पालन सरक्षण और सवर्धन एव शिक्षा दीक्षा धार्मिक सस्कारो के अनुरूप ही हुई। कुल मर्यादा के अनुसार बालक का जातकर्म सस्कार जिव्हा पर स्वर्ण शलाका द्वारा मधु से 'ओ३म' लिखकर किया गया और उनके पिता ने पूर्ण आस्तिकता सहित सपूर्ण विधि सपन्न की।

१०१ दिन पश्चात् उनका नामकरण सस्कार सपन्न हुआ और उन्हे मूलशकर नाम दिया गया। माता-पिता का स्नेह पाकर यह युग निर्माता बालक चन्द्रमा की न्याईं बढता रहा।

पचम वर्ष मे मूलशकर का विद्यारम्भ हुआ। उन्हे सुन्दर और नूतन परिधान पहनाये गये। सम्पूर्ण घर स्वच्छ करके सजाया गया। ब्राह्मणो को भोज के उपरात समुचित दान दक्षिणा दी गई। इस शुभ अवसर पर एकत्र नर-नारियो के विशाल समूह के समक्ष कर्षण जी ने अपने कुलदीपक मूलशकर को गोद मे बैठाकर उन्हे देवनागरी अक्षर सिखाए। बालक मूलशकर देवनागरी अक्षरो के अभ्यस्त हो गये तो उन्हे उन दिनो प्रचलित पद्धति के अनुसार सर्व-प्रथम शब्दरूपावली पढाई गई। तदुपरात धातुरूपावली, कारकचक्र, समास-चक्र और साथ ही मातृभाषा की पुस्तकें भी पढाई जाने लगी। आठ वर्ष के होने पर मूलशकर व्याकरण के सामान्य ज्ञान के अतिरिक्त हितोपदेश एव रघुवश के कुछ सर्ग भी पढ चुके थे तो साथ ही शिव सहस्रनाम, महिम्न स्तोत्र

एव अन्य कई स्तोत्र कठस्थ कर चुके थे और उनका सस्वर पाठ करने मे पारगत हो गये थे।

गृह्यसूत्र के इस आदेश के अनुसार कि 'अष्टमे वर्षे ब्राह्मणमुपनयीत्' कर्षण जी ने अपने पुत्र का यज्ञोपवीत सस्कार भी सपन्न कराया। तदुपरान्त बालक मूलशकर ने सामवेद का अध्ययन आरम्भ किया। किन्तु कुछ दिन बाद उसे स्थगित करा उन्हे रुद्राष्टाध्यायी पढाई गई और तत्पश्चात् यजुर्वेद। मूलशकर ने १४ वर्ष की आयु मे ही यजुर्वेद सहिता कठस्थ कर ली और अन्य वेदो के कुछ अश भी। इतना ही नही अपितु उन्होने इस अल्पायु मे ही निरुक्त, निघण्टु, पूर्व मीमासा व कर्मकाण्ड के कतिपय अन्य ग्रन्थो का अध्ययन भी पूर्ण कर लिया।

बालक मूलशकर के पिता कट्टर शैव थे और अपने पुत्र के हृदय मे भी शिव के प्रति श्रद्धा जगाने मे उन्होने कोई कोर कसर न उठा रखी। मूलशकर को शिव की कल्पना देवाधिदेव महादेव के रूप मे कराई गई।

अद्‌भुत प्रबोध ·

मूलशकर ने बाल्यावस्था को लाघ किशोरावस्था की देहरी पर पग धर लिया। वे १४ वर्ष के हो गये। तभी आया महाशिवरात्रि पर्व। परिवार के सभी सदस्यो ने उपवास रखा। पिता के निर्देश पर बालक मूलशकर ने भी उपवास किया। कुल के इष्ट देवता को रिझाने का सकल्प ग्रहण कर वे अपने परिवार के अन्य सदस्यो सहित शिव मन्दिर पहुँचे और रात्रि भर जागने का निश्चय किया।

रात्रि का गहन अधकार बढता जा रहा था। दिन भर के श्रात-क्लान्त भक्तो पर भी निद्रादेवी अपना प्रभाव जमाती जा रही थी। एक एक कर मन्दिर मे बैठे सभी भक्तजन सो गये और जागता रहा बालक मूलशकर। सहसा ही अर्ध रात्रि की उस नि स्तब्धता मे उसने देखा कि एक छोटा सा चूहा शिवलिग के ऊर्ध्व भाग पर उछलता कूदता भक्तो द्वारा नितान्त श्रद्धा सहित समर्पित की गई सामग्री, पूर्ण निर्भयता सहित उदरस्थ करता चला जा रहा है।

बालक के मस्तिष्क मे एक हलचल सी मच गई। उसका कारण यह था कि उसे जिस शिव की बात बताई गई थी वह शकर प्रलयकर, दुष्ट विनाशक, त्रिशूलधारी, त्रिनेत्रधारी सहारक देवता था, जिसके भृकुटि तानने मात्र से ही विश्व के प्रकम्पित हो जाने की कल्पना उसके हृदय मे जगाई गई थी। इस मनस्वी बालक के मन मे जिज्ञासा जाग्रत हुई और एक प्रश्न चिह्न उपस्थित हो गया कि जो "शिव" साधारण चूहो को भी उनकी उद्दडता का दड नही

दे सकता, उसकी पूजा, उपासना का भला क्या फल है ? उसकी यही जिज्ञासा भारत मे धार्मिक क्रान्ति और नव जागरण का शखनाद कर पाने मे उसकी सफलता की आधारशिला सिद्ध हुई ।

पिता जी बालक की शका का समाधान कर पाने मे सफलता न पा सके । इस घटना से मूलशकर की आस्था मूर्ति पूजा से उठ गयी । तदुपरान्त उन्होने जीवन भर कभी मूर्ति पूजा न की । बडे से बडा प्रलोभन, भय और आपदा भी उसे किसी पाषाण मूर्ति के समक्ष नतमस्तक होने को प्रेरित न कर पाई ।

सच्चे "शिव" का दर्शन करने की आकाक्षा को अपने हृदय मे सजोये मूलशकर मन्दिर से घर चले गये । माताजी से माग कर भोजन ग्रहण किया । उन्होने अपने चाचा जी से भी प्रार्थना की, "आप पिता जी को समझा दीजिये कि अध्ययन के कारण मुझ से व्रत और पूजा पाठ का आडम्बर नही निभ पायेगा ।" चाचा जी और माता जी के मनाने पर पिताजी जी ने बालक मूलशकर को मूर्तिपूजा से छुट्टी देना मान लिया । और अब मूलशकर का सारा समय विद्याध्ययन मे ही व्यतीत होने लगा । एक ब्राह्मण से उन्होने निघण्टु, निरुक्त, मीमासा आदि शास्त्र पढ़ने आरम्भ किये और स्मार्त ग्रन्थो का भी कुछ अध्ययन किया ।

मृत्युंजय बनने का संकल्प

मूलशकर कर्षण जी के ज्येष्ठ पुत्र थे । उनकी दो छोटी बहन थीं और दो छोटे भाई । इस प्रकार वे पाच भाई बहन थे । जब मूलशकर १६वें वर्ष मे चल रहे थे, एक दिन उन्हे किसी इष्ट मित्र के यहा आयोजित नृत्योत्सव मे अपने पारिवारिक जनो के साथ जाना पडा । अभी उत्सव प्रारम्भ ही हुआ था कि घर का नौकर दौडता हुआ वहा पहुँचा और उसने सूचना दी कि उनकी १४वर्षीय बहिन को विषूचिका (हैजा) हो गया है । इस सूचना ने मूलशकर और पारिवारिक जनो पर सहसा ही वज्रपात कर दिया । सभी तुरन्त वहा से उठकर धर पहुँचे । बीमार बालिका का औषध उपचार किया गया, किन्तु वैद्यो की सारी दौड धूप भी बालिका को कराल काल के गाल मे जाने से न रोक पाई । चार घटे की अवधि मे ही मूलशकर की प्रिय भगिनी इस ससार के बन्धनो से सदा के लिये मुक्त हो गई ।

सम्पूर्ण परिवार बालिका के नश्वर देह के समीप अविरल अश्रुधारा प्रवाहित कर अपनी अन्तर्व्यथा को व्यक्त कर रहा था, किन्तु बालक मूलशकर अपनी भगिनी की शय्या के समीप दीवार से सटा हुआ अश्रु के महासागर को उफनने से रोके गभीर विचारो मे खोया हुआ था । उसकी दृष्टि एकटक शव पर गडी थी और मस्तिष्क मे हो रही थी एक अवर्णनीय हलचल । मूलशकर के मन मे एक ही प्रश्न कौंध रहा था । अपनी भगिनी के समान ही एक दिन

मुझे भी काल के गाल मे समाना होगा ? कोई भी इस स्थिति से बचा न रह सकेगा। फिर कोई उपाय तो सोचना ही होगा, जिससे जन्म मरण की दारुण व्यथा से मुक्ति मिले और अमरत्व की प्राप्ति हो। इस घटना के सम्बध मे महर्षि ने अपनी आत्मकथा मे लिखाः—

उस भगिनी के वियोग का शोक मेरे जीवन का प्रथम शोक था। उस शोक से मेरा हृदय विलक्षण रूप से व्यथित हुआ। जिस समय मेरे आत्मीय और स्वजन उस भगिनी के चारो ओर रोदन और विलाप करते थे उस समय मैं पाषाण निर्मित मूर्ति के समान अविचल भाव से खडा हुआ सोच रहा था कि इस ससार मे सब मनुष्यो को ही मृत्यु के मुख मे जाना पडेगा। इसी प्रकार मुझे भी एक दिन मृत्यु का ग्रास बनना होगा। फलत मैंने सोचा—किस जगह जाने से मैं मृत्यु की यन्त्रणा से बच सकू गा और मुक्ति के पथ का दर्शन कर सकू गा। मैंने उसी जगह खडे-खडे यह सकल्प कर लिया कि जिस प्रकार से हो सकेगा उसी प्रकार से मैं प्रयत्न कर अवर्णनीय मृत्यु क्लेश से अपनी रक्षा करूँगा।

एक और आघात · तीव्र प्रतिक्रिया

जब मूलशकर ने १९वें वर्ष मे पग धारा तो उनसे अत्यधिक स्नेह करने वाले उनके चाचा जी विषूचिका रोग से पीडित हुए और चिर विदाई ले ली। भगिनी के निधन पर जो मूलशकर अपने आसुओ के महासागर का बांध टूटने से रोक पाने मे सफल रहे थे, चाचा जी के देहावसान पर फूट-फूट कर रो पडे और उनकी वैराग्य वृत्ति और भी अधिक उद्दीप्त हो उठी।

जो घटनायें जन-साधारण के लिए महत्त्वहीन सी होती हैं, उन्ही को महान् व्यक्तियो के जीवन मे असाधारण महत्त्व प्राप्त हो जाता है। शिवमूर्ति पर चढे मूषक ने मूलशकर के मन मे जिस जिज्ञासा को अकुरित किया था भगिनी और चाचा के निधन से वह तीव्रतर हो उठी। भला ऐसा कौन सा परिवार होगा, जिसमे लोग काल का ग्रास न बने हो। श्मशान वैराग्य तो सभी को जागता है और अपने प्रियजन को चिर विदाई देने के लिए श्मशान भूमि मे उपस्थित पत्थरदिल इन्सानो के नेत्रो से भी अश्रुकण छलक पडते हैं। उस समय अनेक लोगो को 'ससार मिथ्या है' की रट लगाते हुए भी सुना जा सकता है। किन्तु अपने परिवार के इन दो आत्मीय जनो के चिर विछोह ने बालक मूलशकर के मन मे मृत्यु पर विजय प्राप्त कर मृत्युञ्जय बनने का सत्सकल्प जगा दिया। वह उस पथ की खोज मे सक्रिय हो उठा। धर्म जिज्ञासा और अमरता की प्राप्ति हेतु प्रवृत्त मूलशकर ने पारिवारिक माया मोह के पाश तोडने का सकल्प कर लिया। उसे न सम्पदा अपनी ओर आकर्षित कर पाई और न ही सुख सुविधायें उसे पथ से विचलित करने मे सफल हो सकी, क्योकि वह तो

अब मानव जाति के समक्ष उस पथ को प्रशस्त करने हेतु प्रवृत्त हो रहा था, जिसका अनुगमन कर मानव देह धारण करने का साफल्य प्राप्त कर सकता है।

गृह त्याग

काल्पनिक शिव से नाता तोडने वाला मूलशकर सच्चे शिव (कल्याण) की खोज मे एक दिन वैभव, सम्पदा और सुविधाओ की मृग मरीचिका से सर्वथा मुख मोड पारिवारिक बन्धनो को तोड घर से निकल पडा। उसके मातापिता ने अपने मेधावी कुल दीपक को विवाह के बन्धन मे बाधने के सुख स्वप्न अपने नेत्रो मे सजोये ही थे कि उनके नयनो का यह तारा केवल एक परिवार का नही अपितु सम्पूर्ण आर्य जाति का सहारा बनने के लिए अन्धकार ग्रस्त मानवो को प्रकाश का पुनीत पथ दिखाने की क्षमता अर्जित करने चल पडा। यो तो गौतम बुद्ध के जीवन मे महाभिनिष्क्रमण का अवसर आया था, किन्तु उनके पथ मे कोई विशेष बाधा उपस्थित न हो पाई थी। बालक मूलशकर का सकल्प, सकल्प की पूर्ति हेतु प्रयाण और अपने प्रवास के सम्बन्ध मे पूर्ण गोपनीयता हेतु निराहार पर्यटन व जागरण ऐसी अनुपम घटनायें है, जिनका अन्यत्र उदाहरण मिलना दुर्लभ है। वस्तुत. अपने सकल्प की सिद्धि हेतु अडिग निष्ठा ने ही उन्हे इन बाधाओ को प्रसन्न मन से सहन करने की प्रेरणा दी थी।

२१ वर्ष के युवक मूलशंकर ने माता पिता के वियोग की चिन्ता न करते हुए एक दिन शौच के बहाने गृह त्याग कर स्वतन्त्र पथ का अवलम्बन कर लिया। ज्ञान प्राप्ति की आकाक्षा को हृदय मे बसाये परिवार की सुख सुविधाओ को ठुकराने वाले इस जिज्ञासु युवक के पास घर की निशानी के रूप मे जो मूल्यवान् अगूठी आदि आभूषण थे, वे भी पाखण्डी वैरागी साधुओ की भेंट चढ गये।

पुन· गिरफ्त में : किन्तु

युवक मूलशकर अन्ततः निश्शक भाव से सायला नामक ग्राम मे जा पहुँचे। वहाँ उन्होने एक ब्रह्मचारी से ब्रह्मचर्य व्रत की दीक्षा ली और 'शुद्ध चैतन्य' बन काषाय वस्त्र धारण कर हाथ मे तुम्बा पकड लिया। मूल जी अब योगाभ्यास मे दत्तचित्त हो गये। वही से वे एक दिन जा पहुँचे कोट कागडा।

यहाँ से वह सिद्धपुर पहुँचे और नीलकठ महादेव के उस स्थान पर ठहरे, जहा एक दडी सन्यासी और अनेक ब्रह्मचारी ठहरे हुए थे। कोट कागडा मे मूलशकर की भेंट एक पूर्वपरिचित वैरागी से हुई थी। उसीने उनके पिता को पत्र लिखकर यह सूचित कर दिया कि तुम्हारे पुत्र ने भगवे वस्त्र धारण कर लिये हैं

और वह ब्रह्मचारी वेश मे यहाँ से कार्तिकी मेले मे सम्मिलित होने हेतु सिद्धपुर गया है।

मूलशकर के पिता जी के लिए पत्र आशा की एक किरण बन गया और वे चार सिपाहियो को साथ लेकर सिद्धपुर जा पहुँचे। मेले मे घूम फिर कर एक दिन प्रात काल वे उस शिवालय मे जा पहुँचे जहाँ उनका पुत्र काषाय वस्त्र धारण किये बठा था। पुत्र को इस वेश मे देखते ही उनकी क्रोधाग्नि भडक उठी और वे गरज उठे, "तुमने हमारे कुल को सदैव के लिए कलकित कर दिया है, मूलशकर!" उन्होने आवेश मे और भी बहुत कुछ कह डाला। उस समय पिताजी की ताडना से मुक्ति पाने हेतु मूलशकर (शुद्ध चैतन्य) ने अपने पिता के दोनो चरण पकड लिए और बोले, "मैने कुछ धूर्तो के बहकावे मे आकर गृह त्याग दिया था। अपने इस कर्म का मै अब काफी फल भोग चुका हूँ। मैने बहुत कष्ट उठाये हैं, पिता जी! आप मेरे अपराधो को क्षमा कीजिये। मै तो स्वय ही लौटने वाला था। अब मैं आपके साथ ही घर वापस चलने को तैयार हूँ।"

पुत्र के इस पश्चात्ताप से भी पिता की क्रोधाग्नि शात न हो पाई और उन्होने शुद्ध चैतन्य का तूम्बा तोड दिया तथा गेरुए कुर्ते के भी तार-तार कर डाले। वे उन्हे श्वेत वस्त्र पहनाकर अपने ठहरने के स्थान पर लिवा ले गये। वहाँ भी पिता के कटु वचनो का सिलसिला जारी रहा। वे बोले, "तेरी माता रो रोकर प्राण दे रही है और तू ऐसा कठोर हृदय है कि मातृ हत्या करने पर ही उतारू है।" शुद्ध चतन्य ने नितांत विनीत भाव से पिता को आश्वासन दिया, "अब आप निश्चिन्त हो जाइए। मैं आपके साथ चलकरमाता जी के दर्शन करूगा।" इस पर भी पिता निश्चिन्त न हो पाये और उन्होने अपने पुत्र पर कडा पहरा लगा दिया और सैनिको को निर्देश दिया कि इस पर कडी दृष्टि रखी जाय।

मत्यु जय बनने की साधना को हृदय मे बसाये शुद्ध चैतन्य ने पिता को क्षणिक मोह के वशीभूत आश्वासन तो दे दिया था, किन्तु उनका मन अपने भावी जीवन की दिशा निर्धारित कर चुका था। जिनके मन मे चाह होती है, वे राह भी खोज निकालते हैं। अत उन्होने पितृ बन्धन मे दो दिन और दो रातें बिता दी। तीसरा दिन भी ज्यो त्यो कर कट गया। तीसरी रात भी आधी बीत गई। उन्होने प्रगाढ निद्रा का अभिनय किया। तीसरा प्रहर आरम्भ हुआ। दैवयोग से पहरे पर तैनात सैनिक ऊँघते-ऊँघते निद्रा में लीन हो गये और इस अवसर का लाभ उठाकर ब्रह्मचारी शुद्ध चैतन्य ने बन्धनो से मुक्त होकर पुनः अपनी राह ली। हा, चलते समय उन्होने अपने हाथ मे एक जलपात्र अवश्य ही ले लिया कि यदि कोई पूछे तो कह सकें कि 'लघुशका' से

निवृत्त होने जा रहा है। बिना रोक टोक भागते चलते शुद्ध चैतन्य सिद्धपुर से आध कोस दूर स्थित एक उद्यान मे जा पहुँचे। वहा एक पुराना देवालय था। शुद्ध चैतन्य वहा लगे एक वट वृक्ष की शाखाओ पर चढ़कर मन्दिर के शिखर पर जा छिपे और फिर विचारो मे खो गये कि देखें अब क्या होता है ?

उन्हे ढू ढने के लिये रात्रि मे ही दौड धूप आरम्भ हो गई थी। लोग उन्हे खोजते हुए उस उद्यान मे भी जा पहुँचे, जहा वह छिपे थे। इन लोगो ने मन्दिर के बाहर भीतर ढू ढा, उद्यान के मालियो से भी पूछताछ की किन्तु खोज करने वालो की दृष्टि ब्रह्मचारी पर न पड पाई। रात्रि के चार बजे तक यह क्रम जारी रहा और ब्रह्मचारी भी ऐसे दुबके बैठें रहे कि किसी को भी उसका आभास न हो पाया। हिलना डुलना, खासना तो दूर रहा वे अपने श्वास-प्रश्वास की गति को भी रोके रहे। सारा दिन उन्होने मन्दिर के शिखर पर ही बिता दिया और सायकाल कुछ अन्धेरा हो जाने पर ही शिखर से नीचे उतरे और सडक को छोडकर अलग मार्ग से आगे बढ चले। उस ग्राम से दो कोस के अन्तर पर जाकर उन्होने एक ग्राम मे विश्राम किया। उनके पिता कई दिन सिद्धपुर मे रहने के उपरात अतत निराश लौट गये। यह था शुद्ध चैतन्य (मूलशकर) का अन्तिम बार पितृ दर्शन और स्वजन ससर्ग।

ग्रामो और नगरो मे विचरण करते हुए शुद्ध चैतन्य अहमदाबाद होकर बडौदा पहुँचे। वहा उन्होने चैतन्य मठ मे आसन जमाया। वहाँ आपने ब्रह्मानन्द जी ब्रह्मचारी एव अन्य सन्यासियो से वेदान्त का अध्ययन किया और पक्के वेदान्ती बन 'अह ब्रह्मास्मि' उदघोष करने लगे। किन्तु उनकी ज्ञान पिपासा शात न हो पाई थी। अत बडौदा से नर्मदा की और चले गये। वहा उनका सपर्क सच्चिदानन्द परमहस से हुआ। उनसे यह जानकर कि इन दिनो चाणोद कर्णाली मे कई महान् विद्वान् आये हुए हैं वे वहा जा पहुँचे। वहाँ चिदाश्रम व परमानन्द नामक विद्वज्जनो से आपका सपर्क हुआ और उनसे आपने कई ग्रन्थो का अध्ययन किया।

सन्यास की दीक्षा एव पर्यटन

शुद्ध चैतन्य ने अब सन्यास आश्रम मे प्रविष्ट होने का सकल्प किया। उन्होने अपने मित्र एक दाक्षिणात्य ब्राह्मण के माध्यम से स्वामी चिदाश्रम के समक्ष अपने सकल्प की अभिव्यक्ति भी की। उन्होंने ब्रह्मचारी शुद्ध चैतन्य के अभी युवक होने का तर्क प्रस्तुत कर असहमति व्यक्त की किन्तु यह असहमति और अस्वीकृति भी इस युवा ब्रह्मचारी के सकल्प को न डिगा पाई और वे विद्याध्ययन एव योगसाधना मे रत रहते हुए इस प्रतीक्षा मे रहे कि कोई अन्य सुयोग्य सन्यासी मिले और वे उन से दीक्षा लेकर अपने सकल्प को क्रियान्वित करें। इसी प्रतीक्षा मे उन्होने नर्मदा के तटवर्ती क्षेत्र मे १-२ वर्ष की अवधि बिता

दी और २४ वें वर्ष मे प्रविष्ट हो गये। एक दिन उन्हें अपने सकल्प को क्रियान्वित करने का सुअवसर मिल ही गया।

एक श्रेष्ठ सन्यासी एव महान् विद्वान् स्वामी पूर्णानन्द सरस्वती के चाणोद से डेढ कोस के अन्तर पर स्थित वनखड मे आ विराजने का शुभ समाचार उन्हे प्राप्त हुआ और वह अपने मित्र उपरोक्त दाक्षिणात्य पडित सहित स्वामी जी की सेवा मे उपस्थित हो गये। बुद्धि की कसौटी पर प्रत्येक तथ्य को तोलने के अभ्यस्त शुद्ध चैतन्य ने स्वामी पूर्णानन्द से विचारविमर्श करने के उपरात सन्यास आश्रम की दीक्षा देने की दृष्टि से उन्हे सर्वथा योग्य पाया तथा उन्हे इस बात के लिए मना लिया कि वह उन्हें सन्यास आश्रम की दीक्षा देने का कार्य सम्पन्न करें।

व्रत, उपवास आदि का दो दिवस का क्रम चला और अन्तत वह शुभ घडी आ गई जब शुद्ध चैतन्य को स्वामी पूर्णानन्द ने दीक्षा देकर उन्हे दयानन्द सरस्वती नाम दिया। अब शुद्ध चैतन्य दयानन्द हो गये और उनके हाथो मे सुशोभित हो उठा दड और कमडल। स्वामी दयानन्द ने गुरु चरणो मे बैठ कर ब्रह्मविद्या सम्बन्धी ग्रन्थो का अध्ययन किया। गुरुवर्य ने तो द्वारका की राह ली किन्तु दयानन्द चाणोद कर्णाली मे ही रहते रहे। तदुपरात चाणोद के समीप स्थित व्यासाश्रम मे महात्मा योगानन्द से यौगिक क्रियाए सीखी और श्री कृष्ण शास्त्री नामक एक उद्भट वैयाकरण से व्याकरण का ज्ञान प्राप्त किया। चाणोद कर्णाली मे ही अपने गुरु के श्रीचरणो मे बैठ कर आपने शास्त्रो का भी अध्ययन किया।

इसी स्थान पर उनका सपर्क दो महान योगियो ज्वालानन्द पुरी एव शिवानन्द पुरी से हुआ। जिज्ञासु मन की ज्ञान पिपासा को शात करने मे देव दयानन्द के जीवन मे इन दोनो ही योगियो ने प्रमुख भूमिका निभाई। वे उनके निर्देशानुसार अहमदाबाद के दुग्धेश्वर मन्दिर मे भी पहुँचे, जहा इन योगियो ने अपने आश्वासन के अनुसार स्वामी दयानन्द को योग के भेद और रहस्य समझा कर तृप्त कर दिया। इन दोनो का ही आभार स्वामी जी ने इन शब्दो मे व्यक्त किया था—

"वहा उन्होने अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण की और अपने कथनानुसार मुझे निहाल कर दिया। इन्ही महात्माओ के प्रभाव से मुझे क्रिया समेत पूर्ण योग विद्या भली भाति विदित हो गयी। इसीलिए मैं उनका अत्यन्त कृतज्ञ हूँ। वास्तव मे उन्होने मुझ पर महान् उपकार किया। इस कारण मैं उनका विशेष रूप से अनुगृहीत हूँ।"

इन महान् योगीजनो के आभार से दबे देव दयानन्द ने आबू पर्वत की यात्रा की और वहाँ कई अन्य प्रमुख योगियो से विशेष योग तत्त्वो का ज्ञान

अर्जित किया। योगियो और सतो के शुभ सत्सग व ज्ञान से अपने ज्ञान कोश मे दयानन्द वृद्धि करते रहे और सवत् १९१२ मे कुम्भ के महापर्व के अवसर पर हरद्वार पधारे। इस कुम्भ के अवसर पर उन्हे कई महान योगियो से साक्षात्कार का सुअवसर प्राप्त हुआ। महर्षि ने इस कुभ पर्व के सबन्ध मे अपनी प्रतिक्रिया इन शब्दो मे व्यक्त की "मैंने हरद्वार का वह पहला कुभ ही देखा था। मैने कभी यह कल्पना नही की थी कि कुभ के मेले मे इतने त्यागी और तत्त्वदर्शी पुरुष आयेंगे।" स्वामी जी ने हरद्वार मे जहा योगियो से सत्सग किया, वहा चडी पर्वत पर योग की क्रियाओ का अभ्यास भी। कुभ के उपरात आपने ऋषिकेश मे कई श्रेष्ठ महात्माओ एव विमल-चरित्र सन्तो के सत्सग का लाभ उठाया। यहा से आप दो पर्वतीय साधुओ और एक ब्रह्मचारी के साथ टिहरी पहुँचे और नगर से बाहर कुछ दिन तक ठहरे।

एक कटु अनुभव

टिहरी के इस प्रवास मे स्वामी दयानन्द को एक कटु अनुभव भी हुआ। एक राजपडित द्वारा स्वगृह पर भोजन हेतु निमत्रण के उपरात उसके यहा पहुँचने पर मास और पशुओ के भुने हुए सिरो पर पडित द्वारा छुरी से प्रहार होते हुए उन्होने देखा। जीवमात्र के प्रति दया की भावना से ओतप्रोत देव दयानन्द इस दृश्य को देखते ही वापस लौट पडे और अपने स्थान पर आ गये। कुछ समय के उपरात वह राजपडित स्वामी जी को पुन अपने घर ले जाने के लिए उनकी सेवा मे उपस्थित हुआ। किन्तु स्वामी जी ने सुस्पष्टता मे उसे बता दिया "आप मास भक्षी है। मेरे लिये मास भक्षण तो दूर उसको देखने से ही मैं रोगी हो जाता हूँ। यदि आप मुझे भोजन ही कराना चाहते हैं तो मेरे लिये कुछ फल, अन्न आदि यही भिजवा दीजिये। मेरे साथ आया ब्रह्मचारी यही भोजन बना लेगा।" राजपडित लज्जित होकर लौट गया और उसने अन्न, फल आदि भिजवा दिये। वस्तुत वह राजपडित तात्रिक था। स्वामी दयानन्द ने टिहरी मे अनेक दिन तक निवास किया और वहा रहते हुए तात्रिक ग्रन्थो का अध्ययन भी। टिहरी के उपरात आपने श्रीनगर के केदार घाट पर स्थित एक मन्दिर मे निवास किया। समीप स्थित एक वनाच्छादित पहाडी पर निवास करने पर गगा गिरि नामक एक श्रेष्ठ सन्यासी से आपका सपर्क हुआ और उनसे योग इत्यादि पर आपका दो मास तक विचार विमर्श व अध्ययन आदि का क्रम चला। ग्रीष्म ऋतु मे महर्षि दयानन्द ने महात्मा गिरि से विदाई ली और वहा से आप रुद्रप्रयाग होते हुए शिवपुरी जा पहुँचे और वहा से पुन केदार घाट आ गये। वहा से आपने गुप्त काशी के लिये प्रस्थान किया। तदुपरात आप गौरी कुण्ड, भीम गुफा एव त्रियुगी-नारायण गये और पुन केदार घाट लौट आये। वस्तुतः महात्मा गगा-गिरि के साथ सत्सग का आकर्षण ही उन्हे बार-बार केदार घाट ले आता था।

११

उत्तराखण्ड में

केदारघाट मे ही स्वामी दयानन्द के हृदय मे यह विचार उत्पन्न हुआ कि हिमालय के सुशात वायुमडल मे योग साधना मे रत योगीजनो से सपर्क स्थापित कर अपने ज्ञान कोश को और भी अधिक विस्तृत किया जाये। उन्हे लगा कि हिमालय की शैल मालायें उन्हे भ्रमणार्थ आमन्त्रण दे रही हैं। उन्होने हिम मडित पर्वतमालाओ के इस मूक निमन्त्रण को स्वीकार कर कंपकंपा देने वाले शीत की भी चिन्ता न की और अपनी उमंग को पूर्ण करने के लिये चल पडे। चतुर्दिक् फैले हिमाच्छादित शैल शिखरो, और गगन चुम्बी पर्वत शिखरो के आस पास उन्होने यात्रा की, किन्तु उन्हे वहा न कोई योगी मिला और न ही किसी सिद्ध महात्मा का दर्शन हुआ। वे तुङ्गनाथ शिखर की ओर भी बढे, किन्तु मदिर मे निष्प्राण मूर्तियों और उन्ही के समान जडवत् बने पुजारियो की टोलियो को देखकर उन्हे उस स्थान से कुछ बिरक्ति सी हो गई और वे लौट पडे। उतरते समय घने वनो से आच्छादित मार्ग पर पग बढाते बढाते अन्तत वे एक ऐसे स्थान पर आ पहुँचे, जहा आगे क मार्ग सर्वथा अदृश्य था। वे वहा से मुडे और एक जलधारा के तट पर ज पहुँचे। वे समीप स्थित एक टीले पर चढे और उन्होने चतुर्दिक् दृष्टिपात किया। किन्तु उन्हे चतुर्दिक् वनाच्छादित क्षेत्र ही दृष्टगोचर हुआ। सूर्य अस्त हो रहा था और चतुर्दिक् अधकार का आवरण घहराता जा रहा था। महर्षि सोच भी न पा रहे थे कि इस निर्जन वन मे जल से सर्वथा वचित वे यह भयानक रात कैसे व्यतीत करे? उन्होने पुनः पग बढाये और कटकाकीर्ण मार्ग पर बढ चले। जीवन भर कष्ट कण्टको को काट कर सम्पूर्ण मानवता के समक्ष सुस्पष्ट मार्ग प्रशस्त करने वाला यह महान् साधक भला उस अधेरी रात से भयभीत होता भी तो क्यो? उसे तो अपनीही राह नही बनानी थी, अपितु मानव मात्र का पथ प्रदर्शन करना था। वे बढते जा रहे थे और झाडियो मे उलझ कर उनके वस्त्र तार तार होते जा रहे थे। इसके साथ उनके पैरो मे अनेक काटे बिंधते जा रहे थे। पैर छलनी हो चुके थे और अग प्रत्यग से रक्त रिस रहा था। अन्तत इस महान् साधक को एक बस्ती के चिह्न दृष्टि गोचर हुए। वे बढते बढते ओखीमठ जा पहुँचे। यहाँ उन्होने शेष रात्रि व्यतीत की और अरुणोदय होते ही वे गुप्त काशी की ओर बढ चले। वहाँ से उन्होने पुन ओखीमठ और विभिन्न गुफाओ का भ्रमण किया। किन्तु उन्हे वहाँ प्राय: पाखडी जन ही दष्टिगोचर हुए। वहा एक महंत ने उन्हें अपना शिष्य बनाने की इच्छा से अपनी प्रचुर धन सम्पदा का भी प्रलोभन दिखाया और अपनी गद्दी का उत्तराधिकारी नियुक्त करने का भी। किन्तु भौतिक सुखो के आकर्षण ने उन्हे न तो भरमाया और न अपने निर्धारित पथ

से डिगाया। उन्होने महत द्वारा दिये गये प्रलोभन को ठुकरा दिया और कहा कि यदि मुझे इन सासारिक सुखो को ही चाह होती तो मैं अपने माता पिता और पारिवारिक जनो से ही नाता क्यो तोडता ? साथ ही उन्होने इस महत को यह भी बताया कि उसके साथ रहना और वहा बसना भी उनके लिये सभव नही है, क्योकि ऐसा करने से उनके लक्ष्य की सिद्धि हो पाना असभव है। महत के आग्रह की उपेक्षा कर देव दयानन्द अगले दिन ही जोशी मठ वापस आ गये। यहा सयोग से उनकी भेंट अनेक विद्वान् सन्यासियो एव योगियो से हुई और उन्होने इन विद्वज्जनो से यहा योग का और अधिक व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त किया।

बद्रीनाथ की ओर

जोशीमठ के महत से विदा ले सन्यासी दयानन्द ने बद्रीनाथ की ओर प्रस्थान किया। वहा आप बद्रीनारायण मन्दिर मे पहुँचे और वहा के महत रावल जी के रूप मे शास्त्रो के एक महान् विद्वान् से उनका साक्षात्कार हुआ। आप उनके पास कई दिन ठहरे और एक दिन उनसे प्रश्न किया कि क्या समीपस्थ अचल मे कोई सच्चा योगी निवास करता है ? रावल जी ने सखेद उन्हे सूचित किया कि इधर तो कोई ऐसा योगी नही, किन्तु साथ ही यह भी कहा कि "यदा कदा देवालय के दर्शनार्थ ऐसे योगी जन आते रहते हैं।"

दृढ सकल्प : आपदा को निमन्त्रण

रावल जी से उपरोक्त वार्ता के उपरात स्वामी दयानन्द ने इस हिममडित पर्वतीय अचल का भ्रमण कर सच्चे योगी जनो को खोज निकालने का दृढ सकल्प कर लिया और आपने इस निश्चय की पूर्ति हेतु वह बद्रीनाथ से प्रस्थान कर पर्वतीय तलहटी के साथ साथ यात्रा करते हुए अलखनदा के तट पर जा पहुँचे। वहा उन्होने वे पर्वत शिखर देखे जो हिम की चादर ओढे, स्फटिक के तुल्य द्युतिमान हो रहे थे। बहाव मे आलोकित शिखाओ से टकराता अलखनन्दा का जल बार बार इठलाता था। फेन फेंकता, लहरो को गर्जन तर्जन प्रदान करता तीव्रता से गतिमान था। चतुर्दिक् व्याप्त इस अनुपम और अवर्णनीय सौन्दर्य को निहारते हुए दयानन्द उस दयामय की दया का मन ही मन गुणगान करते अलखनन्दा के स्रोत की ओर बढते गये। मार्ग था सर्वथा निर्जन और विषम। किन्तु जहा चाह वहा राह की उक्ति चरितार्थ हुई। वे सरिता के स्रोत पर पहुँच गये। वहा पहुँच कर उन्हे अनुभव हुआ कि "यह स्थान मेरे लिये सर्वथा अपरिचित है और मुझे न हिमाच्छादित नदी नालो से निकलने वाले मार्गों की जानकारी है, न ही उनके भेदो की।" चतुर्दिक् गगनचुम्बी शैल शिखर ही दृष्टि गोचर हो रहे थे। आगे बढने के लिये उन्हे कोई

मार्ग भी दिखाई न पड़ रहा था। स्वामी जी किंकर्तव्य विमूढ़ से हो गये। किन्तु कुछ क्षण तक चिन्तन के उपरांत उन्होंने अलखनन्दा को पार करने की ठान ली। उनके मन मे यह विचार उदित हुआ कि शायद नदी के उस पार उन्हे अपने अभीष्ट की सिद्धि का सुयोग प्राप्त हो जाये। वे साहस सजोकर नदी के जल में प्रविष्ट हो गये। कही नदी एक दो हाथ ही गहरी तो कही अत्यधिक गहन। हिमालय प्रदेश का शीतल पवन तीर सा उनकी काया को बेध रहा था, जिस पर पूरे वस्त्र भी न थे। सरिता का पाट था तो आठ दस हाथ लम्बा ही, किन्तु वह छोटे बडे और नोकीले हिमखण्डो से परिपूरित था। दयानन्द सरिता को पार करते आ रहे थे, किन्तु ये हिमखड उनकी काया को बेधने मे सलग्न थे। स्वामी जी ने नदी का पाट तो नाप लिया, किन्तु उस पार पहुँचते पहुँचते उनके पाव छलनी हो चुके थे और उनके अगो से रक्त छल-छलाने लगा था। प्रचड शीत के कारण सुन्न हुए शरीर मे लगे इन आघातो के परिणामस्वरूप बने इन व्रणो का उन्हे बहुत देर तक तो भान ही न हो पाया। वे मूर्छित होकर हिममय जल मे गिरने ही वाले थे कि उनके शरीर मे चैतन्य की रेखा चमक उठी और वे नितात सतर्कता सहित अपनी सपूर्ण शक्ति सजोकर सरिता के उस पार जा पहुँचे। तट पर पहुँच कर भी कुछ समय तक तो उनकी अवस्था अचेतन सी ही रही। उन्होने साहस जुटाकर अपने शरीर के ऊपरी भाग के वस्त्र उतारे और पाव से घुटने तक का सारा भाग उनसे जकड कर बांध लिया। वे निश्चल से खडे कुछ समय तक सोचते रहे कि शायद परमात्मा किसी को उनकी सहायतार्थ यहा भेज दें। तिमिराच्छन्न अमावस की रात मे सहसा ही दमक उठने वाली विद्युत् के समान सहसा ही स्वामी जी को दो पर्वतीय जन सामने से आते हुए दृष्टिगोचर हुए। परमहस दयानन्द को इस अवस्था मे वहा देखकर आश्चर्यचकित हुए इन भद्रजनो ने उन्हे प्रणाम किया और साथ ही सादर अनुरोध भी किया कि "आप हमारी कुटिया को पावन कीजिये। वहा आपका शीत से भी बचाव हो जायेगा और हम जो रूखा सूखा भोजन होगा वह भी आपको प्रदान कर सकेगे।" महर्षि उस समय चलने मे सर्वथा असमर्थ थे अतः वे इन सद्गृहस्थो का निमन्त्रण स्वीकार न कर सके। अन्तत वे दोनो पर्वतीय जन सखेद वहा से प्रस्थान कर गये और कुछ ही क्षणो के उपरात हिमाच्छादित शैल माला के टीलो और गहराई की ओट मे देव दयानन्द की दृष्टि से अदृश्य हो गये।

स्वामी दयानन्द ने कुछ समय तक वहीं विश्राम किया और जब उन्हे कुछ स्वस्थता का अनुभव हुआ तो वह वहां से चल पडे तथा वसुधारा तीर्थ पर जा पहुँचे। वहा कुछ देर तक ठहरने के उपरात पुन रवाना होकर रात्रि मे लगभग आठ बजे बद्रीनारायण वापस आ गये। उन्हे देखते ही रावल जी हर्षित

हो उठे जो उनके अचानक ही प्रस्थान कर जाने से चिंतित थे। उनके पूछने पर महर्षि दयानन्द ने उन्हे सिद्धो के दर्शनार्थ की गई इस सकट सकुल यात्रा का पूर्ण विवरण बताया। रावल जी ने स्वामी जी के लिये कुछ उपयुक्त पदार्थ दिये, जिन्हे ग्रहण कर देव दयानन्द के अशक्त शरीर मे पुन शक्ति का सचार हुआ और उन्होने वही शयन कर रात बिता दी। दूसरे दिन सूर्योदय होने पर स्वामी जी ने रावल जी का आभार व्यक्त करते हुए उनसे विदा ली।

अब स्वामी जी ने रामपुर की ओर प्रस्थान किया। मार्ग मे रात उन्होने एक योगी की कुटिया मे बिताई जो सस्कृत साहित्य का प्रकाड पडित था। उसके शब्दो ने स्वामी जी को और भी अधिक प्रेरणा प्रदान की और फिर बनो और पर्वतो को पार करते हुए वे रामपुर मे साधु रामगिरि के स्थान पर पहुँच गये। अपने महान् चरित्र के कारण रामगिरि बस्ती वासियो के लिये आस्था और श्रद्धा के केन्द्र थे। किन्तु उनसे वार्तालाप के उपरात दयानन्द ने काशीपुर की राह पकडी और वहा से आप द्रोणसागर चले गये।

द्रोणसागर मे आपने सम्पूर्ण शरद् ऋतु व्यतीत की। यहा रहते हुए एक दिन आपके मानस पटल पर यह विचार भी उभरा कि हिमवान् के उत्तुग शैल शिखरो मे पहुँच कर उन्हे देह त्याग कर देना चाहिये। किन्तु क्षण भर के लिये मन मे कोधा यह विचार क्षणिक ही रहा और उन्होने विचारा कि पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति बिना ऐसा करना कायरता है। उन्होने शास्त्रो की शिक्षाओ के प्रभावान्तर्गत पुनः यह विचार किया कि कर्म करना ही उनका अधिकार है। उन्हे फल के प्रति अधीरता को त्यागना चाहिये। यदि उनकी साधना सच्ची है तो शुभ घडी आने पर परमपिता परमात्मा स्वय ही उन्हे फल प्रदान करेंगे।

शव परीक्षा

इस प्रकार नये सकल्प और विश्वास को सजो दयानन्द ने द्रोण सागर से मुरादाबाद की ओर प्रस्थान किया। मुरादाबाद से आप सभल और वहा से गढ मुक्तेश्वर मे गगातट पर जा पहुँचे। गगा तट पर विचरण करते हुए एक दिन उन्हे जल मे प्रवाहित एक शव दृष्टिगोचर हुआ। उसे देखते ही उनके मन मे यह विचार कौंध गया कि उन्होने विभिन्न पुस्तको मे नाडी चक्र का जो विवरण पढा है क्यो न आज उसकी सत्यता को परख लिया जाये। उन्होने अपने पास की शिव सध्या, हठ योग प्रदीपिका, योग बीज आदि पुस्तको को तट पर रखा और स्वय गगा की लोल लहरो मे छलाग लगा दी और जल मे बहते शव को पकड कर तट पर ले आये। अपने उपकरणो मे से उन्होने तीक्ष्ण धार वाला चाकू निकाला और शव की छेदन क्रिया आरम्भ कर दी। सर्व प्रथम उन्होने उसका हृदय चीर कर निकाला। वे उसकी आकृति व लम्बाई

चौडाई की पुस्तको मे प्रस्तुत विवरण से तुलना करते रहे। इसी प्रकार ग्रीवा, सिर आदि अगो की भी तुलना की तथा नाभि आदि चक्रो का परीक्षण भी। परन्तु अपने पास की पुस्तको मे प्रदत्त विभिन्न अगो के विवरण से उन्होने इन अगो मे लेशमात्र भी समता न पाई। अतएव उन्हे इन पुस्तको की निस्सारता स्पष्ट हो गई और उन्होने इन्हे चीर फाडकर गगा मे प्रवाहित कर दिया।

गंगा तट से नर्मदा स्रोत की ओर

गगा तट पर कुछ काल तक विश्राम के उपरान्त स्वामी जी ने अपनी यात्रा पुन आरम्भ कर दी और सवत् १९१२ की समाप्ति पर वे फर्रुखाबाद होते हुए कानपुर पहुँचे तथा सवत् १९१३ मे पाच मास तक फर्रुखाबाद और प्रयाग के मध्य मे स्थित स्थानो का भ्रमण किया। तदुपरात आप काशी आ गये। वहा से आप चडालगढ पहुँचे और बारह दिन तक दुर्गाकुड मन्दिर मे ठहरे। वे यहा योग विद्या के अध्ययन और अभ्यास मे तल्लीन रहे।

१९१३ के चैत्र मास मे महर्षि दयानन्द नर्मदा नदी के स्रोत की खोज मे निकल पडे। वे किसी से भी मार्ग न पूछते हुए अपनी धुन मे रमे दक्षिणाभिमुख हो बढते चले जा रहे थे कि एक विस्तृत और सघन वन मे जा पहुँचे। पहले पहल तो उन्हे यह वन प्रान्तर सर्वथा जन शून्य दृष्टिगोचर हुआ। किन्तु जब उन्होने ध्यान से देखा तो उन्हें कुछ दूरी पर कई झोपडियाँ सी दृष्टिगोचर हुई। प्यास ने स्वामी जी का कठ सुखा दिया था, अतएव वे उन्ही झोपडियो मे से एक मे गये। उसमे निवास करने वाले व्यक्ति ने स्वामी जी को पीने के लिये दूध प्रदान कर अतिथि सत्कार की परपरा का पालन किया। दूध पीकर एव कठ मे आई शुष्कता को मिटाकर कर्मयोगी दयानन्द ने पुन अपनी राह ली। अभी वे थोडी सी दूरी पर पहुँचे होगे कि उन्हे आगे का मार्ग लुप्त सा प्रतीत हुआ। यत्र-तत्र कुछ पगडडियाँ अवश्य ही दृष्टिगोचर हो रही थी। स्वामी दयानन्द उन्ही मे से एक पर बढ़ चले। वे अभी लगभग डेढ मील ही चले होगे कि उन्होने अपने आप को एक निविड वनखड मे पाया, जहा चतुर्दिक् अनेक झडबेरियाँ थी और थी लम्बी-लम्बी घास। ऐसे स्थान मे तो पगडडिया भी विलुप्त हो गई थी। महर्षि असमजस मे थे कि किस ओर पग बढायें। सहसा ही एक डरावना रीछ दौडता हुआ आया और वह हिंसक जीव चिंघाडता और गुर्राता हुआ अपने दोनो पावो पर खडा हो गया। उसने अपना मुख खोला और स्वामी जी की ओर लपका। अब तक आश्चर्य चकित होकर खडे हुए महर्षि दयानन्द को लगा कि यह हिंसक जीव तो उन्हे धर दबाने को ही आतुर है। अतएव उन्होने अपना सोटा उठाया और उसकी ओर घुमा दिया, जिसे देखते ही वह रीछ वहा से भाग निकला।

उनके जीवन की इस घटना को कर्नल अल्काट एव देवी ब्लैवेट्स्की ने उनके योगी होने का परिचायक बताया है। उनका कथन है कि इस हिंसक पशु का महर्षि के हाथ के दड को देखते ही पलायन वस्तुत महर्षि दयानन्द की योग शक्ति का ही परिणाम था।

रीछ की चिंघाड इस भयावने वनखड मे गूज उठी, जिसे सुनकर उन झोपडियों के निवासी अपने शिकारी कुत्तो को साथ लेकर वहा आ पहुँचे, जहां महर्षि खडे हुए थे। उन्होने महर्षि से प्रार्थना की कि वे अपनी यात्रा को सक्षिप्त कर दें। उन्होने स्वामी जी को यह भी बताया कि इस घोर जगल में भालुओ के अतिरिक्त सिंह, हाथी एव अन्य अनेक प्रकार के हिंसक पशुओ का निवास है अत वे उनकी सेवा और सहायता को स्वीकार करें। स्वामी जी ने इस प्रस्ताव पर सभी का आभार व्यक्त किया और आगे बढते जाने का अपना अडिग सकल्प भी व्यक्त किया। जब महर्षि ने इनका अनुरोध अस्वीकार कर दिया तो उन्होने उनसे विदा लेते हुए उन्हें एक मोटा डडा भेंट करते हुए कहा कि मार्ग मे पुन. किसी हिंसक पशु से सामना हो जाने की स्थिति मे वह उनके काम आयेगा। स्वामी जी ने उसे ले तो लिया, किन्तु अभी वह कुछ ही दूरी पर पहुँचे थे कि उन्होंने इसे भी फेक दिया और अपनी यात्रा का क्रम जारी रखा। दयानन्द अपने पथ पर बढते हुए जा रहे थे। कई घटो की यात्रा के उपरात अन्तत सूर्यास्त की वेला आ गई और दिवाकर ने पश्चिम दिशा मे लालिमा बिखेरते हुए अपना मुख छिपा लिया। चतुर्दिक् अधकार व्याप्त होने लगा।

अब सामने का मार्ग भी दिखाई न पड रहा था, किन्तु धरा धाम मे व्याप्त अज्ञान के अधकार को चुनौती देने वाला यह मानव आगे ही आगे बढता गया। मार्ग मे हाथियो द्वारा तोडे फोडे गये वृक्षो से भी वह कई बार टकराया। उनके पाव काटो से छलनी हो गये थे और उनसे रक्त स्राव हो रहा था। अन्तत एक स्थान ऐसा भी आ गया, जहा पगडडी भी समाप्त हुई लगी और सामने तथा आस-पास दिखाई दीं। केवल झडबेरिया एव कटीले पौधे और वृक्ष। स्थिति भयानक रूप धारण कर चुकी थी। बडे से बडे साहसी का साहस भी ऐसी विकट परिस्थिति मे उसका साथ छोड जाता, किन्तु सकल्प के धनी स्वामी दयानन्द ने हार न मानी। उन्होने जो पग आगे बढाया था, उसे पीछे रखने का तो प्रश्न ही नही उठता था। जब आगे पगडडी भी दिखाई न दी तो महर्षि ने घुटनो और पेट के बल रेंगते हुए काटो और झाडियो मे से येन केन प्रकारेण आगे बढना जारी रखा और अन्तत वह एक खुले स्थल पर जा पहुँचे। अब तक वे थक कर पूर्णत निढाल हो चुके थे। उनके शरीर मे कम



सच्चे शिव को जानने 'मूल' घर से निकल पड़ा तो ढोंगी साधुओं ने उसके वस्त्राभूषण उतरवा लिये ।



ज्ञान की खोज मे भटकता मूलशंकर ब्रह्मचारी शुद्धचैतन्य बना और फिर स्वामी पूर्णानन्द सरस्वती से सन्यास ग्रहण कर स्वामी दयानन्द ।

से कम २० स्थानो पर घाव लग चुके थे। व्रणो से रक्त बह रहा था। उनके वस्त्र तार-तार हो चुके थे। किन्तु इसपर भी उन्होने रुकना उचित न समझा। अब अधकार और भी घटाटोप रूप धारण कर चुका था और अत्यन्त समीप स्थित किसी वस्तु को देखना भी प्राय असभव हो गया था। किन्तु अभी तक वे पूर्णत ध्यानावस्थित भी नही हो पाये थे कि उन्हे ऐसा शोर सुनाई पडा कि मानो कोई हिंसक वन्य पशु दहाड रहा हो। वस्तुत यह शोर एक जलूस का था। उन्होने देखा कि नर-नारियो का एक समूह उन्हींकी ओर बढता आ रहा है। सभवत ये लोग किसी मदिर मे कोई धार्मिक पर्व मनाने हेतु जा रहे थे। जब इन लोगो का यह विशाल समूह स्वामी जी के समीप पहुँचा तो इस निर्जन से स्थान मे उन्हे सर्वथा एकाकी पाकर वे सभी आश्चर्यचकित रह गये। उन लोगो के समूह मे से एक वृद्ध व्यक्ति महर्षि के पास आया और उनसे पूछा कि वे कहा से आये ? महर्षि ने उसे बताया कि वह काशी से आये हैं और नर्मदा का स्रोत उनका गन्तव्य स्थल है। यह उत्तर सुनकर ग्रामीणो का वह समूह वहा से चल पडा और स्वामी दयानन्द भी ध्यानावस्थित हो गये। लगभग आधे घटे के उपरात ही एक सपन्न सा प्रतीत होने वाला व्यक्ति अपने दो सेवको सहित वहा आ पहुँचा और स्वामी जी के समीप बैठ गया। उसने स्वामी जी को अपने साथ चल कर घर पर विश्राम करने का आग्रह किया, किन्तु महर्षि ने उससे कहा कि वे जहा हैं, वही ठीक हैं। जब उस व्यक्ति ने बहुत अधिक पूछताछ की तो महर्षि दयानन्द ने उसे अपने निश्चय से अवगत करा दिया। तदुपरान्त उस व्यक्ति ने अपने दोनो सेवको को स्वामी जी के पास ही ठहरने का आदेश दिया और साथ ही उनकी पूर्ण रूपेण देखभाल करने का भी। बाद मे वह एक पात्र मे भर कर स्वामी जी के लिये दूध भी ले आया। स्वामी जी ने दुग्धपान किया। वन्य पशुओ से रक्षा की दृष्टि से उस व्यक्ति ने स्वामी जी के समीप ही आग भी प्रज्वलित करा दी। स्वामी दयानन्द ने रात्रि प्रगाढ निद्रा मे बिताई और वे दोनो सेवक भी रात को उनके समीप ही डटे रहे। भोर से पूर्व ही स्वामी दयानन्द उठे और शौचादि से निवृत्त होकर उन्होने स्नान किया और सध्या आदि की। फिर वे अपनी मजिल की ओर बढ चले। अन्तत. वे अपनी निर्धारित मजिल पर जा पहुँचे। तदुपरान्त उन्होने तीन वर्ष नर्मदा तट पर विचरण करते हुए ही बिताये। अपने इसी प्रवास काल मे उन्होने मथुरा मे रह रहे महान् सन्यासी स्वामी विरजानन्द की ख्याति भी सुनी। उन्हे ऐसा लगा कि कोई उनके कानो मे बार-बार यह कह रहा है कि स्वामी विरजानन्द जी वह महान् पुरुष हैं, जिनकी खोज मे वह वर्षों से भटक रहे हैं और फिर उनके पग बढ़े चले मथुरा की ओर।

स्वामी विरजानन्द के चरणों में

स्वामी दयानन्द की कठोर साधना अन्ततः सफल हुई और १८५८ ई० मे वह मथुरा जा पहुँचे। वहाँ उन्होने लक्ष्मीनारायण मन्दिर मे अपना आसन जमाया। उन्होंने मथुरा मे आकर यह अनुभव किया कि दडी स्वामी विरजानन्द के सबन्ध मे उन्होन जो कुछ सुना था वह सर्वांश मे सत्य था। इस नगरी मे स्वामी विरजानन्द की कुटिया को खोजने मे दयानन्द को कोई कठिनाई न हुई क्योंकि मथुरा मे शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति होगा जिसने दडी स्वामी विरजानन्द का नाम न सुना हो। उनकी उद्‌भट विद्वत्ता और ख्याति से जो अवगत न हो। सभी को यह भी विदित था कि दडी स्वामी की कुटिया के द्वार सदैव बद ही रहते हैं। दयानन्द दडी स्वामी की कुटिया के द्वार पर पहुँचे और उसे खटखटाया, भीतर से एक प्रखर स्वर गूज उठा, **कौन है ?**

उत्तर दिया गया "यही जानने तो आया हूँ कि मैं कौन हूँ ?"

पुन प्रश्न हुआ "क्या तुमने सस्कृत व्याकरण का अध्ययन किया है ?"

"हाँ, मैंने सारस्वत आदि का अध्ययन किया है" दयानन्द बोले।

तदुपारान्त कुटिया के कपाट खुल गये और दयानन्द भीतर प्रविष्ट हुए। दडी स्वामी विरजानन्द ने दयानन्द को भली भाँति परखा और बोले "दयानन्द! सच्चे आर्ष वाङ्‌मय और सामान्य मानवो द्वारा विरचित पुस्तको मे महान् अतर है और जहा तक मेरा सम्बन्ध है, मैं इन सामान्य मानवो द्वारा लिखित पुस्तको पर न विश्वास ही रखता हूँ और न ही इन्हे किसी को पढाता हूँ।" सहसा ही दयानन्द इस विचार से सहमत न हो पाये, किन्तु अन्तत स्वामी विरजानन्द के तर्कों के समक्ष नतमस्तक होकर उन्होंने तथास्तु कह दिया। इतना ही नही अपितु स्वामी दयानन्द ने अपने पास जो पुस्तकें थी, उन्हे यमुना मे प्रवाहित भी कर दिया, जिससे स्वामी विरजानन्द कृपालु होकर उन्हे अपने शिष्य के रूप मे स्वीकार कर लें। यद्यपि स्वामी विरजानन्द को अपनी वास्तविक ज्ञान-पिपासा से अवगत कराने के लिए स्वामी दयानन्द का यह प्रयास ही पर्याप्त था, किन्तु अभी भी मार्ग मे एक बाधा विद्यमान थी और वह थी स्वामी दयानन्द का सन्यासी होना। स्वामी विरजानन्द ने उनसे कहा "मैं सन्यासियो को नही पढाता। किन्तु यदि मैं तुम्हे अपना शिष्य बना भी लूँ तो तुम अपने जीवन यापन की व्यवस्था कैसे करोगे ?" स्वामी दयानन्द ने उन्हे आश्वस्त कर दिया कि मुझे चाहे जितना भी कष्ट क्यो न उठाना पड़े मैं येन केन प्रकारेण यह व्यवस्था कर लूँगा। किन्तु आप मुझे अपने चरणो मे स्थान प्रदान करें। दयानन्द की सच्ची

लगन को अनुभव करते हुए स्वामी बिरजानन्द ने उन्हे अपना शिष्य बनाना स्वीकार कर लिया।

मथुरा मे उन्ही दिनो अकाल की विकराल छाया भी पड रही थी, किन्तु जहा चाह वहा राह की उक्ति के अनुरूप दुर्गा खत्री, पडित अमरलाल, श्री गोवर्धनदास आदि के सहयोग से उनकी भोजन तथा अन्य आवश्यकताएँ पूर्ण होती रही और दयानन्द अहर्निश अध्ययन मे लीन रहने लगे। अनेक बार उन्हे गुरुदेव विरजानन्द के कठोर शब्दो को भी मुस्कराते हुए सहना पडता था। वे नितान्त श्रद्धा और अनुरक्ति सहित कुटिया मे झाडू भी लगाते और यमुना से अपने गुरुवर के लिये जल भी भर कर लाते थे। एक दिन गुरु विरजानन्द ने किसी बात पर क्रुद्ध होकर स्वामी दयानन्द के सिर पर अपने दड से भरपूर प्रहार भी कर दिया। किन्तु इसके उत्तर मे स्वामी दयानन्द ने अपने गुरुदेव से केवल इतना ही कहा "परम पूज्य गुरुदेव! मेरे कारण आप अपने आपको इतना कष्ट क्यो देते हैं? मेरा शरीर तो लोहे के सदृश सुदृढ है और आपकी लाठी से मुझे अधिक क्षति नही पहुँच सकती। किन्तु आपके कर कमलो को ही कष्ट हुआ होगा और वस्तुत उसी के कारण मुझे दुःख हो रहा है।" उस दिन की लाठी के प्रहार के कारण बना चिह्न स्वामी दयानन्द के शरीर पर जीवन के अन्तिम क्षण तक बना रहा। जब भी कभी स्वामी दयानन्द का ध्यान उसकी ओर जाता वे अपने गुरुदेव की स्मृति कर पुलक उठते थे।

स्वामी दयानन्द ने अपने अन्तर की सम्पूर्ण श्रद्धा दडी स्वामी के चरणो मे अर्पित कर दी थी। दडी विरजानन्द की ज्ञानज्योति के सपर्क में आने से स्वामी दयानन्द की तर्क ज्योति और भी अधिक प्रज्वलित हो उठी। वही समय था जब भारत भूमि को पराधीनता पाश से मुक्त कराने के लिए स्वातन्त्र्य दीप के शलभ बनकर अनेक राष्ट्रभक्त १८५७ ई० के समर मे अपने जीवन प्रसून समर्पित कर चुके थे। उत्तरी भारत की धरती विदेशी सत्ता की दासता के बधनो को काटने के लिये रक्तिम फाग खेल चुकी थी। किन्तु स्वतत्रता का यह यज्ञ कतिपय स्वदेशवासियों की ही स्वार्थपरता के कारण ध्वस्त हो गया था। गुरु और शिष्य के रूप मे इन दोनो महापुरुषों (दडी स्वामी विरजानन्द और स्वामी दयानन्द) ने भी स्वदेश की स्थिति पर गभीर चिन्तन किया था और अन्तत वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि जब तक कोई राष्ट्र धार्मिक और सामाजिक दृष्टि से जागृत नही होता तब तक उसमे किसी प्रकार क्रान्ति को साफल्य मडित नही किया जा सकता।

गुरु दक्षिणा

अढ़ाई वर्ष तक स्वामी दयानन्द ने अपने गुरुदेव के श्रीचरणो मे बैठ कर अष्टाध्यायी, महाभाष्य, वेदान्त सूत्र तथा अन्य अनेक शास्त्रो का अध्ययन

किया। दडी स्वामी विरजानन्द से प्राप्त ज्ञान के इस धन को भी सन्यासी दयानन्द ने जन-जन को समर्पित करना चाहा। अत उन्होने सम्पूर्ण देश का भ्रमण कर सत्य ज्ञान फैलाने के लिये देशाटन का निश्चय किया। वे अपने गुरुदेव को प्रिय लगने वाले पदार्थ अर्थात् लवगो को एक थाली भर कर उनके चरणो मे गुरु दक्षिणा समर्पित करने के लिये उपस्थित हो गये। गुरु ने भी शिष्य की लौगो की भेंट को सहर्ष स्वीकार करते हुए उनसे (स्वामी दयानन्द से) मानव जाति के हितार्थ ही जीवन लगा देने का वचन माँग लिया। गुरु-दक्षिणा स्वरूप भौतिक पदार्थों का दान देना तो किसी के लिये भी सुलभ है किन्तु जीवन दान के सकल्प की यह महान् घटना भी महापुरुष दयानन्द के गृह-त्याग के सदृश ही एक अपूर्व घटना थी।

विदा देते समय गुरु विरजानन्द बोले—"देखो दयानन्द! मनुष्यकृत ग्रन्थो मे परमेश्वर और ऋषि-मुनियो की निंदा भरी पडी है। ऋषिकृत ग्रन्थ इस दोष से रहित हैं। इस कसौटी को हाथ से न छोडना। मैंने तुम्हे सत्य ज्ञान से अवगत करा दिया है। यदि मुझे सच्ची गुरु दक्षिणा देनी है तो इसी सत्य ज्ञान को मानव को प्रदान करना। बहुत दिनो से भारतवर्ष मे वेदो की शिक्षा, प्रचार और प्रसार बद है। तुम जाओ और लोगो को उनकी अर्थात् सच्चे शास्त्रो की शिक्षा दो।" ससार वेदो को भूल चुका है, तुम फिर से उनका उद्धार करा।

गुरु चरणो मे नतमस्तक होकर स्वामी दयानन्द ने प्रज्ञाचक्षु दडी स्वामी को आदेश का पालन करने का विश्वास दिलाया और आशीर्वाद ग्रहण कर विभ्रान्त मानवता को सत्य पथ दिखलाने चल पडे।

महर्षि दयानन्द ने इस वचन को कहा तक निभाया और कहाँ तक उन्हे अपने उद्देश्य मे सफलता मिली, इसकी साक्षी आज समग्र विश्व मे वैदिक ज्ञान विज्ञान के प्रति उमडी पिपासा से स्वत स्पष्ट है। विरले ही लोग होगे, जिन्होने महापुरुष दयानन्द के तुल्य अपने उद्देश्यो के लिये कठोर परिश्रम किया हो। उनका आत्म त्याग और देश-भक्ति वरेण्य और स्तुत्य थी। कौन कह सकता है कि एक न एक दिन देव दयानन्द के मुख से शताब्दियो के उपरात पुन गूजा यह उद्घोष "कृण्वन्तो विश्वमार्यम्" सफलीभूत न होगा और महर्षि द्वारा प्रदर्शित पथ का अनुगमन करते हुए आर्यावर्त जगद्गुरु के पावन पद पर अधिष्ठित न होगा।

महर्षि दयानन्द कार्य क्षेत्र में

जैसा सर्व विदित है, वर्षों तक स्वामी दयानन्द ब्रह्मचारी और सन्यासी का जीवन साथ-साथ ही व्यतीत करते रहे थे। यह भी इस महापुरुष के जीवन व्रत से सुस्पष्ट है कि वे अपनी बाल्यवस्था से ही अध्ययन, मनन और चिन्तन

मे अनुरक्त रहते थे और सासारिक आकर्षणो और सुखो से पूर्णत विरक्त। उनके व्यक्तित्व का हम विश्लेषण करें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि अपने महान् गुरु को प्रदत्त वचन को पूर्ण करने के लिये सकल्पबद्ध हो उन्होने अखण्ड ब्रह्मचर्य का परिपालन किया, उन्होने ब्रह्मचर्य को भी पुन प्राचीन काल की पावन गरिमा प्रदान की और अपने आदर्श जीवन मे वानप्रस्थ और सन्यास को भी एकाकार कर दिखाया। भले ही उन्होने गिरिकन्दराओ मे जीवन यापन न किया हो किन्तु इस पर भी वह सच्चे वानप्रस्थी थे तो सन्यासी भी। क्योकि भावना ही जीवन की वास्तविक दिशा निर्देशिका है और उनका अनुकरणीय जीवन इसका ज्वलत प्रमाण है।

दडी स्वामी विरजानन्द के इस महान् शिष्य ने अब कार्य क्षेत्र मे अवतरित होना था और अपने गुरुदेव को दिये गये वचन का पालन करना था। कोई भी मनीषी कर्म क्षेत्र मे अवतरित होने से पूर्व एतद् विषयक सिद्धता सम्पादित करता है। अतएव स्वामी दयानन्द ने भी १८६३ से १८६८ तक की ५ वर्ष की अवधि अपने पूर्व ज्ञान के विश्लेषण और सशोधन मे लगाई। कोई भी कुशल खिलाडी जब लम्बी कूद लगाता है तो पहले कुछ डग पीछे हटता है। कोई भी मनीषी जब किसी महान् कार्य का प्रारम्भ करता है तो पहले अपनी शक्ति और साधनो पर दृष्टिपात करता है। उपरोक्त पाच वर्षों की अवधि मे महर्षि दयानन्द ने जो कुछ किया, उसका वर्णन आगेके कुछ अध्यायोमे प्रस्तुत है।

आगरा मे

दडी स्वामी विरजानन्द से विदाई लेकर स्वामी दयानन्द आगरा पहुँचे और वहा लाला गुल्लामल के उद्यान मे उन्होने आसन लगाया। एक दिन एक समृद्ध सन्यासी कैलाश पर्वत भी इसी उद्यान मे आकर ठहरे और उनकी कथा का क्रम आरम्भ हुआ। गीता कोई सामान्य ग्रन्थ नही है। अतः कोई भी अधकचरा विद्वान् उसके कठिन श्लोको की व्याख्या करने मे यदि लडखडा जाये तो आश्चर्य की बात नही। एक दिन वे एक श्लोक की व्याख्या करने मे असफल हो गये। वे श्रोताओ को सतुष्ट न कर सके। उपस्थित श्रोताओ मे से एक ने स्वामी दयानन्द से उस श्लोक की व्याख्या करने का सादर अनुरोध किया। स्वामी जी ने उसका आग्रह स्वीकार कर जब उक्त श्लोक की व्याख्या की तो कैलाश पर्वत भी इस उद्भट विद्वान् की विद्वत्ता के समक्ष नतमस्तक हो गये और उन्होने स्वामी दयानन्द की विद्वत्ता की भूरि-भूरि प्रशसा की। श्रोता भी गदगद हो उठे। उन्होने यह भी कहा कि जो लोग ज्ञान की प्राप्ति के आकाक्षी हो वे स्वामी दयानन्द से शिक्षा ग्रहण करें। तदुपरात अनेक लोगो ने इस परामर्श को हृदयगम कर स्वामी दयानन्द के चरणो मे बैठकर वास्तविक ज्ञान की प्राप्ति और शिक्षा ग्रहण करना आरम्भ कर दिया। लोगो के प्रबल अनुरोध पर स्वामी जी ने कथा आरम्भ की। किन्तु अभी उन्होने

उस ग्रन्थ के बहुत पृष्ठ नहीं पलटे थे कि इस पुस्तक मे एक वाक्य पाया जिसमे कहा गया था कि परमात्मा स्वय माया की शक्ति के वशीभूत है। स्वामी दयानन्द ने तत्काल उस पोथी को उठाकर फेंक दिया और उपस्थित जन समुदाय को सम्बोधित करते हुए कहा कि मैं ऐसी भ्रान्ति उत्पादक पुस्तको से कोई सरोकर नही रख सकता। यह किसी सामान्य व्यक्ति द्वारा रचित है और यह ऐसे गुरुदेव द्वारा किये गये आदेश के सर्वथा विरुद्ध होगा कि मैं ऋषि प्रणीत ग्रन्थो के विपरीत इस पुस्तक से आपको कोई शिक्षा प्रदान करूँ।

स्वामी जी ने अपनी सध्या पुस्तक का सम्पादन भी उसी वाटिका मे किया और श्री रूपलाल नामक एक सज्जन ने इसकी ३००० प्रतिया प्रकाशित कर प्रचारित की। स्वामी दयानन्द ने अपने आगरा प्रवास की इस अवधि मे दण्डी स्वामी विरजानन्द जी से पत्र व्यवहार के माध्यम से सतत सपर्क बनाये रखा। इस प्रकार वे अपने मन मे उत्पन्न होने वाली शकाओ का भी समाधान प्राप्त करते रहे। उन्होने यही "पाखण्ड-खण्डन" नामक एक पुस्तक की रचना की।

ग्वालियर व आगरा नगर मे दो वर्ष तक निवास करने के उपरात सवत् १९२१ (१८६४ ई०) मे महर्षि दयानन्द ने वेदो की खोज मे धौलपुर की ओर प्रस्थान किया। जब आप आबू पर्वत पर थे तो आपको विदित हुआ था कि महाराजा ग्वालियर ने लश्कर मे श्रीमद्भागवत सप्ताह का आयोजन किया है और इस अनुष्ठान मे लगभग ४०० ब्राह्मण भाग लेंगे। यह समाचार सुनते ही स्वामी दयानन्द अपने चार-पांच शिष्यो सहित ग्वालियर जा पहुँचे। यह १८६५ ई० का आरम्भ था। वहाँ उन्होने इस पुस्तक मे वर्णित अनेक विसगतियो का निर्भीकता पूर्वक खण्डन आरम्भ कर दिया। महाराजा को भी स्वामी जी के नगरागमन का शुभ समाचार प्राप्त हो चुका था। उन्होने स्वामी जी से भेंट के लिये अपने कुछ लोगो को भेजा और जब वे स्वामी जी से मिले तो उन्होने ग्वालियर नरेश की ओर से पडितों द्वारा किये जाने वाले भागवत पारायण के सम्बन्ध मे उनकी सम्मति पूछी। निर्भयता पूर्वक सत्य का पोषण और असत्य का खण्डन करने को सकल्पबद्ध देव दयानन्द भला ठकुरसुहाती का पल्ला कैसे पकडते? अत उन्होने बडी निर्भयता पूर्वक उत्तर दिया ऐसे अनुष्ठान का परिणाम पीडा और कष्टो के अतिरिक्त और हो ही क्या सकता है? यदि महाराजा वास्तव मे कोई कल्याणप्रद कार्य करने के ही इच्छुक हैं तो भागवत कथा को बद कराकर गायत्री का पारायण करायें। जब इस उत्तर से ग्वालियर नरेश को अवगत कराया गया तो उन्होने हसते हुए कहा कि स्वामी दयानन्द सरीखे सन्यासी के मत का खण्डन तो मैं नही करूगा। किन्तु कथा सम्बन्धी अपने आदेश को रद्द नहीं कर सकता, क्योकि इसकी सम्पूर्ण तैयारिया हो चुकी हैं। किन्तु जिस दिन इस कथा की समाप्ति हुई उसी दिन

एक आश्चर्यजनक बात यह हुई कि महारानी को समय से पूर्व ही गर्भपात हो गया और उन्होने एक मृत शिशु को जन्म दिया। इस घटना के एक-दो मास के उपरात ही नगर मे प्रचण्ड हैजे का भी प्रकोप हो गया। महाराजा के पुत्र समेत हजारो लोगो को इस महामारी ने निगल लिया। वस्तुत स्वामी दयानन्द को चमत्कारो मे कोई विश्वास नही था। जब उन्होने भागवत कथा का विरोध किया था तो उन्होने उस ग्रन्थ मे उल्लिखित भ्रांतिपूर्ण बातो के प्रकरण पर ही यह टिप्पणी की थी। यदि महाराजा को इस प्रकार की आपदाओ को झेलना पडा तो यह स्वामी जी के किसी अभिशाप का परिणाम नही था, अपितु सयोग मात्र ही था।

स्वामी जी ने रामाचार्य, गोपानुजाचार्य एव अन्य भागवत कथाकारों को शास्त्रार्थ की चुनौती भी दी, किन्तु कोई भी साहस न कर सका।

लश्कर से प्रस्थान कर स्वामी जी १८६५ ई० के अन्त मे करौली पहुँच गये। यहाँ के शासक और कतिपय विद्वान् पडितो से भी आपकी शास्त्रो पर चर्चा आदि हुई। यहा अपने कई मास के प्रवास मे आपने वेदाभ्यास मे ही अपना समय विशेष रूप से बिताया। तदुपरात आपने जयपुर की राह ली।

जयपुर में

राजस्थान की गुलाबी नगरी जयपुर में आश्विन सवत् १९२२ (१८६५ ई० का अक्तूबर मास) मे महर्षि का आगमन हुआ और श्री राजकुमार नन्दकुमार मोदी के उद्यान को आपने अपना वास स्थल बनाया। जोधपुर से महाराज रामसिंह के आमन्त्रण पर पधारे श्री श्रवणनाथ के शिष्य लक्ष्मणनाथ भी इसी उद्यान मे निवास करते थे। उनके साथ स्वामी दयानन्द का ब्रजनन्दन जी के मन्दिर मे विचार विमर्श हुआ। उन्होंने स्वामी जी से उसी मन्दिर मे विराजने का अनुरोध किया और एक शास्त्रार्थ में सहायता का भी अनुरोध किया। स्वामी जी उन्हे यही उत्तर देकर अपने निवास स्थान पर लौट गये कि यदि आप शास्त्रार्थ मे मुझे आमन्त्रित करना चाहते हैं तो यह स्मरण रखियेगा कि मैं जो भी कहूँगा, अपने विचारो के अनुरूप ही कहूँगा।

यहा कतिपय पडित कहे जाने वाले अल्पज्ञो से भी स्वामी जी को टकराना पडा। स्वामी दयानन्द ने व्याकरण सबन्धी कतिपय प्रश्न लिखकर इन तथाकथित पडितो के पास भेजे। किन्तु पाण्डित्याभिमानी इन सज्जनो ने प्रश्नों के उत्तर देने के स्थान पर गालिया ही प्रदान की। स्वामी जी ने उनके लेखो मे कई दोष खोजकर हरिश्चन्द्र आदि भद्र जनो के पास एक पत्र भेजा। उन सबने स्वामी जी के पक्ष की पुष्टि करते हुए उन पडितो के व्यवहार की भर्त्सना की।

इन पडितो ने तदुपरान्त व्यास बख्शीराम जी से कहकर स्वामी दयानन्द के साथ शास्त्रार्थ का भी आयोजन कराया। स्वामी जी को महलो मे आमन्त्रित किया गया। वहा शास्त्रार्थ के दौरान जब वत्म शब्द का अर्थ महाभाष्य के अनुकूल प्रस्तुत किया गया तो एक मैथिल ब्राह्मण ने अपनी खाज मिटाने के लिये वह बोला "महाभाष्य तो व्याकरण ही नही।" जब उससे स्वामी जी ने यही बात लिख देने को कहा तो वह कन्नी काटते हुए बोला "अब तो रात बहुत बीत गई है। आपको उद्यान मे जाना होगा। अधिक समय व्यतीत हुआ तो उद्यान के द्वार बद होने से आपको भी कष्ट होगा।" उसके इस कथन के उपरात वह पडित मडली वहा से प्रस्थान कर गई। स्वामी जी ने भी वहा से प्रस्थान करते हुए अपनी प्रतिक्रिया इन शब्दो मे व्यक्त की 'यह भी विलक्षण सभा है, जिसमे महाभाष्य को व्याकरण ही नही माना जाता और इन पडित जी की बुद्धि बडी चमत्कारी है, जो महाभाष्य को व्याकरण मानने से ही इन्कार करती है।"

जयपुर मे ही एक जैन मुनि ने भी स्वामी जी से शास्त्रार्थ की कामना व्यक्त की। स्वामी जी ने उनकी चुनौती को स्वीकार करते हुए जब उन्हे आमन्त्रित किया तो वह पैतरा बदल गये। इस पर स्वामी जी न १५ प्रश्न लिखकर उनके पास प्रेषित कर दिये। मुनि जी ने उनका उत्तर न देते हुए आठ प्रश्न स्वामी जी को लिख भेजे। उनके युक्तियुक्त उत्तर पाकर जैन मुनि ने शास्त्राथ की होड छोड कर मौन रहने की ही परिपाटी निभाई।

स्वामी जी अचरौल मे

साधु सतो के प्रति आस्था से परिपूर्ण हृदय अचौल के ठाकुर रणजीत सिंह भी स्वामी जी के दर्शनार्थ जयपुर पधारे। उन्होने स्वामी जी को अपने नगर मे पधारने का निमन्त्रण दिया। स्वामी जी उनके निमन्त्रण पर अचरौल पहुँचे। स्वामी जी द्वारा प्रदत्त ज्ञान के प्रकाश से ठाकुर साहब के मानस पटल पर पडे भ्रान्ति के सघन घन विदीर्ण हो गये। वे मूर्तिपूजा का परित्याग कर सन्मार्ग के पथिक बन गये।

स्वामी जी की इच्छानुसार ठाकुर साहब ने उनके लिए एक स्वच्छ पर्णकुटी की व्यवस्था करा दी। उन्होने स्वामी जी से मनुस्मृति, उपनिषद, गीता आदि ग्रन्थो का श्रवण कर अपने जीवन को धन्य माना। वहा अनेक विद्यार्थियो को स्वामी जी ने ब्रह्मचर्य का उपदेश दिया। स्वामी जी के पावन उपदेशो से ठाकुर साहब का कार्यकर्त्ता हीरालाल भी मदिरापान आदि कुप्रवृत्तियो का परित्याग कर आदर्श जीवन यापन करने लगा। स्वामी जी लगभग चार मास तक अचरौल मे रहे और यहा उन्होंने भागवत के खण्डन के लिए एक पत्रक भी प्रकाशित कराया।

शास्त्रार्थ मे वैष्णवों की पराजय

स्वामी दयानन्द जिन दिनो जयपुर मे विशुद्ध वैदिक ज्ञान की मन्दाकिनी बहा रहे थे, उन्ही दिनो इस गुलाबी नगरी मे शैवो और वैष्णवो का विवाद भी चरम सीमा पर था। इस शास्त्रार्थ व वाद विवाद की व्यवस्था महाराजा रामसिंह ही करा रहे थे। दोनो ही सप्रदायो के दिग्गजो के डेरे इस नगरी मे गडे हुए थे। इस शास्त्रार्थ समर का प्रारम्भ शैव सप्रदाय के प्रमुख नेता श्री लक्ष्मणनाथ ने किया था। उनके कारण शैवो का पक्ष प्रबल था, किन्तु फिर भी अपनी विजय के सम्बन्ध मे निश्चिन्त होने की दृष्टि से शैव पडितो ने स्वामी दयानन्द की शरण ली ओर वैष्णवो से भिडने के लिये उन्ही को अपना प्रवक्ता बनाया। प्रतिपक्ष के अगुआ थे प० हरिश्चन्द्र। स्वामी जी ने वैष्णव सम्प्रदाय के ग्रन्थो के उद्धरण प्रस्तुत कर ऐसी तर्क सम्मत आलोचना की कि वैष्णव सप्रदाय के अनुगामियो ने अपनी पराजय स्वीकार करने के अतिरिक्त और कोई विकल्प ही न देखा। शास्त्रार्थ मे शैव विजयी हुए और वैष्णव पराजित। शैवो की इस विजय का श्रेय स्वामी दयानन्द को ही था। इस कारण अनेक लेखको ने यह भी मत व्यक्त किया है कि उस समय तक स्वामी दयानन्द शैव सप्रदाय के अनुगामी थे। किन्तु उनकी यह धारणा भ्रान्ति पर ही आधारित प्रतीत होती है, क्योकि जिस स्वामी दयानन्द ने अपने बाल्यकाल मे चूहे को शिवरात्रि पर शिव भक्तो द्वारा समर्पित फल फूलो को कुतरते हुए देखकर मूर्ति पूजा को तिलाजलि देकर कल्याण पथ का वास्तविक पथिक बनने का सुदृढ सकल्प ग्रहण किया था, वह शैव सप्रदाय का इतने समय तक अनुगामी रहा हो इस बात को बुद्धि स्वीकार नही करती। ऐसा प्रतीत होता है कि स्वामी जी ने मूर्ति पूजको के एक वर्ग को उसकी भ्रान्तियो से उबारने के लिए ही दूसरे सप्रदाय का उस समय नेतृत्व ग्रहण किया था, क्योकि शिव मन्दिरो मे ठहरने पर भी उन्होने कही मूर्ति पूजा की हो, इसकी कोई साक्षी नही मिलती।

किन्तु इसके साथ ही यह तथ्य भी हृदयगम करना होगा कि सामान्य जन विषय की गहनता मे न जाकर विजेता पक्ष के साथ लग जाते हैं। अतएव जयपुर मे सपन्न हुए इस शास्त्रार्थ मे विजयी शैवो को अपने सप्रदाय मे दीक्षित होने के लिये सैकडो व्यक्ति मिल गये और स्वय महाराजा रामसिंह ने भी शैव सप्रदाय की दीक्षा ग्रहण कर ली। उन्होने स्वय तो रुद्राक्ष धारण किया ही राज्य के हाथियो और अश्वो तक के गलो मे भी रुद्राक्ष की मालायें सुशोभित हो उठी। स्वामी दयानन्द के प्रकाड पाडित्य की कीर्ति कौमुदी भी चतुर्दिक् व्याप्त हो गई।

पुष्कर मेले मे शास्त्रार्थ

सवत् १९२३ (मार्च १८६६) मे स्वामी जी ने जयपुर से प्रस्थान कर

पुष्कर की राह ली। वहाँ निकट भविष्य में ही सुविशाल मेला लगने वाला था। पुष्कर पहुँच कर उन्होने ब्रह्म मन्दिर मे आसन जमाया। वे वहा लोगो को वाद विवाद के लिये आमन्त्रित करते और मूर्ति पूजा के खडन मे भी किसी प्रकार का सकोच न करते। अनेक ब्राह्मणो ने उनसे शास्त्रार्थ भी किया किन्तु उन्हें पराजय का ही मुख देखना पडा। अन्तत उनकी निराशा ने उन्हे उस समय के एक प्रकाड विद्वान् व्यकट (वैकुठ) शास्त्री को अपनी सहायतार्थ आमन्त्रित करने पर बाध्य किया। उन्होने स्वामी दयानन्द के साथ शास्त्रार्थ करना स्वीकार तो कर लिया किन्तु अन्ततः कन्नी काट गये। तदुपरान्त स्वामी जी स्वय ही उनके पास पहुँचे।

उस समय सैकडो ब्राह्मणो की मडली वहा आ जुटी और शास्त्रार्थ का विषय निर्धारित हुआ 'भागवत'। शास्त्री महोदय ने भागवत का मडन किया तो स्वामी जी ने खडन। अन्तत शास्त्री जी ने अपनी पराजय स्वीकार करते हुए घोषणा की कि स्वामी जी की विद्या के समक्ष मैं नतमस्तक हूँ। व्याकरण पर हुए वाद विवाद मे भी उन्हे स्वामी जी का लोहा मानना पडा। शास्त्री महोदय ने स्वामी जी की भेंट अपने अघोरी गुरु से भी करायी। मृतको के शवो को चिता तक से उठाकर खाने मे भी सकोच न करने वाला यह अघोरी सस्कृत का अच्छा विद्वान् था। स्वामी जी से वार्तालाप के उपरात उसने भी मुक्त कठ से यही स्वर गुजाया दयानन्द जी का कथन ही सच है, उनसे विवाद मे उलझना व्यर्थ है। "शास्त्रीजी और स्वामी दयानन्द" मे मैत्री सबन्ध भी इतना प्रगाढ हो गया कि उन्होने स्वामी जी को विश्वास दिलाया कि जब कभी आपको शास्त्रार्थ के लिये मेरी सहायता आवश्यक प्रतीत हो आप मुझे स्मरण करें। मैं अविलम्ब वहां उपस्थित हो जाऊगा।

इस मेले मे सहस्रो की सख्या मे एकत्र हुए श्रद्धालु जनो के उस विशाल समागम मे भी महर्षि का धर्म प्रचार कार्य जारी रहा। स्वामी जी कुरीतियो और अधविश्वासो के सघन घनो को विदीर्ण कर श्रोता जनो के हृदय मन्दिर मे सत्य की ज्योति जगाते जा रहे थे। धर्म के नाम पर हिन्दू जनता मे भ्रान्तियो का सृजन करने वाले पडे और पुजारी भयभीत होकर पुनः व्यकट शास्त्री की शरण मे पहुँचे, किन्तु उन्होंने उन्हे एक ही उत्तर दिया "मैं स्वामी दयानन्द से विवाद क्या करूँ, वह जो कुछ कहते हैं वह है तो सत्य ही। परन्तु इतना मैं अवश्य कहूँगा कि उनकी चलेगी तभी जबकि वे किसी नरेश को अपना शिष्य बना लेगे।"

रुष्ट पुजारी भी भक्त

ब्रह्मा मन्दिर के महन्त मानपुरी स्वामी जी का बडा आदर करते थे। एक बार जब उन्होने मूर्ति भोग के अनन्तर स्वामी जी को पीने के लिए दूध दिया,

स्वामी जी ने अपने स्वभाव के अनुसार स्पष्टवादिता का परिचय दिया और बोले "मैं पाषाण पूजा से प्राप्त दूध नही पिया करता।" इस पर मानपुरी जी ने रुष्ट होकर स्वामी जी को दूध देना बद कर दिया । किन्तु कुछ ही दिन उपरात वे पुन प्रसन्न होकर स्वामी जी के प्रबल सहयोगी बन गये। उन्ही दिनो ब्रह्मणो ने पुन स्वामी जी से शास्त्रार्थ का आयोजन किया, किन्तु पूर्ववत् निराशा ही मिली। उस समय ब्राह्मणो के क्रीतदास कतिपय लठैतो ने भी अपनी कारगुजारी दिखाने का प्रयास किया, किन्तु मानपुरी जी ने ही उन्हे डाटा-डपटा और उन्होने चुपचाप पलायन कर जाना ही श्रेयस्कर समझा। उस दिन भी सैकडो लोगो ने अपनी कठिया सदा के लिए पुष्कर मे विर्मजित कर दी। पुष्कर मे स्वामी जी ने रामानुजियो को शास्त्रार्थ के लिये ललकारा, किन्तु वे सामने आने का साहस न सजो पाये। उसी भांति ब्राह्मणो के बहु विधि उकसाने पर भी पुष्कर के चन्द्र घाट पर ठहरा सन्यासी भी उनसे तर्क वितर्क का साहस न सजो पाया। शिवदयाल नामक ब्राह्मण पुजारी भी यहाँ स्वामी जी द्वारा प्रदत्त सत्य ज्ञान के प्रकाश से अपने हृदय को प्रकाशित कर मूर्ति पूजा एव पडो की भाति घाट पर जाकर मांगने से सदैव के लिए विरक्त हो गया। एक वृद्धा देवी ने यहाँ एक प्रसंग मे स्वामी जी की विद्वत्ता और पाडित्य को इन शब्दो मे स्वीकार किया—"स्वामी जी! आपके समक्ष तो बडे-बडे तार्किक भी चुप हो जाते हैं। जो भी बोलता है वह आपकी पीठ पीछे ही बोलता है।" यही उनके सदुपदेश के परिणामस्वरूप एक श्रीमत ने ईंट-गारे का मन्दिर बनाने की कल्पना को त्याग कर अपने धन का सदुपयोग वास्तविक धर्म के हेतु करने का सत्सकल्प ग्रहण किया। यही भागवत कथा मे दत्तचित रहनेवाले प० गगाराम को महर्षि दयानन्द ने बताया कि भागवत व्यास की नही अपितु बोपदेव की कृति है। बडे पुजारियो को भी वे अपने पुष्कर प्रवास मे यही समझाते रहे कि पेट पूजा के लिए असत्य और भ्रान्तियो का प्रचार न करो । सत्य से भी तुम्हारे पेट की ज्वाला शात करने की व्यवस्था वह वास्तविक शिव अवश्य ही करेंगे, जो कल्याणकारी परमेश्वर हैं।

महर्षि दयानन्द के प्रकाड पाडित्य, सौम्य स्वभाव, शाति और सत्य धर्म प्रचार की लगन के समक्ष पुष्कर की विद्वत् मडली भी अन्ततः नतमस्तक हो गई और उनका विजयनाद पुष्कर सरोवर की ऊर्मियो से उद्भूत होकर रणशूर क्षत्रियो की कर्मभूमि मरुधरा के कण-कण मे गुजित हो उठा। राजस्थान के विभिन्न नगरो और नगरियो से उन्हे निमन्त्रण प्राप्त होने लगे।

डा० हरबिलास शारदा के अनुसार स्वामी दयानन्द पुष्कर मे लगभग दो मास तक ठहरे, जबकि स्वामी सत्यानन्द कृत दयानन्द प्रकाश के अनुसार उनका पुष्कर प्रवास केवल २२ दिन रहा । (उल्लेखनीय है कि उस वर्ष

सवत् १६२३ मे ज्येष्ठ के दो मास थे। अत एक ज्येष्ठ बदि प्रथम ३० अप्रैल १८६६ को तथा दूसरी ज्येष्ठ बदि प्रथम ३० मई १८६६ को थी।)

महर्षि पुन. अजमेर मे : पादरियो से शास्त्रार्थ

डा० हरबिलास शारदा द्वारा लिखित "लाइफ आफ स्वामी दयानन्द" के अनुसार २० मई, १८६६ (ज्येष्ठ बदि सवत् १६२३) को स्वामी जी अजमेर वापस लौटे और राय बसीलाल के उद्यान मे आसन लगाया। अजमेर मे स्वामी जी के दो सार्वजनिक शास्त्रार्थ हुए। इनमे से एक हुआ तीन ईसाई पादरियो अर्थात् पादरी ग्रे, राबिन्सन और शूलब्रेड से और दूसरा हुआ मौलवी मुरादअली से। इन तीनो यूरोपीय ईसाई पादरियो से स्वामी जी का शास्त्रार्थ तीन दिन तक चला। इस शास्त्रार्थ के विषय थे 'ईसा का ईश्वर होना, मर कर जी उठना तथा फिर आकाश पर आरोहण करना' आदि। ईसाई पादरियो ने वेद मत्र का नाम लेकर सस्कृत का कुछ पाठ पढा। जब स्वामी जी ने पूछा कि वेद मे इसका उल्लेख कहा है ? तो वे प्रमाण प्रस्तुत न कर सके। उनके इस तर्क पर निरुत्तर हुए पादरी शूलब्रेड ने अपनी खीझ मिटाने के लिये कहा स्वामी जी ऐसी बातो के कारण आप कारागार मे डाले जा सकते है। महर्षि मुस्काये और बोले कि "मुझे इस बात की तनिक भी चिन्ता नही है। काराकार का भय मुझे सत्य के प्रचार से कदापि नही रोक सकेगा। ईसा को भी तो लोगो ने फासी पर लटका दिया था।"

पादरी राबिन्सन के निमन्त्रण पर स्वामी जी उनसे मिलने गये और शिष्टाचार प्रदर्शन के उपरात राबिन्सन ने स्वामी जी से प्रश्न किया कि ब्रह्मा जी ने अपनी पुत्री से सम्भोग किया था, इस सबन्ध मे आपका मत क्या है ? स्वामी जी तुरत बोले "एक ही नाम के अनेक पुरुष होते हैं। यह कपोल-कल्पित कथा ब्रह्मा जी जैसे महान् ऋषि को बदनाम करने का प्रयास मात्र है। यदि विश्व मे कभी ऐसा कोई दुष्कृत्य हुआ भी होगा तो यह महर्षि ब्रह्मा नही, अपितु ब्रह्मा नामधारी किसी अधम मानव की करतूत होगी।" स्वामी जी द्वारा प्रदत्त उत्तर से पादरी राबिन्सन पूर्णत सतुष्ट हो गये। उन्होने स्वामी जी को एक पत्र भी लिख कर दिया, जिसमे अपनी श्रद्धा व्यक्त की। स्वामी जी ने अजमेर के डिप्टी कमिश्नर श्री डेविडसन से भी भेंट की और उनसे कहा कि "मिथ्या मतो के अनुगामी आपकी प्रजा को ठग रहे है। सम्राट् पिता तुल्य होता है। अतएव सरकार के प्रतिनिधि को बुराइयो के निवारणार्थ पग उठाने चाहिये। किन्तु डिप्टी कमिश्नर ने इसके उत्तर मे उन्हे बताया कि "धर्म सबन्धी मामलो मे पूर्ण तटस्थता ही सरकार की नीति है ?"

कर्नल ब्रुक ने गोरक्षा का महत्त्व माना

अजमेर मे स्वामी जी के इस प्रवास काल मे एक महत्त्वपूर्ण घटना और भी घटी। एक दिन जब स्वामी जी बसीलाल जी की वाटिका मे प० विरधी चन्द्र को महाभाष्य पढा रहे थे, राजपूताना के गवंनर जनरल के एजेन्ट कर्नल ब्रुक भी उधर आ निकले। स्वामी जी को देखते ही वह उनके तेजस्वी व्यक्तित्व से प्रभावित हुए बिना न रह सके। किसी चुम्बकीय आकर्षण के तुल्य वह स्वामीजी की ओर आकृष्ट हो गये और उनके पास पहुँच कर सम्मान प्रदर्शनार्थ अपनी टोपी उतारी और शिष्टाचार की ब्रिटिश पद्धति का अनुसरण करते हुए स्वामी जी से हाथ मिलाया। तदुपरान्त वह स्वामी जी के समक्ष एक कुर्सी पर बैठ गये। दोनो मे कुछ देर तक वार्तालाप हुआ। उससे कर्नल ब्रुक इतने अधिक प्रभावित हुए कि अगले दिन उन्होने स्वामी जी को अपने निवास स्थान पर पधारने का निमन्त्रण दिया।

अगले दिन कर्नल ब्रुक ने अपनी गाडी स्वामी जी को लिवा लाने के लिए भेजी। महर्षि प० रूपलाल जोशी के साथ उस गाडी मे सवार होकर कर्नल महोदय के निवास स्थान पर पहुँचे। महर्षि दयानन्द से लगभग पौन घटे तक हुए वार्तालाप मे इस ब्रिटिश अधिकारी ने भी गोरक्षा का महत्त्व और लाभ स्वीकार कर लिया। जब स्वामी जी ने उससे गोहत्या पर प्रतिबन्ध लगवाने का अनुरोध किया तो वह बोले "स्वामी जी! गोहत्या पर प्रतिबन्ध लगाना मेरे अधिकार की बात नही। आप इस सबन्ध मे गवर्नर जनरल महोदय से भेंट कीजिये। स्वामीजी को आपने एक पत्र भी गवंनर जनरल के नाम लिख कर दिया। कर्नल ब्रुक ने जयपुर नरेश महाराजा रामसिंह को भी एक पत्र लिखा। इसमे आपने उन्हें लिखा था कि यह अत्यन्त खेद की बात है कि आपने स्वामी दयानन्द सरीखे उद्भट विद्वान् से वार्तालाप नही किया। इस पत्र के प्राप्त होते ही महाराजा रामसिंह को भारी पश्चात्ताप हुआ और उन्होने अचरोल के ठाकुर साहब को निर्देश दिया कि वह स्वामी जी को पुन जयपुर आने के लिए आमन्त्रित करें।

महत जी का पलायन

उन्ही दिनो अजमेर मे राम स्नेही सप्रदाय के एक बड़े महत जी आये हुए थे। स्वामी दयानन्द ने उन्हें शास्त्रार्थ की चुनौती दी किन्तु उन्होने इसके उत्तर मे कहला भेजा कि हम न किसी के स्थान पर जाते हैं और न किसी के अपने यहाँ आने पर गद्दी से उतर कर उसका सत्कार ही करते हैं। स्वामी जी ने प्रत्युत्तर मे कहलाया कि "मैं स्वय ही आपके निवास स्थान पहुच जाऊगा। आप अपने आसान पर विराजमान रहिये, किन्तु शास्त्रार्थ कीजिये।" किन्तु

उन्होने स्पष्ट शब्दो मे उत्तर दे दिया "भाई, हम तो राम नाम रटते हैं और सुखपूर्वक समय बिताते है। हम शास्त्रार्थ आदि नही किया करते।" तदुपरात रामस्नेही सम्प्रदाय के सबन्ध मे सस्कृत मे कतिपय प्रश्न लिखकर स्वामीजी ने उक्त महत महोदय को भिजवाये। परन्तु अगले दिन उत्तर देने का आश्वासन देकर उक्त महत जी रात्रि मे ही अजमेर से पलायन कर गये।

अजमेर मे ही स्वामी जी ने अपने दर्शनार्थ आई अनेक महिलाओ को उपदेश देना भी अस्वीकार कर दिया और उन्हे कहा कि वे अपने पतियो को उनके पास भेजें। वह उन्हें जो उपदेश देगे, वही वे पत्नियो को भी सुना देंगे।

एकाकी हूं, किन्तु...

जयपुर जाते समय स्वामी जी मार्ग मे स्थित किशनगढ़ नामक नगर मे भी ५ दिन तक ठहरे। यहाँ के एक विद्वान् प० कृष्णवल्लभ जोशी एव श्री महेश दास ओसवाल स्वामी जी के परम भक्त थे। श्री ओसवाल ने ही स्वामी जी का आतिथ्य भी किया। किशनगढ के राजा वल्लभकुल सेवक थे। उन्होने जब यह सुना कि स्वामी दयानन्द भागवत के कटु आलोचक हैं तो उन्होने अनेक पडितो सहित ठाकुर गोपालसिंह को स्वामी जी के कार्य क्रम मे बाधा डालने के लिये भेज दिया। किन्तु महर्षि दयानन्द ने अपने योगबल से इस टोली की मनोभावनाओ का आभास पा लिया। महर्षि शौच, स्नानादि से निवृत्त हो अग मे विभूति रमाकर काष्ठ के आसन पर आ विराजे। तदुपरात उन्होने इस मडली से अपने पास आने का कारण ज्ञात किया। उसी समय उनमे से एक ब्राह्मण ने कुछ पन्ने आदि उलटे पलटे और उन्हें स्वामी जी के सामने रख दिया। स्वामी दयानन्द उससे बोले "आप स्वय ही इन्हें पढिये। तदुपरान्त उक्त ब्राह्मण ने उन्हें पढ़ा। उनमे लिखित सामग्री मे इस बात पर बल दिया गया था कि वल्लभ मत सर्वश्रेष्ठ है। स्वामी जी ने इस ने धारणा का सप्रमाण खडन करना आरम्भ कर दिया। निरुत्तर हुई मडली कोलाहल करने में ही अपनी जीत समझी। इतना ही नही, अपितु वह उपद्रव करने पर भी उतारू हो गयी। अकेले ही समग्र विश्व को चुनौती देने के लिये सकल्प बद्ध देव दयानन्द भला इन ३० - ४० लोगो की टोली से क्या भयभीत होते? अत अपने काष्ठ के आसन से उठकर स्वामी जी ने उन्हें ललकारते हुए कहा "मुझे अकेला समझ कर आगे हाथ बढाने का दुस्साहस कदापि न करना। अकेला तो मैं अवश्य हूँ किन्तु तुम सब का मान मर्दन करने मे समर्थ हूँ। यदि शास्त्रार्थ करना चाहो तो कटिबद्ध हूँ और यदि शस्त्र बल से टकराना चाहोगे तो भी पीछे पग न धरूँगा। इतने मे ही श्रीमाली वश के अनेक ब्राह्मण स्वामी जी की सहायतार्थ वहाँ आ पहुँचे। उन्हें देखते ही इन उपद्रवियो ने वहाँ से खिसक जाने मे ही अपना कल्याण समझा।

किशनगढ़ से प्रस्थान कर जयपुर जाते समय स्वामी जी दादू के ठाकुर के यहाँ ही तीन दिन ठहरे और बागरू मे भी उन्होने एक रात बिताई। तदुपरात जयपुर पहुँचे और वहाँ ठाकुर रणजीतसिंह के उद्यान मे विराजे। आपने अचरौल के ठाकुर का आतिथ्य स्वीकार किया। जयपुराधीश महाराजा रामसिह के अनेक निमन्त्रणो पर स्वामी जी उनसे भेंट करने महल मे पधारे किन्तु उस समय जयपुर नरेश अन्त पुर मे पहुँच चुके थे। उनके इस अशिष्ट व्यवहार से खिन्न होकर स्वामी जी वहा से लौट आये और फिर अनेक प्रयत्नो व अनुरोधो के बावजूद वे जयपुर नरेश से भेंट करने न गये।

स्वामी जी आगरा मे

जयपुर स्थित अनेक श्रद्धालु जनो स विदा लेकर स्वामी जी कार्तिक बदि नवमी सवत् १६२३ (एक नवम्बर, १८६६) को आगरा पहु च गये। इन्ही दिनो लार्ड लारेन्स ने आगरा मे एक दरबार का आयोजन भी किया था।

स्वामी जी ने आगरा मे भागवत खडन के सबन्ध मे एक पुस्तिका लिखी और उसकी सहस्रो प्रतियाँ मुद्रित कराई और उन्हें हरिद्वार मे होने वाले कुम्भ पर्व पर वितरित करने का निश्चय किया। इनमे से सहस्रों प्रतियाँ तो उन्होने आगरा मे ही वितरित करा दी और सहस्रो प्रतियाँ अपने साथ लेकर मथुरा मे अपने गुरुदेव के दर्शनार्थ पहुँचे।

स्वामी विरजानन्द से अन्तिम भेंट

पाच विद्यार्थियो सहित महर्षि दयानन्द मथुरा मे गुरुवर्य स्वामी विरजानन्द के चरणो मे उपस्थित हुए और श्रद्धा सहित उन्हें प्रणाम कर दो स्वण मुद्रायें और मलमल का एक थान भेंट किया। अपनी भागवत खडन सबन्धी पुस्तिका से भी उन्होने अपने गुरु देव को अवगत कराया। गुरुदेव अपने सुयोग्य और दिग्विजयी शिष्य से भेंट कर आनन्द विभोर हो उठे। उन्हें आशीर्वाद प्रदान किया और उनकी उपलब्धियो के प्रति समाधान और सतोष व्यक्त किया।

महर्षि कई दिन तक गुरु सेवा मे तल्लीन रह अपनी जिज्ञासा और शकाओ का समाधान कर रहे थे। कुम्भ पर्व समीप आने के कारण उन्होने गुरुदेव से प्रस्थान की अनुमति मागी। स्वामी विरजानन्द ने भी अपने कर्मयोगी शिष्य को सफलता का आशीर्वाद प्रदान कर विदाई दी। देव दयानन्द ने स्वामी विरजानन्द के चरणस्पर्श कर विदा ली। यही गुरुशिष्य का अन्तिम मिलन था।

वासना पर विजय का मार्ग

हरिद्वार जाते हुए स्वामी जी मथुरा से प्रस्थान कर मेरठ पहुँचे और एक देवी के मन्दिर मे ठहरे। वहाँ नगर के सुप्रसिद्ध रईस पं० गगाराम डाकवाला

भी अनेक बार स्वामी जी के दर्शनार्थ उक्त मन्दिर मे आये । एक दिन प० गगाराम ने स्वामी जी से प्रश्न किया "महाराज, काम वासना पर विजय प्राप्ति का सर्वोत्तम उपाय क्या है ?" महर्षि ने उन्हें बताया कि काम वासना को जीतने की विधि यह है कि एकान्त स्थान मे न रहे और नृत्य आदि कभी न देखो । अनुचित स्वरूप का देखना, अनुचित शब्द का सुनना और अनुचित वस्तुओ का स्मरण करना भी त्याग देना चाहिये । नियम पूर्वक जीवन यापन से भी काम वासना मद हो जाती है । कोई भी व्यक्ति जितना ही वासना तृप्ति का प्रयत्न करेगा वह उसमे उतना ही अधिक फसता चला जायेगा । वह शात होने के बजाय और बढेगी । अतएव विषय वासना का चिन्तन कदापि न किया जाये । जितेन्द्रिय बनने की अभिलाषा रखने वाले व्यक्ति को अहर्निश 'प्रणव' का जप करना चाहिये । रात्रि मे यदि इस जप क्रिया मे आलस बढ जाये तो उसे दो घन्टे प्रगाढ निद्रा लेकर उठ बैठना चाहिये और पूर्ववत् पावन "प्रणव" जाप मे लग जाना चाहिये ।

स्वामी जी ने उन्हे कुछ अभ्रक भी दिया और कहा कि इसे सेवन करते हुए उन्हे पूर्ण सयम का जीवन बिताना चाहिये ।

गंगा तट पर विचरण और कार्य

मेरठ से प्रस्थान कर स्वामी दयानन्द फाल्गुन शुदि सप्तमी सवत् १९२३ (१२मार्च १८६७) को हरिद्वार पहुँचे । वहा भीमगोडे के ऊपर सप्त सरोवर स्थित एकबडा बाध है । वही उन्होने अपनी पर्ण कुटी बनाकर उसे अपना आवास स्थल बनाया । उसी पर्णकुटी पर स्वामी जी ने अपनी पाखड खडिनी पताका फहरा दी । स्वामीजीके साथ १५-१६ ब्राह्मण सन्यासी और भी थे । उन सब के लिए भी वही पर्ण कुटिया बनाई गई ।

हरिद्वार एक ऐसी नगरी है, जिसके चतुर्दिक् प्राकृतिक सुषमा और सौन्दर्य व्याप्त है । यहा गगा की अठखेलिया करती हुई निर्मल जलधारा आगन्तुक का मन मोहे बिना नही रहती । यहाँ का जलवायु भी ऐसा है कि वह प्राणो मे एक नव चैतन्य का सचार कर देता है और जहा तक गगा जल का सबन्ध है उसकी विशुद्धता तो अनेक वैज्ञानिको ने भी मुक्त कठ से बखानी है । गगा के निर्मल जल मे किसी भी रोग का कीटाणु नही पनप पाता । ज्योहि ये जल मे पडते हैं,तत्काल निष्प्राण हो जाते हैं ।

आर्य राष्ट्र के वैज्ञानिको, साहित्यकारो, मनीषियो, तपस्वियो एव साधको सभी के लिए हरिद्वार और गगा तट आकर्षण का केन्द्र रहा है । हरिद्वार के आस-पास फैली पर्वत मालायें और सघन वन अनेको ऋषि मुनियो और साधु सन्तो की साधना स्थली रहे हैं । अनेको कवियो की काव्य प्रतिभा को इस



योग की अपूर्व शक्ति से बलशाली रीछ स्वामी दयानन्द की हुंकार से भाग गया।



वेदोपदेश देते हुए ऋषि दयानन्द

प्राकृतिक सम्पदा से सुसंपन्न अचल ने अपनी कविताओ की रचना हेतु प्रेरणा प्रदान की है।

सुदूर अतीत मे हरिद्वार नगरी युगों-युगों तक सतो और ऋषियो का पावन धाम रही और उनके श्रीचरणो मे बैठकर जिज्ञासु जन-जीवन का वास्तविक उद्देश्य जानते रहे हैं। किन्तु काल के प्रवाह ने स्थिति को सर्वथा बदल दिया और सातवी सदी मे जब चीनी यात्री ह्वेनसाग हरिद्वार आया तो उसने यहा लम्पटों और धूर्तों की मडलियो को पाया, जो धर्म के नाम पर दुर्नीतियो और अधर्म के प्रचार और प्रसार मे तल्लीन थे। उन दिनो मे ही यह मिथ्या धारणा लोगों के मानस पटल पर अकित कर दी गई थी कि हरिद्वार मे गगा की लोल लहरो मे डुबकी लगाने मात्र से मोक्ष का द्वार खुल जाता है।

जब महर्षि दयानन्द कुम्भ पर्व पर हरिद्वार पहुँचे थे तब तो स्थिति पूर्व की अपेक्षा और अधिक भयावह रूप धारण कर चुकी थी। अतएव उन्होने पौराणिको का गढ बन कर रह गयी इस नगरी मे वेद के वास्तविक सन्देश के पुन प्रचार और प्रसार का कार्य आरम्भ किया। पर्णकुटी पर फहराती गैरिक स्वर्ण पताका एक प्रकार से उस दिग् विजय का प्रतीक थी जिसके लिए देव दयानन्द ने आसेतु हिमाचल समग्र भारतभूमि को जगाने का व्रत निभाया था।

हरिद्वार मे स्वामी जी ने धर्म के नाम पर पनप रहे पाखड पर प्रबल प्रहार करने का क्रम कुम्भ के इस पर्व के अवसर पर ही आरम्भ किया। स्वामी जी की कुटिया पर फहराती अनुपम पताका देखकर सैकडो जिज्ञासु जन वहा स्वय ही चले आते थे और उनमे स अनेक स्वामी जी द्वारा प्रदर्शित सत्य ज्ञान के आलोक से अपने हृदय मे व्याप्त अधकार को दूर कर प्रकाश की ऐसी किरण लेकर लौटते थे, जो जीवन भर उनका मार्ग दर्शन करती। लाखो श्रद्धालु भक्तो से भरे इस विशाल कुम्भ मे चतुर्दिक् देव दयानन्द की चर्चा सुनाई पडने लगी थी। इससे पूर्व किसी ने किसी सन्यासी के श्रीमुख से श्राद्धो की निस्सारता, मूर्ति पूजा का खडन अवतारवाद की असगतता, पुराणो और उप-पुराणो का मिथ्यात्व न सुना था। अत अनेक लोग तो महर्षि का दर्शन करके ही विस्मित हो जाते थे। इनमे से अनेक धर्म भीरु जन अपने मस्तिष्क पर पडे गलत सस्कारो के वशीभूत यह भी कह उठते थे कि 'देखो, कैसा कलिकाल आ गया है कि सन्यासी भी नास्तिकता का प्रसार कर रहा है।" अनेक परान्नभोजियो ने तो स्वामी दयानन्द जी को नास्तिक कहने मे भी सकोच न किया। अपने पडित और ब्राह्मण होने का दम भरने वाले अनेको ने तो महर्षि के विरुद्ध अपशब्द कहने मे भी लज्जा अनुभव न की। किन्तु उनमे से जो भी स्वामी जी से शास्त्रार्थ करने का साहस सजोकर उनके समक्ष पहुँचते वे निरुत्तर हो कर लौटते थे।

उस समय के काशी के सुप्रसिद्ध विद्वान् प० विशुद्धानन्द ने एकदिन "ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद बाहूराजन्य कृत । उरू तदस्य यद्वैश्य पद्भ्या शूद्रो अजायत" इस मत्र का अर्थ बताते हुए कहा कि ब्राह्मण ब्रह्मा के मुख से, क्षत्रिय भुजा से, वैश्य उरु से और शूद्र पैरो से उत्पन्न हुए है। स्वामी जी ने तुरन्त ही विशुद्धानन्द जी को यजुर्वेद के मत्र की गलत व्याख्या पर आडे हाथो लिया और श्रोताओ को बताया कि चतुर्वर्ण्ययुक्त समाज मे ब्राह्मण मुख है अर्थात् मुख के समान है और क्षत्रिय भुजा, वैश्य उरु और शूद्र पैर है।

कुम्भ पर्व पर ही प० विशुद्धानन्द एव वल्लभ सप्रदाय के गुसाइयो मे विवाद उठ खडा हुआ। गुसाइयो ने स्वामी दयानन्द से सहायता की याचना की। स्वामी जी ने कहा कि मैं तो वेदो का अनुयायी हूँ अत आप दोनो मे से किसी का पक्ष नही ले सकता। मै तो केवल सत्य के प्रचार के लिए सकल्पबद्ध हूँ।

दादूपथी वेदपथी बना

दादूपथियो के प्रमुख नेता स्वामी महानन्द भी कुम्भ पर्व पर हरिद्वार मे ही थे। वह थे तो विद्वान् किन्तु उन्होने वेदो का प्रथम बार दर्शन महर्षि दयानन्द के पास ही किया। स्वामी जी की शिक्षाओ का सुप्रभाव यह हुआ कि महानन्द दादू पथी से वेद पथ के पथिक बन गये। तदुपरात उन्होने वेद की शिक्षाओ के प्रचार व प्रसार को ही अपने जीवन का लक्ष्य बना लिया। आर्य समाज मन्दिर देहरादून के भवन मे उन्ही स्वामी महानन्द के नाम पर महानन्द पुस्तकालय स्थापित किया गया।

स्वदेश की दशा का दर्शन

वस्तुत हरिद्वार के इस कुम्भ मेले मे ही स्वामी दयानन्द ने यह अनुभव किया कि आज विश्व मे अज्ञान पराकष्ठा पर पहुँच चुका है। उन्होने इस तथ्य को भी भली भाति देखा कि जो लोग सस्कृतज्ञ है उनमे से अधिकतर स्वार्थ के वशीभूत होकर धर्म के नाम पर सामान्य जनो को ठग रहे हैं। ये लोग जनता मे धर्म के नाम पर अधर्म का प्रचार कर रहे हैं। उन्होने यह भी देखा कि विभिन्न मतो और पथो के कटघरो मे कैद हुए साधुओ का जीवन तो गृहस्थो से भी बुरा होकर रह गया है और सभवत ऐसी कोई भी बुराई नही, जो साधु समाज मे व्याप्त न हो गई हो।

इस दुरवस्था से क्षुब्ध होकर महर्षि ने सकल्प किया कि वह अपना शेष जीवन समाज मे धर्म के नाम पर पनप रहे अधर्म और कुरीतियो के उन्मूलन

मे लगाकर वेदो के स्वाध्याय से अर्जित ज्ञान को जन-जन मे प्रचारित और प्रसारित करेंगे ।

सर्व वै पूर्ण ् स्वाहा

कुम्भ के इस विशाल मेले मे स्वामी जी ने अनेक शास्त्रार्थ किए । अनेको प्रतिवादियो को निरुत्तर कर विजय प्राप्त की । सैकडो जिज्ञासुओ की जिज्ञासा का शमन किया और भागवत के खडन मे अनेको पुस्तिकायें वितरित की । पाखड-खडिनी-पताका और स्वामी जी के उपदेशो ने सहस्त्रो व्यक्तियो की जीवन धारा ही पलट दी । स्वामी जी ने सोचा कि वेदो के ज्ञान के प्रचार और प्रसार के सकल्प को मूर्त रुप देने के लिए अभी और भी कठोर तप करना होगा । अपने हृदय मे उठे विचारो, तरगो और उमगो मे एक दिन व्याख्यान देते देते स्वामी दयानन्द गद्‌गद हो उठे और "सर्व वै पूर्ण ् स्वाहा" का घोष कर उठ खडे हुए ।

उसी समय उन्होने अपने सारे वस्त्र, पुस्तके, धनादि भी वही लोगो को बाट दिया । जिस समय स्वामी जी इस सर्व मेध यज्ञ मे लीन थे, स्वामी कैलाश पर्वत यह दृश्य देखकर उनसे बोले "आप यह क्या करने लगे हैं महर्षि ?" स्वामी जी ने उन्हे उत्तर देते हुए कहा "जब तक आवश्यकतायें नयूनातिन्यून नहीं कर ली जाती, पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त नही हो सकेगी और मेरा प्रयोजन भी सिद्ध नही हो सकता । मैं अब सभी पथानुयायियो के विरुद्ध सुस्पष्ट बोलना चाहता हू और मै ऐसा उसी स्थिति मे कर सकू गा, जब मै पूर्णतः निर्द्वन्द्व हो जाऊँ ।"

स्वामी जी ने अपने पास की सभी वस्तुए लोगो मे बाट डाली और केवल एक कटि वस्त्र ही अपने पास रखा । उन्होने अपने उद्देश्य की पूर्ति हेतु गगा तट पर विचरण करने का निश्चय किया । अपने पास बचे ३५ रुपये, मलमल तथा महाभाष्य की एक प्रति प० दयाराम के हाथो गुरुवर्य स्वामी विरजानन्द जी के पास भिजवा दी ।

मौन-भग

स्वामी दयानन्द ने वस्त्रो का उपयोग भी त्याग दिया और मौन धारण कर लिया । किन्तु जिसकी युगवाणी से समग्र मानवता को सत्यपथ पर आरूढ होने का आह्‌वान किया जाना था वह कितने दिन मौन रहता । उन्हे शीघ्र ही अपना मौन त्याग देना पडा । एक दिन एक व्यक्ति स्वामी जी की कुटिया के द्वार पर आया और भागवत स्तुति करने लगा । स्वामी जी मौन न रह पाए और

उन्होने अपना मौन त्याग कर उस का खडन प्रारम्भ कर दिया। स्वामीजी हरिद्वार से ऋषिकेश प्रस्थान कर गए, किन्तु ५-६ दिन के पश्चात् ही वहाँ से वापस आ गए।

अब महर्षि ने निश्चय कर लिया कि वेदशास्त्रो के अनुशीलन और गुरु विरजानन्द की कृपा से मुझे जिस ज्ञान की प्राप्ति हुई है, मैं उसका लोक कल्याणार्थ प्रचार और प्रसार करूगा। इस प्रकार युग प्रवर्तक देव दयानन्द के जीवन के द्वितीय चरण का समापन हुआ।

जिस बालक मूलशकर ने जीवन से विक्षुब्ध होकर मृत्यु और पीडाओ पर विजय प्राप्ति के स्वप्न सजोकर गृह त्याग किया था, उसने वर्षों की खोज के उपरात सद्गुरु को प्राप्त कर जीवन की वास्तविक राह भी पा ली। जीवन के उद्देश्य का मूल समझ लेने वाले इस महान् साधक ने अब एक नवीन सकल्प ग्रहण किया था और वह था असत्य और अधविश्वासो के विरुद्ध विद्रोह। अब वह मृगछाला धारण कर नगे पाव ही एक चट्टान के समान डटकर उस समय के साधु जगत्, विभिन्न हिन्दू सम्प्रदायो के प्रमुखो और निहित स्वार्थों को एकाकी चुनौती देने के लिए तैयार हो गया था। उसने वाराणसी, नासिक, पूना और नदिया के सामूहिक ज्ञान को ललकारा था।

इतिहास की यह अनुपम घडी थी, न तो गौतम बुद्ध ने ऐसा किया था और न आदि शकराचार्य ही इस प्रकार की चुनौती दे पाए थे। दयानन्द के समक्ष वह समग्र राष्ट्र था जो अज्ञान और अन्धविश्वासो के उदधि मे आकण्ठ डूबा हुआ था। वे उस राष्ट्र को जगाने के लिए कर्मक्षेत्र मे अवतरित हुए थे, जिसके पूर्व पुरुषो ने त्याग, तपस्या, शौर्य और दशन तथा आध्यात्मिक क्षेत्र मे कभी विश्व भर का पथ प्रदर्शन किया था। किन्तु आज उन्ही महान् पूवजो की सतति अतीत के गौरव को विस्मृत कर अज्ञान के अधकार मे डूबी पराधीनता तथा अज्ञान की बेडियो मे कसी, सत्य, शक्ति और सौख्य से दूर होकर दैन्य, दौर्बल्य और दासता की दिशा मे अग्रसर थी। देव दयानन्द ने स्वराष्ट्र को ही नही, अपितु समग्र विश्व को अधश्रद्धा, अन्ध विश्वास और असत्य के मार्ग से हटकर वैदिक ज्ञान की गगा मे अवगाहन का आह्वान किया।

महर्षि ने देखा कि वे एकाकी है और सकल विश्व की अनीति, अन्याय और अविचार की शक्तियो से उन्हे लोहा लेना है। अत उन्हे और भी अधिक शक्ति सजोनी होगी।

वे इस प्रयास मे सलग्न हो गए और उन्होने अपने भावी जीवन की दिशा निर्धारित कर ली। उन्होने कुछ काल तक गंगा तट पर विचरण का निश्चय कर हरिद्वार से प्रस्थान कर दिया।

गंगा तट कार्य क्षेत्र बना

हरिद्वार से कनखल होते हुए स्वामी दयानन्द लण्ढौरा (जिला सहारनपुर) आ पहुँचे । उन दिनो वह सस्कृत मे ही उपदेश देते थे । स्वामी जी किसी से भोजन की याचना न करते थे । अत लण्ढौरा मे वह तीन दिन तक निराहार ही रहे । जब क्षुधा ने उन्हें विवश कर दिया तो एक खेतिहर को उन्होंने सकेत से अपनी बात समझाई । उसके द्वारा प्रदत्त तीन बैंगनो से ही स्वामी जी ने अपनी क्षुधा का शमन किया । वहाँ से प्रस्थान कर आप शुक्रताल, परीक्षित गढ आदि का भ्रमण करते हुए गढ़मुक्तेश्वर पहुचे । यहाँ वह लगभग १५ दिन रहे । गढमुक्तेश्वर मे वह गगा की रेत मे लेटते अथवा ध्यान लगाते । कभी उनके पास कोई आ जाता तो उसे देववाणी सस्कृत मे उपदेश देते । वहाँ अनेक पडितो से भी आपका विचार विमर्श और वार्तालाप हुआ । जिस स्थान पर स्वामीजी रेत मे शयन आदि करते थे, उनके समीप ही एक माझी की कुटिया थी । उस माझी ने देखा कि वह वीतराग सन्यासी निरन्तर तीन दिन से निराहार है किन्तु किसी से याचना नहीं करता । अत वह चौथे दिन स्वामीजी के समीप पहुँचा और अपनी रोटी में से आधी उन्हें सादर समर्पित कर दी । स्वामी जी ने उसे सप्रेम स्वीकार किया ।

इस प्रकार गढमुक्तेश्वर मे लगभग अर्धमास के प्रवास के उपरान्त आप वहाँ से चल पडे और कर्णवास आ पहुचे । यह नगर अनूपशहर से १२ मील की दूरी पर ऐसे क्षेत्र में स्थित है, जहाँ क्षत्रियो (राजपूतो) की पर्याप्त संख्या है । यहाँ कुछ छात्र स्वामी जी के दर्शनार्थ आये । स्वामी को यहीं इस बात की भी जानकारी मिली कि कतिपय साधु वेश धारी आचरणहीन दम्भीजनो ने अपने शिष्यो को यह गुरुमन्त्र दिया है "कम्पनी किसकी जोरू, सिंधिया किसका साला—पी प्याला, मार भाला, लगे दम ।"

कर्णवास में ही उन्होने अपने से भेंट करने वाले उपरोक्त छात्रो को अष्टाध्यायी, उपनिषद् और मनुस्मृति का अध्ययन करने का परामर्श दिया।

इस नगर मे एक दिवस बिताने के उपरात कौपीन धारी दयानन्द फर्रुखाबाद पहुचे और वहा उन्होंने विश्रान्ति घाट पर आसन लगाया । एक दिन यही पडित मणिलाल नामक एक जिज्ञासुजन ने स्वामी जी से प्रश्न किया भगवन् ! गगा और सूर्य क्या वस्तु है ? उन्होंने इस व्यक्ति की जिज्ञासा का शमन करते हुए उसे सुस्पष्ट शब्दो मे समझाया कि "ये दोनो ही जड हैं पूजनीय नहीं ।"

पर्णकुटी मे

तीन दिन तक फर्रुखाबाद मे निवास करन के उपरात स्वामी दयानन्द ने चासी नामक नगर की राह ली । वहाँ उन दिनो नदराम नामक एक चक्रा-

कित ब्राह्मण ने अपना कुचक्र चला रखा था। किन्तु स्वामी दयानन्द के पाडित्य की चर्चा सुनकर वह चुपचाप गगा पार खिसक गया। उसके पलायन ने चासी के जाटो की तद्रा तोड दी और वे वैरागी पथ के फदे मे आने से बच गये। यहाँ स्वामी दयानन्द ने १५ दिन तक अपने ज्ञानामृत का जिज्ञासुजनो को पान करवाकर उनके जीवन को एक नवीन दिशा प्रदान की।

चासी से प्रस्थान कर आप रामघाट जा विराजे और वहाँ एक पर्णकुटी मे ठहरे। एक दिन पडित टीकाराम नामक एक ज्ञानपिपासु उनकी कुटिया मे पहुचा। स्वामी जी ने प्रश्न किया "कौन हो तुम ?" वह बोला "ब्राह्मण हूँ महाराज !"

"क्या सध्या कठस्थ है?" स्वामी जी ने पूछ लिया। वह सकुचाते हुए बोला "नही भगवन, गायत्री मत्र आता है।" "अच्छा तो वही सुना दो" स्वामी जी ने टीकाराम से आग्रह किया। उसने उत्तर दिया "महाराज ! गुरुजी का निर्देश है कि मैं किसी के समक्ष गायत्री का पाठ न करूँ।"

देव दयानन्द बोले "भइया, सन्यासी तो ब्राह्मण का भी गुरु होता है। अत मेरे समक्ष गायत्री का पाठ करने में तुम्हें सकोच का अनुभव नही होना चाहिए।"

टीकाराम स्वामी जी के इन शब्दो से अत्यधिक प्रभावित हुआ और उसने गायत्री मत्र का सस्वर तथा शुद्ध उच्चारण कर स्वामी जी को आह्लादित कर दिया। उन्होने इस ब्राह्मण को सध्या आदि कर्मो के प्रति अनुरक्त कर दिया। उन्होने टीकाराम को सध्या भी स्वय लिखकर दी।

देव दयानन्द द्वारा प्रदत्त सत्य ज्ञान के प्रकाश ने टीकाराम के मानस पटल पर व्याप्त सन्देह के सघन घनो को विदीर्ण कर सत्यपथ आलोकित किया था। अतएव उसने विष्णु सहस्र नाम, गगा लहरी आदि स्तोत्र गगा की लोल लहरो मे मर्मपित कर अपने ठाकुरो को उन्ही तरगो मे तरगित कर दिया। रामघाट मे महर्षि दयानन्द के पाडित्य की पताका फहरा उठी और प्रतिदिन ही सूर्यास्त से पूर्व अनेक पडित जन और सैकडो जनसाधारण उनके श्रीचरणों मे बैठकर ज्ञान गगा मे स्नान करने के लिए आने लगे। जो भी आता था, स्वामी जी के ज्ञान की गरिमा गाता हुआ ही वापस जाता था। एक श्रद्धालु सज्जन गोसाई शम्भूगिरि तो प्रतिदिन आते समय तुलसी दल भी ले आते थे और श्रद्धा सहित स्वामी जी को समर्पित करते हुए इन शब्दो का उच्चारण करने लग जाते थे "भगवन्, मेरे शालिग्राम तो आप ही है।"

स्वामी दयानन्द के सदुपदेशो ने पडित टीकाराम की जीवन धारा ही

बदल दी । उन्होने अपने पौरोहित्य कर्म का भी परित्याग कर दिया । एक दिन वह कर्णवास आए और वहाँ अपने यजमानो को एत्र कर घोषणा कर दी "रामघाट मे एक सन्यासी पधारे हैं । वह महान् विद्वान् एव सच्चे महात्मा हे । उनके सत्सग से मेरा यह दृढ विश्वास हो गया है कि कठी, तिलक आदि चिह्न अवैदिक हे और वेदो मे मूर्तिपूजा का विधान नही है । तीर्थ व्रत माहात्म्य एव पुराणादि कपोल कल्पित गपोडे हैं । वस्तुत तीनो वर्णों के लिए गायत्री ही जपने योग्य है । मेरा पूर्व निश्चय अब परिवर्तित हो गया है । अतएव मैं अब आपके मन्दिर मे पूजा भी छोड रहा हूँ । मेरा यह परामर्श है कि आप सब लोग भी ज्ञान के पुज देव दयानन्द के दर्शन कर उनसे अपने सदेहो का निवारण कर, यज्ञोपवीत धारण कर लें और मूर्ति पूजन आदि अवैदिक कर्मों को तिलाजलि दे दें ।"

पुन कर्णवास मे

कर्णग्राम के राजपूतो ने जब अपने पुरोहित की इस नूतन अनुभूति को सुना तो उनके मन मे भी स्वामी दयानद के दर्शनो की इच्छा प्रबल हो उठी और उन्होने स्वामी जी को कर्णवास पधारने हेतु मनाने के लिए उनकी सेवा में उपस्थित होने की योजना बनाई । किन्तु स्वामी दयानन्द विचरण करते हुए स्वय ही कर्णवास जा पहुचे और उन्होने वहा पहुँचकर नागा बाबा की मढी के समीप एक वृक्ष के नीचे आसन लगा लिया । देव दयानन्द के शुभागमन की सूचना प्राप्त होते ही ठाकुर धर्म सिह आदि अनेक जिज्ञासु जनो की टोली उनके दर्शनार्थ वहाँ जा पहुँची । अपने दर्शनार्थ उपस्थित हुए युवको को यज्ञोपवीत धारण किए हुए न देखकर स्वामी जी ने उनसे प्रश्न किया "आप लोगो ने यज्ञोपवीत धारण क्यो नही किया ?" उन्होने उत्तर दिया कि विवाह होने के अवसर पर ही यज्ञोपवीत धारण करना उनका जातीय नियम है । स्वामी दयानन्द के मुख मडल पर आक्रोश सा उभरा और वह बोले "इन पडित-पुरोहितो के भ्रष्टाचारो को निहारो । ये अपने यजमानो को दाढी मूछें उभर आने पर भी यज्ञोपवीत प्रदान नही करते । इसी प्रकार के अधर्माचरण के फलस्वरूप यह आर्य देश दिन प्रतिदिन पतनोन्मुख होता जा रहा है ।"

एक और शास्त्रार्थ

महर्षि दयानन्द के भव्य व्यक्तित्व, ब्रह्मचर्य के तेज से देदीप्यमान मुखमडल एव गहन अध्ययन, साधना और चिन्तन के फलस्वरूप अर्जित ज्ञान के अक्षय भडार से क्षत्रिय वर्ग लाभान्वित हुआ तो अन्य वर्गों को भी उनके

विचारो ने नव प्रकाश प्रदान किया। उनकी कीर्ति कौमुदी की छटा इस समग्र अचल मे उद्भासित होने लगी। समूहो के समूह देव दयानन्द के दर्शनार्थ उमडने लगे। किन्तु जहाँ वैदिक ज्ञान के इस पुनरुद्धारक के प्रेरणाप्रद विचारो से अनेको के जीवन मे नवीन प्रेरणा, नव चैतन्य और प्रेरणा की किरण प्रस्फुटित हुई, वहाँ अन्धविश्वासो के बल पर जन साधारण की अन्ध श्रद्धा का लाभ उठाकर अपना घर भरने वाले अनेक पोगापन्थियो की नींद भी हराम हो गई। ऐसे ही लोगो मे थे प० भगवान् दास आदि भी। उन्होने महर्षि दयानन्द को शास्त्रार्थ मे पराभूत कर अपने मार्ग को निष्कटक बनाने का ताना बाना पूरा। उन्होने सस्कृत भाषा के प्रकाड पडित के रूप के ख्याति प्राप्त अनूपशहर मे निवासी प० अम्बादत्त को स्वामी जी से शास्त्रार्थ हेतु आमन्त्रित किया। शास्त्रार्थ हुआ भी, किन्तु सत्य विजयी हुआ और प० अम्बादत्त की भ्रांतियो का निवारण हो गया। वह सत्यप्रिय ब्राह्मण थे, अत उन्होने उपस्थित जन-समूह के मध्य ही अपनी पराजय स्वीकार करते हुए घोषणा की कि "स्वामी दयानन्द जी के विचार ही सत्य हैं और मूर्तिपूजा वेद सम्मत नही, अपितु त्याज्य है।'

शास्त्रार्थ मे मिली इस विजय से महर्षि की कीर्ति पताका चतुर्दिक् फहरा उठी और इस क्षेत्र के सैंकडो व्यक्तियो को सत्य के पावन प्रकाश ने नवीन राह दिखाई। अनेको मूर्तिपूजको ने अपने शालिग्राम को जल धाराओ मे प्रवाहित कर सत्य धर्म का पालन आरम्भ कर दिया।

अनूपशहर मे

स्वामी दयानन्द अपने पाडित्य की धाक बैठाकर शिष्य मडली एकत्रित कर मठाधीशो के तुल्य सुख सुविधाओ और वैभव से परिपूर्ण जीवन जीने के लिए सन्यासी नही बने थे, अपितु उन्हे तो आर्य जाति के जन-जन को उसके गत गौरव से अनुप्रेरित कर सत्य सनातन वैदिक धर्म को पुन जनसाधारण मे प्रतिष्ठित करना था, अत एक स्थान पर जमकर बैठना उन्हें कैसे भाता ? उन्होने कर्णवास से प्रस्थान कर अनूपशहर मे आसन लगाया। यहाँ एक बाँसो की टाल के निकट स्थित कुटिया आपका नीड बनी। अस्वस्थ भी हो गए थे, किन्तु टाल के स्वामी श्री गौरीशकर के औषधोपचार से आप पूर्ण स्वस्थ होकर कर्म क्षेत्र मे सक्रिय हो गए। यही उनकी बूदी नरेश के गुरु वैरागी रामदत्त से भी भेंट हुई और वैरागी भी आप से प्रभावित हुए बिना न रह पाए। कुछ दिन बाद स्वामी जी ने उस कुटिया को भी त्याग कर नर्मदेश्वर मन्दिर के समीप स्थित सती की मढी को अपना निवास स्थान बनाया और समीप ही स्थित था नवलजग नामक सदाचारी सुशील और बलशाली मल्ल का

अखाडा। यह पहलवान तथा इसकी ब्रह्मचारिणी भगिनी दोनो ही तैराकी मे परम प्रवीण थे।

स्वामी जी के प्रखर पाडित्य मे नवलजग भी प्रभावित हुए बिना न रहा। वह प्रतिदिन गगा की रज लाता और चन्दन के तुल्य उसे रगड कर स्वामी जी के शरीर पर लगाता। एक दिन कतिपय वाममार्गियो ने जब स्वामी जी को सताने का कुत्सित प्रयास किया तो नवलजग ने ही उन्हें चुनौती देकर वारुणी से प्रेरित उनका मद उतारा।

विषयुक्तपान अधम को भी अभयदान

प्रत्यक्षत. महर्षि को परास्त करने मे असफल रहने पर जनता के भोलेपन से लाभ उठाकर ऐश्वर्य भोगने वाले पतितजनो ने उनके प्राण लेने की ठानी। षड्यन्त्र रचा गया और तदनुसार अनूपशहर मे ही एक ब्राह्मण ने देव दयानन्द को एक पान प्रस्तुत किया। कलुष से मुक्त स्वामी दयानन्द ने सहज स्वभाव से पान अपने मुख मे रख लिया। किन्तु ज्यो ही उसके रस का उनके कठ से स्पर्श हुआ वह जान गए कि पान विषयुक्त था। स्वामीजी उस ब्राह्मण से कुछ भी कहे बिना तत्काल गगा के पार जा पहुँचे और वहा न्यौली कर्म द्वारा विष के कुप्रभाव मे सर्वथा मुक्त होकर पुन अपने स्थान पर आ गए। यहाँ के तहसील दार सैय्यद मुहम्मद स्वामी जी की विद्वत्ता से प्रभावित होकर उनके परम भक्त बन गए थे। उन्होने इस धूर्त ब्राह्मण को बदी बनाकर कारागृह मे बद कर दिया।

किन्तु जब सैय्यद मुहम्मद ने स्वामी जी को यह सूचित किया तो इस युग पुरुष के मुख से उनकी प्रशसा के पुल नही बधे, अपितु उन्होंने सरोष कहा "आज तुमने मेरे कारण एक व्यक्ति को कारावास मे डाल दिया है। किन्तु मैं तो ससार को कैद कराने नहीं कारा मुक्त कराने आया हूँ।" स्वामी जी के शब्द सुनते ही सैय्यद मुहम्मद स्तब्ध रह गए। वह तुरन्त लौटे और जहाँ महर्षि का सम्मान उनके हृदय मे और भी बढ गया, वहाँ उन्होने उस ब्राह्मण को भी तत्काल कारामुक्त कर दिया।

इस प्रकार दया के अवतार दयानन्द ने अपनी हत्या का प्रयास करने वाले अधम को भी अभयदान देकर अपने दयानन्द नाम को सार्थक किया।

गर्व धूलिधूसरित

व्यायामशील पहलवान ओकार दास भी जो जहाँगीराबाद का निवासी था स्वामी जी का भक्त बन गया था। एक दिन उसके मन मे अपनी पहल-

वानी का गर्व उभरा और उसने महर्षि दयानन्द के बल की परीक्षा करने हेतु उनसे चरण दबाने की अनुमति मागी। महाराज उसे मना करते रहे, किन्तु वह न माना। अन्तत. उसने महर्षि के चरण दबाने आरम्भ कर दिए। किन्तु इस वज्राग पुरुष के चरण दबते तो क्या उस पहलवान को ऐसा प्रतीत हुआ कि वह इस्पात के किसी स्तम्भ को दवाने का निरर्थक प्रयत्न कर रहा है। उसने पूर्ण शक्ति लगा दी, किन्तु उसकी उगलियो ने जवाब दे दिया। इस परिश्रम मे उसके शरीर स स्वेदकण भर उठे और साथ ही उसका गर्व भी धूलिधूसरित हो गया।

यही स्वामी दयानन्द ने अपने एक भक्त प० गगाप्रसाद को, जिसने उनके उपदेशो के अनुसार आचरण करते हुए अनेको व्यक्तियो को यज्ञोपवीत धारण कराया था और गायत्री मत्र का जप करने का सुपथ दिखाया था, यह भी बताया कि अधर्म का आचरण करने वालो का यज्ञोपवीत उतरवा भी लेना चाहिए।

नवीन वेदांत पर चपत

खन्दोई नामक एक ग्राम के निवासी श्री छत्रसिंह जाट नवीन वेदात के प्रति अनुरक्त थे। वह भी महर्षि दयानन्द की कीर्ति सुन कर उनके दर्शनार्थ आने लगे थे। एक दिन उन्होने नवीन वेदात के सबन्ध मे स्वामी जी से चर्चा छेड दी। किन्तु जब स्वामी दयानन्द के प्रबल तर्कों के समक्ष वह निरुत्तर हो गये तो उन्होने यह रट लगाई कि "स्वामी जी, आप जो चाहे सो कहे, किन्तु जगत् तो मिथ्या ही है।" महर्षि ने उनके इस कथन का उत्तर न देते हुए उनके कपोलो पर एक करारी चपत जड दी। क्रोध से दग्धहृदय श्री छत्रसिंह उबल पडे "आप सरीखे ज्ञानीजनो के लिए मतभेद मात्र से क्षुब्ध होकर चपत मार देना शोभा नही देता।" स्वामी जी ने नितात विनम्र भाव से उन्हे उत्तर दिया "चौधरी महोदय! जब जगत् मिथ्या है और ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ है ही नही तो भला वह कौन है, जिसने तुम्हे चपत मारा है?"

जो बात युक्ति से छत्रसिंह के गले न उतरी थी वह चपत ने उन्हे समझा दी। उनके ज्ञान चक्षुओ पर पडा आवरण हट गया और उसने महर्षि के समक्ष नतमस्तक होकर उनके चरण पकड लिए और बोले "स्वामी जी, आपने मेरे नेत्र खोल दिये है। आज मुझे प्रकाश प्राप्त हो गया।"

उपेक्षितों को भी उपदेश

स्वामी जी के उपदेशो से सभी वर्गों के लोग प्रभावित हो रहे थे। उनमें तथाकथित उच्च वर्ण वाले थे तो निम्न वर्ग मे गिनी जाने वाली जातिया के

जिज्ञासुजन भी। ऐसे ही लोगो मे एक धुनका भी था। एक दिन उसने स्वामी जी से अपने कल्याण का मार्ग जानना चाहा तो स्वामी जी ने उसे समझाया कि व्यवहार मे सत्य का अवलम्बन करो, जितनी रूई तुम्हे कोई धुनने को दे, उतनी ही धुनकर उसे लौटा दो। ओ३म् नाम का जाप किया करो। यही है तुम्हारे कल्याण का पथ।

उमेदा नामक एक नाई भी उनके भक्तो मे से था। एक दिन २०-२५ ब्राह्मणो की उपस्थिति मे ही वह अपने घर से बना भोजन एक थाल मे सजा कर स्वामी जी के लिए लाया। स्वामी जी ने ज्यो ही थाल मे रखी रोटियो की ओर हाथ बढाया, उपस्थित ब्राह्मण मडल चिल्लाया "क्या कर रहे हैं आप यह रोटी तो नाई की है।" महर्षि के मुखमडल पर मुस्कान छा गई और वह नितात शान्त भाव से बोले "यह रोटी तो गेहूँ की हैं भाई! मै तो इसे अवश्य ही खाऊगा।" स्वामी जी ने बडे निश्चिन्त भाव से ग्रास मुख मे डालने आरम्भ कर दिये और यह ब्राह्मण मडली अवाक् होकर उन्हें निहारती रही।

राम घाट मे

अनूपशहर से चासी होते हुए स्वामी जी राम घाट पहुँचे। सवत् १६२४ का मार्गशीर्ष मास था (नवम्बर, १८६७ ई०) वहाँ गगा तट पर योगसाधना मे रत महर्षि दयानन्द पद्मासन लगाते। सारा दिन बीत जाता, अशुमाली प्रतीची दिशा मे विलुप्त हो जाता और निशा का श्यामल पट चतुर्दिक् फैल जाता, तब तक उनका यह क्रम चलता रहता था। एक दिन क्षेमकरण नामक एक श्रद्धालु मूर्ति पूजक ब्रह्मचारी उस ओर से गुजरा जहाँ स्वामी जी पद्मासन की मुद्रा मे विराजमान थे। महर्षि के मुखमडल से उद्दीप्त हो रहे ब्रह्मतेज ने इस मूर्तिपूजक ब्रह्मचारी का ध्यान सहसा ही अपनी ओर आकृष्ट कर लिया। इस ब्रह्मचारी की मूर्तियो मे आस्था और आसक्ति का प्रमाण यह था कि सदैव २० सेर भार की प्रतिमाए उसके साथ रहती थी। वह जहाँ कही भी जाता था अपने अश्व पर इन प्रतिमाओ को साथ ले जाता था। वह स्वामी जी के पास पहुँचा और उसने स्वामी जी से वनखण्डेश्वर महादेव के देवालय मे निवास करने का अनुरोध किया। स्वामी जी वहाँ चले गए और उस ब्रह्मचारी ने ही उनके भोजन की भी व्यवस्था की।

किन्तु स्वामी जी तो मूर्तिपूजा, अवतारवाद, तीर्थाटन और अन्य पौराणिक मान्यताओ का निर्भीकता से खडन करते थे। अत. वहाँ की ब्राह्मण-मडली ने अपना धन्धा चलाए रखने मे स्वामी दयानन्द को बाधक मान कर उन्हे वहाँ से हटाने के लिए कृष्णानन्द नामक एक सन्यासी को उनसे शास्त्रार्थ के लिए तैयार किया।

दयानन्द विजयी · कृष्णानन्द पराजित

महर्षि दयानन्द एव कृष्णानन्द में तीन दिन तक शास्त्रार्थ चला। अन्तिम दिन सन्यासी कृष्णानन्द ने साकारवाद का अवलम्बन किया। स्वामी जी ने धाराप्रवाह सस्कृत मे अपना पक्ष प्रस्तुत करते हुए निराकार सिद्धान्त के समर्थन मे वेदो और उपनिषदो के प्रमाणो की झडी लगा दी। कृष्णानन्द जी को जब और कोई तर्क न सूझा तो उन्होने गीता के इस सुप्रसिद्ध श्लोक का हवाला दिया—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।

स्वामी जी ने उत्तर दिया कि परमात्मा कभी जन्म नही लेता। यह कार्य तो केवल आत्मा करता है। कृष्णानन्द जी उखडने लगे और कुछ ही देर बाद सभास्थल से उठकर चुपचाप खिसक गए। इस शास्त्रार्थ का परिणाम यह हुआ कि जहाँ सभा मे उपस्थित अधिकतर व्यक्तियो ने मूर्ति पूजा को तिलाजलि दे दी, वहाँ ब्रह्मचारी क्षेमकरण की जीवन धारा भी बदल गई और उन्होने भी अपनी सभी प्रतिमाए गगा की लहरो मे विसर्जित कर दी। अब वह ईंट गारे के देवालयो मे प्रभु को खोजने और पूजने के स्थान पर अपने हृदय मे ही विराजमान सर्वव्यापक प्रभु की उपासना-वदना मे तल्लीन हो गए।

स्वामी जी रामघाट से बेलोन पहुँचे और वहाँ भी अपने ज्ञान की गगा मे अनेको को आकठ स्नान कराकर पुन कर्णवास आगये।

पुनः शास्त्रार्थ

यहाँ स्वामी जी से मुह की खाकर हताश हुए प० अम्बादत्त को अपनी पराजयका त्रास सता रहा था अत वे अनूपशहर पहुँचे और वहाँ से एक प्रकाड पडित श्री हीरावल्लभ को स्वामी जी से शास्त्रार्थ के लिए मनाकर ले आए। वह अपने आराध्य देवी देवताओ की प्रतिमाओ को भी एक सिंहासन पर सजा कर वहाँ लाए थे। शास्त्रार्थ का क्रम आरम्भ होने से पूर्व ही उन्होने सगर्व घोषणा की कि "मैं स्वामी दयानन्द से इन देव प्रतिमाओ को भोग लगवा कर ही उठूँगा।" ६ दिन तक दोनो विद्वानो मे शास्त्रार्थ चला। छटे दिन पडित हीरावल्लभ ने अपनी पराजय स्वीकार कर ली और सभा के समक्ष घोषणा की कि "स्वामी दयानन्द की मान्यता ही सत्य और प्रामाणिक है। यह विद्या के सागर है और इनका शास्त्र अनुशीलन भी अपार है।"

उन्होने अपने साथ लाई देव प्रतिमाओ को गगा मे विसर्जित कर दिया। और उनके स्थान पर वेदो को अधिष्ठित कर दिया। इस शास्त्रार्थ मे लगभग दो हजार का जनसमुदाय उपस्थित रहता था। इसमे क्षत्रिय परिवारो के अनेक

गुरु और पुरोहित भी सम्मिलित थे। उन्होंने भी पं० हीरावल्लभ का ही अनुसरण किया। महर्षि दयानन्द भी पं० हीरावल्लभ की सत्यनिष्ठा और न्यायप्रियता से प्रभावित हुए बिना न रहे। उन्होने भी मुक्त कंठ से पंडित हीरावल्लभ की प्रशंसा कर उन्हें साधुवाद कहा।

इस क्षेत्र के क्षत्रियो के अनेकों पुरोहितों और गुरुओं द्वारा महर्षि का अनुगामी बन जाने का एक परिणाम यह हुआ कि कर्णवास क्षेत्र के क्षत्रियो मे स्वामी दयानन्द से यज्ञोपवीत लेने की होड-सी लग गई।

उन दिनो स्वामी जी निम्नांकित आठ गप्पो को त्यागने पर विशेष जोर देते थे —

१ सब मनुष्य कृत ग्रन्थ और १८ पुराण। २ देवता मानकर पाषाण प्रतिमाओ की पूजा ३ शैव, शाक्त, रामानुज और वैष्णवादि सम्प्रदाय ४. तन्त्र, मंत्र और वाममार्ग। ५ मदिरा, शराब और भांग आदि मादक वस्तुओ का सेवन। ६ व्यभिचार। ७ चोरी करना ८. छल कपट, झूठ और अहंकार आदि।

स्वामी जी की दिनचर्या

उन दिनो स्वामी जी प्रतिदिन प्रात २ बजे उठ जाते थे और गंगा तट पर काफी दूर तक भ्रमणार्थ जाते थे। प्रात नित्य कर्म से निवृत्त होकर स्नान करने के उपरांत वह समाधि लगा लेते थे। तदुपरांत वह व्यायाम करते और पुन अपनी कुटिया मे वापस आकर एक तख्त पर आ विराजते। सूर्योदय के उपरांत लगभग एक घंटे तक उनका यह क्रम जारी रहता। उस समय अनेको जिज्ञासु वहां एकत्रित हो जाते और स्वामी जी उनकी शंकाओ का समाधान करते। वह उन दिनों संस्कृत मे ही भाषण करते और केवल लंगोट धारण करते थे। रात्रि मे केवल एक चादर उनका ओढने का वस्त्र था।

महिला को गायत्री मन्त्र का उपदेश

जब स्वामी जी कर्णवास मे वेद के पावन ज्ञान का प्रचार और प्रसार करने मे संलग्न थे, वहाँ ठाकुर गोपालसिंह नामक महर्षि भक्त राजपूत युवक की बाल विधवा ताई ठाकुरानी हंसा भी रह रही थी। यद्यपि वह ५-६ ग्रामो की स्वामिनी थी। किन्तु वैधव्य के इस जीवन मे उसने जौ की रोटी और मूंग की दाल को ही अपना आहार बनाया हुआ था। वह स्वयं पाकी भी थी। क्षत्रिय परिवारो मे इस देवी को बहुत आदर और सम्मान प्राप्त था। वह माँ कहकर पुकारी जाती थी। उन्होने एक दिन स्वामी जी के दर्शनो की इच्छा व्यक्त की। ठाकुर गोपाल सिंह उन्हें स्वामी जी के पास ले आए। उन्होने स्वामी जी को नितांत श्रद्धा सहित प्रणाम कर अपने कल्याण का मार्ग

पूछा। स्वामी जी ने उन्हें मूर्ति पूजा त्याग कर गायत्री मत्र और ओ३म् का जप करने का उपदेश दिया। सैकडो वर्षों के उपरात सभवत यह पहला अवसर था, जब दया के अवतार दयानन्द द्वारा पुन प्राचीन परम्परा का पुनरुद्धार हुआ था और एक महिला को गायत्री जप का खोया हुआ अधिकार प्राप्त हो गया था। ठकुरानी हसा भी इस महान् योगी के दर्शन और उपदेश से कृतार्थ होकर अपने निवास स्थान पर लौट गई।

माघ बदि १५ सवत् १६२४ को सूर्य ग्रहण था। सहस्रो नरनारी इस अवसर पर स्नानार्थ कर्णवास पहुचे। स्वामी जी ने उन्हें वास्तविक धर्म, कर्म और आचार-विचार का मर्म समझाया और उनके मन पर अधिकार जमाकर बैठी भ्रान्त धारणाओ के स्थान पर उनके हृदय मदिर मे सत्य धर्म का दीप जलाया। इसी अवसर पर उन्होने डिबाई निवासी एक जिज्ञासु श्री शिवदयाल जी को यह तथ्य भी समझाया कि भोजन को भी ग्रहण लगने की कल्पना सर्वथा भ्रामक और निस्सार है। जब भूख लगे, तब ग्रहण आदि का विचार न करते हुए भोजन ग्रहण कर लेना चहिए। उन्होने श्री शिवदयाल को यज्ञोपवीत का मर्म भी समझाया और बताया कि यह सूत्र आर्यों के धार्मिक कर्त्तव्य का चिह्न है और जिसने यज्ञोपवीत धारण न किया हो वह वैदिक कर्म करने का अधिकारी नही।

कलेक्टर सेवा मे उपस्थित

कर्णवास के इस प्रवासकाल मे एक दिन बुलन्दशहर के कलेक्टर महोदय भी स्वामी जी के दर्शनार्थ उनकी कुटिया पर पहुँचे। उस समय महर्षि कुटिया मे ध्यानावस्था मे थे। कलेक्टर ने एक व्यक्ति को स्वामी जी की सेवा मे भेजा और दर्शनो की इच्छा व्यक्त की। उन्होने पुछवाया कि स्वामी जी को कब अवकाश होगा? इस प्रश्न के उत्तर मे स्वामी जी ने उस व्यक्ति को कहा कि कलेक्टर महोदय से ही पूछो कि उन्हे कब अवकाश रहेगा? कलेक्टर ने उत्तर भिजवाया कि चार घटे के उपरान्त तो उन्हे अवकाश ही अवकाश है। स्वामी जी यह सुनते ही अपनी कुटिया से बाहर आ गए और उन्होने कलेक्टर को बुलाकर बैठने के लिए आसन प्रदान किया और वेद मत्रो तथा मनुस्मृति से कुछ श्लोको को उद्धृत करते हुए राजधर्म पर प्रकाश डाला और साथ ही उन्हे उपदेश देते हुए यह भी कहा "जिस व्यक्ति के सिर पर अपने ही परिवार का दायित्व है, उसे भी कठोर परिश्रम करना पडता है। वह कई बार तो रात-रात भर जागता है। परन्तु आपके इस कथन से तो मुझे भारी आश्चर्य हो रहा है कि सहस्रो व्यक्तियो का दायित्व ग्रहण करने वाले आप, जिनका कर्त्तव्य ही दीन दुखियो के कष्ट निवारण करना है, चार घटे बाद अवकाश ही अवकाश होने की बात कह रहे हैं।"

कलेक्टर महोदय स्वामी जी की स्पष्टवादिता से स्तब्ध हो गये, और उन्हे स्वकर्त्तव्य की गुरुता का बोध हो गया। उन्होने स्वामी जी के समक्ष नतमस्तक होकर उनसे विदाई ली।

अस्तेयव्रती दयानन्द

एक दिन इसी नगर के पडित नन्दकिशोर उपाध्याय स्वामी जी के दर्शनार्थ आते समय मार्ग मे एक खेत से सेम की कुछ फलिया तोड लाए और उन्हे स्वामी जी के समक्ष प्रस्तुत कर दिया। स्वामी जी तत्काल बोले "आप ये फलिया चोरी से तोड कर लाए हो, अतः हम इन्हें ग्रहण नही कर सकते।" प० नन्दकिशोर सटपटा उठे और बोले "भला मैंने किसकी चोरी की है।" स्वामी जी ने उत्तर दिया "तो सत्य-सत्य बताओ क्या आपने यह फलिया खेत के मालिक से अनुमति प्राप्त कर तोडी थी?" उपाध्याय जी यह सुनते ही लज्जित हो गये और उन्होने अस्तेयव्रती देव दयानन्द के समक्ष गर्दन झुकाकर अपनी भूल स्वीकार की।

योगबल का प्रदर्शन

स्वामी जी ने अपनी योगसाधना के बल पर द्वन्द्वो पर विजय प्राप्तकर ली थी। उन्हे न शीत सताता था और न ही ग्रीष्म का भीषण रूप। माघ मास के एक दिन प्रात काल सामान्य जन के शरीर को काटती-सी शीतल पछवा पवन पूर्ण वेग से चल रही थी। किन्तु स्वामी जी पद्मासन लगाए उपदेश दे रहे थे। उनके शरीर पर शीत के प्रभाव का कोई भी लक्षण प्रतीत नही हो रहा था। उधर श्रोता ऊन के वस्त्रो और लिहाफो मे भी कपकपी का शिकार हो रहे थे। उनके नाक और नेत्र रिस से रहे थे। ठाकुर गोपालसिंह से न रहा गया और उन्होने स्वामी जी से पूछ ही लिया "महाराज, शीत के इस प्रचड प्रकोप के फलस्वरूप हमारी तो कपकपी छूट रही है, किन्तु आप पर इस असह्य शीत का कोई प्रभाव प्रतीत नही हो रहा। इसका क्या कारण है?"

स्वामी जी के मुखमण्डल पर मुस्कान विस्फारित हो उठी और वह बोले "इसका कारण है ब्रह्मचर्य और योगाभ्यास।" ठाकुर गोपालसिंह बोले "हमे कैसे विश्वास हो?" स्वामी जी ने तत्काल अपने हाथो के अगूठे घुटनो पर रखे और इतने जोर से दबाए कि उसके सम्पूर्ण शरीर पर स्वेद कण झलक उठे। उपस्थित जन आश्चर्य चकित रह गए—उन्हे योगिराज दयानन्द के योग बल का दर्शन जो हो गया था।

चिरस्मरणीय निशा

विमल व्योम मे चन्द्रमा की धवल चन्द्रिका छिटक रही थी। शीत अपने

पूर्ण यौवन का प्रदर्शन कर रहा था। आकाश से राकेश शीतलता बरसा रहा था तो धरती भी गगा की लोल लहरो से नम बनी हुई शीतल ही थी। शुक्ल पक्ष की इस निशा में देव दयानन्द गगा की रेत पर आसन जमाए ध्याना-वस्थित थे। उसी समय दो अग्रेज जो आखेट के उद्देश्य से इस शीतल रात्रि मे विचरण कर रहे थे, वहा से गुजरे। इनमे से एक था बदायूँ जिले का कलेक्टर और दूसरा था एक पादरी। केवल कौपीन धारण किए ही गगा की इस शीतल रेती मे एक सन्यासी को जब उन्होने ध्यानमग्न देखा तो वे ठिठक कर ठहर गए। महर्षि ने नेत्र खोले तो टकटकी लगाए उनकी ओर देखता हुआ अग्रेज कलेक्टर बोला "इस कपा देने वाली शीत मे भी आप गगा की शीतल रेती मे आसन लगाए निर्वसन बैठे हैं। क्या आपको ठड का अनुभव नही हो रहा ?" स्वामी जी उसके प्रश्न का उत्तर देने को ही थे कि कलेक्टर के साथ आया पादरी बोल उठा "ये खूब माल उडाते हैं। इसलिए मुटापा आ गया है। भला इन्हे शीत क्यो सताएगा ?" स्वामीजी के मुख पर एक मन्द मुस्कान विस्फारित हो उठी और वह बोले "मैं तो दालरोटी पर ही गुजारा करता हूँ। जब कि पादरी वृन्द मास, अडे, मदिरा आदि का भक्षण करते ही हैं। यदि भोजन पर ही शीत का अनुभव होना या न होना आधारित है, तो फिर आप तनिक वस्त्र उतार कर मेरे साथ इस ठडी बालू मे आ बैठिए।"

पादरी लजिज्त हो गया और बोला "तो फिर आप यह तो बताइए कि आपको शीत न लगने का रहस्य क्या है ?" स्वामी जी ने कहा "जिस भाति आपने शरीर के अग प्रत्यग ढके हुए है, उसी भाति आपने अपना मुख कपडो से क्यो नही ढका ? इसका क्या कारण है ? इन दोनो यूरोपियनो की शका का समाधान हो गया था। श्रद्धा से उनके मस्तक स्वामी जी के समक्ष नत हो गये और उन्होने अपनी राह ली।

गढ़िया घाट मे

कुछ ही दिन के उपरात स्वामी जी ने गढिया घाट के लिए प्रस्थान कर दिया। वह सवत् १९२५ के चैत्र मास (मार्च, १८६९) मे वहाँ पहुँचे। यह घाट सुप्रसिद्ध तीर्थस्थल सोरो के समीप स्थित है। सोरो भी पौराणिको की दृष्टि मे पुष्कर के तुल्य ही पावन है। सोरो मे उन दिनो श्री बलदेव गुसाईं को जनसाधारण मे भारी सम्मान और प्रतिष्ठा प्राप्त थी। स्वामी जी की ख्याति उन्होने भी सुनी थी। अतएव वह भी स्वामी जी के दर्शनार्थ आए और उन्होने ही उनके भोजन, आतिथ्य आदि की सम्पूर्ण व्यवस्था की। स्वामी जी से हुई इस भेंट के उपरांत गुसाईं जी के मन मे उनके तप, तेज और प्रगाढ ज्ञान के कारण आदर की भावना और भी अधिक बढ गयी।



गुरु विरजानन्द जी सरस्वती के चरणों में · शिष्य दयानन्द —


पाखण्ड खण्डनी
पताका

भागवत भक्त का रोष

स्वामी दयानन्द भागवत का प्रबल खण्डन करते थे। अतएव अनेक भागवत भक्त उनसे डाह भी करते थे। ऐसे ही लोगो मे से एक थे निम्बकाचार्य के अनुगामी ओदेसा के ठाकुर साहब। एक दिन वह अपने साथ तीन सशस्त्र व्यक्तियों को लेकर स्वामी जी पर आक्रमण करने के लिये पहुँचे। उन्होने स्वामी जी से अभद्र व्यवहार आरम्भ किया। स्वामी जी ने उन्हे समझाने का पर्याप्त प्रयास किया, किन्तु उनकी उद्दण्डता बढ़ती ही गई, अतः स्वामी जी दूसरे कमरे मे चले गए। ठाकुर साहब ने श्री बलदेवगिरि गोसाई पर भी प्रहार किया जो कि अच्छे पहलवान भी थे। उन्होने आत्मरक्षा ही नही की, अपितु ठाकुर साहब के साथ आए तीनो व्यक्तियो को अपने मुक्को आदि के प्रहारो से इतना "दुरुस्त" कर दिया कि वे अपनी लाठिया और तलवार छोडकर भाग निकले। किन्तु ठाकुर साहब गोसाई जी की पकड मे आ ही गये। उन्होने उसे नदी मे उठा फेंका। स्वामी जी ने भी श्री बलदेवगिरि के पौरुष और शौर्य की भूरि-भूरि प्रशसा की। यह दृश्य देखकर वहा भारी जनसमूह एकत्रित हो गया। प्राय सभी ने उस कायर ठाकुर को धिक्कारा। तदुपरान्त बलदेवगिरि स्वामी जी को सोरो मे अपने अम्बरगढ स्थित निवास स्थान पर लिवा ले गए। यहा भी पौराणिको का प्रभुत्व था। फिर भी स्वामी दयानन्द के प्रकाड पाण्डित्य, तर्कशक्ति और ज्ञान की गाथाए गु जित हो रही थी। अतः यहा के पौराणिको ने महर्षि को शास्त्रार्थ मे परास्त कराने का स्वप्न सजोकर प० अगदराम शास्त्री को इस कार्य के लिए मनाया। शास्त्री जी ने उन दिनो स्वामी विरजानन्द जी से सिद्धान्त कौमुदी का अध्ययन किया था, जिन दिनो वे सोरो मे रहे थे।

स्वामी जी का भागवत के कथावाचक एव शालिग्राम के पूजक अगदराम शास्त्री से मूर्ति पूजा पर शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ। मूर्तिपूजा के खण्डन मे स्वामी दयानन्द के अकाट्य तर्कों के समक्ष जब अगद शास्त्री निरुत्तर हो गये तो उन्होने एक सत्यशोधक के तुल्य सत्य को स्वीकार कर अपनी प्रतिमाओ को गगा की तरगो को समर्पित कर दिया। उनका अनुकरण करते हुए श्री बलदेवगिरि ने भी मूर्तियो का जल प्रवाह कर सत्य सनातन वैदिक धर्म के अनुगमन का सकल्प कर लिया।

कारवां बढ़ता गया

भारत के उत्तराचल मे वैष्णवो के प्रमुख श्री रगाचार्य, जो मथुरा मे अपना केन्द्र बनाकर रहते थे, प्रतिवर्ष ही सोरो आते और अनेक व्यक्तियों को रामानुज सप्रदाय मे दीक्षित करते थ। किन्तु जब उन्हे यह विदित हुआ कि सोरो मे देव दयानन्द का जयनाद गूज रहा है तो उन्होने यहाँ आना ही बन्द कर दिया।

स्वामी कैलाश पर्वत भी उन्ही दिनो सोरो आए । वह स्वामी दयानन्द के पूर्व परिचित थे । स्वामी दयानन्द अपने पूर्व परिचय के कारण गढ़िया घाट मे स्वामी कैलाश पर्वत से साक्षात्कार करने पहुँचे । उनकी कुटिया मे पहुँचते ही स्वामी दयानन्द बोले "इतना विशाल कैलाश पर्वत इस लघु कुटिया मे कैसे समा गया ? कैलाश पर्वत महर्षि के इस व्यग्य पर मुस्करा उठे । स्वामी जी ने कैलाश पर्वत से रामानुज एव अन्य वैष्णव सप्रदायों के विरुद्ध अपने अभियान मे सहयोग प्रदान करने का अनुरोध किया । कैलाश पर्वत बोले "दयानन्द जी ! आपका का विचार तो उत्तम है । इन मतो का खण्डन किया जाना आवश्यक है । मैं आपको अपना सम्पूर्ण सहयोग देने को तत्पर हूँ । किन्तु आपको मूर्तिपूजा खण्डन और पुराणो की आलोचना का परित्याग करना होगा ।"

स्वामी दयानन्द ने उन्हे विनम्र भाव से उत्तर दिया "भगवन् ! इन सम्प्रदायो का आधार तो यही मूर्ति पूजा और पुराण है । जब तक इन का खण्डन नही किया जायेगा, वेदो और अन्य आर्ष ग्रन्थो का सम्मान नही हो पायेगा । आप तो सन्यासी हैं, अत: निर्भीक होकर सत्य धर्म के प्रचार हेतु सन्नद्ध हो ।" किन्तु वराह मदिर से होने वाली विपुल आय को त्यागने का साहस कैलाश पर्वत न सजो पाए ।

सोरो के पडित सुखानन्द, श्री अयोध्याप्रसाद तथा श्री चेतराम आदि प्रमुख व्यक्ति स्वामी जी की विद्वत्ता से प्रभावित होकर उनके अनुगामी हो गए थे । इस प्रकार देव दयानन्द का कारवाँ दिन प्रतिदिन बढता ही जा रहा था । प० अगदराम जी ने भी महर्षि दयानन्द से महाभारत पढना प्रारम्भ कर दिया था । स्वामी जी उन्हे यह भी बताया करते थे कि महाभारत मे ऐसे कौन कौन से श्लोक हैं जिन्हें स्वार्थान्धो ने बाद मे महाभारत मे सम्मिलित किया है । प० अगदराम स्वामी दयानन्द द्वारा प्रदत्त सत्य ज्ञान से इतने अधिक प्रभावित हुए कि उन्होने महर्षि की शिक्षाओ पर सस्कृत श्लोको की भी रचना की । उन्ही मे से एक था -

रुद्राक्ष तुलसी काष्ठमाला तिलक धारणम् ।
पाखण्ड विजानीयात् पाषाणादिकाऽर्चनम् ।।

स्वामी जी के बढते हुए प्रभाव मे जहाँ जिज्ञासु जन सतुष्ट हो सुख और आनन्द का अनुभव कर रहे थे, वहाँ कतिपय दुराग्रही कुटिलजनो तथा स्वार्थ-लिप्त धर्मान्धो की दृष्टि मे वे शूल से खटकने लगे थे । ऐसे ही कुछ दुर्बुद्धि व्यक्तियो ने एक रात महर्षि दयानन्द के धोखे मे उनके समीप की कुटिया मे निद्रामग्न एक अन्य सन्यासी को उठाकर गगा में फेंक दिया था, जिसे उन्होने अपनी भूल पता चलने पर जल से बाहर निकाला ।

स्वामी जी की सहनशीलता

एक दिन जब स्वामी जी उपस्थित जनसमूह को अपने उपदेशामृत से आप्लावित कर रहे थे। सहसा एक हृष्ट पुष्ट जाट नितात क्रुद्ध मुद्रा मे वहाँ आया और उसने स्वामीजी को अपनी लाठी दिखाते हुए प्रहार की धमकी दी। इस क्रुद्ध पहलवान की इस धमकी से भी देव दयानन्द विचलित न होते हुए शात भाव से बोले "भाई! यदि तुम्हारी यह धारणा है कि धर्म का प्रचार कर मैं कोई अपराध कर रहा हूँ तो अपनी लाठी का प्रहार मेरे सिर पर करो, क्योकि मेरा मस्तिष्क ही मुझे इस कार्य हेतु प्रवृत्त करता है।" इतना कहकर स्वामी दयानन्द ने अपनी दृष्टि अगारो के तुल्य दग्ध हो रहे उसके नेत्रो पर डाली। वह क्रुद्ध व्यक्ति तत्काल शात हो गया और महर्षि के चरणो मे लेटकर क्षमा याचना करने लगा।

दया की जीवित-जाग्रत मूर्ति दयानन्द ने उसे अभयदान देकर सत्य धर्म को अगीकार करने हेतु प्रेरित किया और उनकी निर्भीकता तथा दयालुता से वहाँ उपस्थित सैकडो श्रोताओ की उनमे श्रद्धा और भी अधिक हो गई।

राव कर्णसिह का दर्प चूर

सवत् १६२५ के ज्येष्ठ मास (मई-जून १८६८) मे स्वामी दयानन्द पुन कर्णवास जा पहुँचे। उन्होने अपनी पुरानी कुटिया मे ही आसन जमाया। उन दिनो गगा स्नान का मेला लगा हुआ था। सहस्रो नरनारी गगा स्नान कर अपने पापो का प्रक्षालन करने की भ्राति हृदय मे सजोए कर्णवास के इस मेले मे आए। उन्ही मे से एक थे वृन्दावन के सुविख्यात वैष्णव विद्वान् रामाचार्य के शिष्य एव प्रमुख जमीदार राव कर्णसिह। एक दिनवह स्वामी जी की कुटिया मे आए और उन्होने स्वामी जी से रासलीला देखने का अनुरोध किया। स्वामी जी उन्हे लताडते हुए बोले "कैसे क्षत्रिय है आप? क्या आपको अपने पूर्वजो का इन स्वाग और नृत्यो के माध्यम से होने वाला उपहास भी समझ मे नही आता? आप क्षत्रिय होकर भी अपने माथे को भिखारियो के तुल्य पोतते है। यह क्या स्वाग है राव कर्णसिह जी?" राव कर्णसिह बोले "यह तो श्री चिह्न है और जो इसका अकन नही करते वे चाडाल हैं।" स्वामीजी ने पुन. प्रश्न किया "राव कर्णसिह जी, आपने वैष्णव मत की दीक्षा कब से ली है?" राव कर्णसिह बोले "चार वर्ष पूर्व।" स्वामी जी ने पुन पूछ लिया 'क्या आपके पिता जी भी वैष्णव थे?" राव ने उत्तर दिया कि "नही।" उनका यह उत्तर सुनते ही स्वामी दयानन्द ने अपनी तार्किक बुद्धि का परिचय देते हुए तत्काल ही कहा "तो फिर आपके अपने कथनानुसार ही आपके पिता जी और स्वय आप भी कुछ वर्ष पूर्व तक चाडाल ही थे क्या?"

यह सुनते ही राव कर्णसिंह ने क्रोध से दग्ध हो तलवार म्यान से बाहर निकाल ली। स्वामी जी शात भाव से बोले "भइया! युद्ध ही करना है तो जयपुर या जोधपुर नरेश से जा भिड़ो! यदि शास्त्रार्थ के माध्यम से धर्म के मर्म को जानने की चाह हो तो फिर अपने गुरु श्री रगाचार्य जी को यहाँ बुलवा लो। किन्तु यदि तुम केवल इसी कारण मेरी हत्या करना चाहते हो कि मैं सत्य का प्रचार क्यो करता हूँ तो फिर उठाओ अपनी तलवार और कर दो मुझ पर प्रहार।"

राव कर्णसिंह क्रोध से पागल हो उठे और उनकी आँखो मे अग्नि ज्वाला-सी धधकने लगी। उचितानुचित का विचार त्याग और विवेक को तिलाजलि देकर वह खरी खोटी सुनाते हुए खड्ग हाथ मे थामे स्वामी जी की ओर लपके। स्वामी जी ने उन्हे अपने से एक ओर धकेलकर उनके हाथ से तलवार छीन ली और उसे भूमि के साथ टिका कर दबाया। तलवार के दो टुकडे हो गए। ठाकुर किशनसिंह जी भी इस अवसर पर उपस्थित थे। उन्होने राव कर्णसिंह को ललकारते हुए कहा "तुम स्वामी जी का उपदेश सुनना चाहते हो तो शात मन से बैठो और सुनो। अन्यथा अपना रास्ता लो।" यह सुनकर क्रोध और लज्जा से क्रुद्ध राव कर्णसिंह ने वहा से प्रस्थान कर दिया। उस समय वहा उपस्थित स्वामी जी के कई शिष्यो ने परामर्श दिया कि इस काड की जानकारी पुलिस को दे दी जाये। किन्तु महर्षि बोले "यदि राव कर्णसिंह ने क्षत्रियोचित व्यवहार नहीं किया तो न सही, मैं अपने ब्राह्मण चारित्र्य को क्यो तिलाजलि दू? हमे धैर्य रखना चाहिए।" और फिर स्वामी जी की वाणी से गूज उठा गीता का यह अमर श्लोक —

धर्म एव हतो हन्ति, धर्मो रक्षति रक्षित।
तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मो हतोऽवधीत्

यह घटना स्वामी जी के महान् धैर्य, उदारता, क्षमाशीलता और सहनशीलता का अनुपम उदाहरण बन गई।

शरत् पूर्णिमा पर राव कर्णसिंह पुन गगा स्नान हेतु आए। किन्तु गगा मे अनेक बार लगाई गई डुबकियो के बावजूद उनके हृदय का कलुष पूर्ववत् विद्यमान था। उन्हे जब यह विदित हुआ कि स्वामी दयानन्द अभी खण्डन-मण्डन के अपने कार्य मे पूर्ववत् वहा डटे हैं तो स्वय उनके समक्ष जाने का साहस सजो पाने मे असफल होकर उन्होने अपने कुछ क्रीतदासो को स्वामी जी की हत्या का प्रयास करने हेतु रात्रि में उनकी कुटिया पर भेजा। आहट पाकर महर्षि की नीद खुल गई और उन्होने इतने जोर की हुकार भरी कि हत्या के उद्देश्य से वहाँ आए कर्णसिंह के क्रीतदास भयभीत होकर भूलुण्ठित

हो गए। येन केन प्रकारेण सभले और दबे पैरो वहां से पलायन करने में ही उन्होन अपनी कुशलता समझी।

स्वामी जी के कतिपय शिष्यो ने इस कांड के उपरान्त सकटापन्न स्थिति के कारण तत्काल इस स्थान को छोडकर अन्यत्र चले जाने का परामर्श दिया। किन्तु मानव मात्र को अभय और सत्य हेतु सर्वस्व समर्पण का पावन सदेश देने वाला यह महान् कर्मयोगी भला मृत्यु से भयभीत क्यो होता। अतएव उन्होने अपने इन शिष्यो के समक्ष गीता के इस श्लोक का उच्चारण कर अपनी मन:स्थिति और सकल्प से उन्हे अवगत करा दिया:—

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि,
नैनं दहति पावक.।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो
न शोषयति मारुतः ॥

इस कांड के पांच दिन बाद स्वामी जी ने कर्णवास से अम्बायढ़ के लिये प्रस्थान कर दिया। वहा कुछ दिन व्यतीत करने के उपरान्त आपने सरदोल की राह ली, जहां के क्षत्रिय उनके अनुयायी बन चुके थे।

साधु को दिशा निर्देश

एक दिन महर्षि दयानन्द गगा तट पर भ्रमण कर रहे थे। वहीं एक साधु कमण्डल आदि का प्रक्षालन करने के उपरात अपने वस्त्र धो रहा था। उसकी दृष्टि स्वामी जी पर पडी। वह बोला "महात्मन्! ऐसे त्यागी-तपस्वी आप सरीखे परमहस को खण्डन-मण्डन के इस जजाल मे नही उलझना चाहिए। आप अपना ध्यान मोक्ष साधना में क्यो नही लगाते? आप अपनी आत्मा से प्रेम कीजिए। आप इस असार ससार के प्रपच मे क्यो सिर खपाते हैं?" उसने मैत्रेयी और याज्ञवल्क्य सवाद के कुछ वाक्य भी सुना डाले। स्वामी जी ने पूछा "आप सर्वाधिक प्रेम किससे करते हैं भगवन्?" वह बोला "आत्मा से" "वह आत्मा कहां हैं?" स्वामी जी ने पुनः प्रश्न किया। साधु ने उत्तर दिया "वह तो राजा से रक और हाथी से चीटी पर्यन्त सभी मे विद्यमान है।" स्वामी जी बोले "नही! आप तो उस आत्मा से प्रेम करते प्रतीत नही होते। आप तो केवल भोजन के प्रति आसक्त हैं—वस्त्रो को उजला रखने मे ही प्रयत्नशील हैं। क्या आपने कभी उन कोटि-कोटि जनो की भी चिन्ता की है जो भूख की ज्वाला से क्षार-क्षार हो रहे हैं। हजारो ऐसे व्यक्ति हैं जिनके जीवन मे वह घडी आई ही नही जब उन्हे भरपेट भोजन प्राप्त हुआ हो। जिन्हे अपना तन ढकने के लिए कभी पूरे वस्त्र भी प्राप्त नहीं हुए। क्या आपने कभी भारत भूमि के उन लाखो लोगो की टीस और पीड़ा अनुभव की

है जो नारकीय जीवन यापन कर रहे हैं। महात्मन्! यदि आपको आत्मा से, विराट् आत्मा से ही प्रेम करना है तो उन्हे भी अपने ही अंगो के समान अपनाना होगा। जिस भाति आप अपनी क्षुधा निवृत्ति के लिए प्रयत्नशील रहते हैं उसी भाति उनकी भी चिन्ता करनी होगी। भगवन! तभी स्थिति मे आप सच्चे महात्मा बन पाएगे।" साधु देव दयानन्द के इन वाक्यो को सुनकर द्रवित हो गया और दूसरे ही क्षण उसने महर्षि के चरणो मे अपना मस्तक टेककर अपनी भूल पर पश्चात्ताप किया।

व्याकरण का सूर्य अस्त

स्वदेश और मानवता के हित-चिन्तन से द्रवीभूत देव दयानन्द ने अब शहबाजपुर की राह ली। सोरो से ५ मील की दूरी पर स्थित है यह ग्राम। जब श्री बलदेवगिरि, प० अयोध्या प्रसाद एव अन्य सज्जनो को स्वामी जी के शहबाजपुर पहुँचने का समाचार प्राप्त हुआ तो वे सभी वहाँ पहुँचे। उन्होने ही स्वामी जी को प्रज्ञाचक्षु गुरुवर्य स्वामी विरजानन्द सरस्वती के आश्विन कृष्णा त्रयोदशी सवत् १६२५ (१४ सितम्बर, १८६८ को देहत्याग का समाचार दिया। जिस समय स्वामी दयानन्द को यह समाचार सुनाया गया, उस समय का दृश्य द्रवित करने वाला था। देव दयानन्द का मुख म्लान हो गया। वह कुछ देर तक मौन रहे और फिर शोकपूर्ण मुद्रा मे बोले "आज व्याकरण का सूर्य अस्त हो गया।" गुरुदेव के निधन से शोकाकुल स्वामी दयानन्द उस दिन अन्न तो दूर रहा जल भी ग्रहण न कर पाए।

हत्या का एक और प्रयास

महर्षि दयानन्द की कीर्ति पताका के सतत फहराते जाने से क्षुब्ध कतिपय नराधम अभी भी दुरभिसन्धियो मे सलग्न थे। ऐसे ही दो वैरागी ठाकुर गगासिह के पास पहुँचे और स्वामी दयानन्द के शिरच्छेदन हेतु उनसे तलवार देने की याचना की। ठाकुर गगासिह को महर्षि दयानन्द का सदुपदेश सुनने का सौभाग्य प्राप्त हो चुका था। ठाकुर साहब ने इन दुष्टात्माओ को धिक्कारते हुए चेतावनी दी "यदि तुमने पुन ऐसे शब्द मुख से निकाले तो मेरी तलवार ही तुम्हारा शिरच्छेदन कर देगी।"

ठाकुर साहब की फटकार सुनकर वे दोनो वैरागी वहा से खिसक गए। गगासिह जी ने तत्काल अपने कुछ साथियो को बुलाया और उन्हें साथ लेकर वह स्वामी जी की सेवा मे उपस्थित हुए। उन्होने सम्पूर्ण घटना क्रम से उन्हें अवगत करा दिया। स्वामी जी के वापस लौट जाने के लिये जोर देने पर भी वे सभी सारी रात उनकी कुटिया पर पहरा देते रहे।

शहबाजपुर के साधु मायाराम उदासी ने स्वामी जी को मूर्तिपूजा का

खडन करना त्यागने और सुख-सुविधापूर्ण जीवन बिताने का परामर्श दिया। किन्तु जिसके जीवन का लक्ष्य ही जनसाधारण को सत्यपथ दिखाना हो, वह भला प्रलोभनो की प्रवचना मे अपने मन को कैसे लगाता ? अत उन्होने साधु मायाराम को उत्तर दिया, "मुझे तो वैदिक ज्ञान की गगा को जनसाधारण तक पहुँचाने मे ही वास्तविक आनन्द की अनुभूति होती है।" वस्तुत इसी वाक्य मे उन्होने अपने जीवन का उद्देश्य स्पष्ट कर दिया था।

काकोड़ा के मेले मे

शहबाजपुर मे कुछ दिन वैदिकधर्म का नाद गुँजाने के उपरान्त स्वामी दयानन्द कादरगज, नरदौली आदि मे धर्म प्रचार करते हुए कार्तिक शुक्ला १३ सवत् १९२५ (२९ अक्तूबर, १८६८) को काकोड़ा के सुप्रसिद्ध गगा स्नान मेले में जा पहुँचे। प० प्राणनाथ भी आपके साथ थे। यहाँ २४ घटे तक इन दोनो को निराहार ही रहना पडा, क्योकि स्वामी दयानन्द किसी से मिल न सकते थे। अगले दिन सोरो से श्री बलदेवगिरि, प० अगदराम और कतिपय अन्य ऋषि भक्त भी मेले मे आ गये और अपने साथ पर्याप्त मात्रा मे खाद्य सामग्री भी लेते आए। श्री बलदेव गिरि ने कनात तान कर महर्षि केलिए आसन लगा दिया। डिप्टी कलेक्टर रायबहादुर बालमुकुन्द भी मेले मे घूमते घूमते उस स्थान पर जा पहुँचे। उस समय सहस्रो लोगो की उपस्थिति मे महर्षि दयानन्द का एक युरोपियन पादरी से शास्त्रार्थ हो रहा था। इस शास्त्रार्थ मे एक भारतीय ईसाई दुभाषिए की भूमिका निभा रहा था। उन्होने देखा कि पादरी सर्वथा असगत प्रश्न पूछ रहा है, किन्तु स्वामी जी उसका भी शान्त भाव से सुसगत उत्तर दे रहे है।

यही बरेली से पधारे प० उमादत्त तथा कई अन्य पडितो ने भी स्वामी जी से मूर्तिपूजा पर बहस की किन्तु कुछ ही क्षणो मे वे सब निरुत्तर हो गए। जब उन्होने अन्य कोई दाव चलते न देखा तो बोले, "महाराज! एकलव्य ने भी द्रोणाचार्य की मूर्ति बनाकर ही उनकी पूजा की थी।" स्वामी जी ने उनके इस प्रश्न के उत्तर मे कहा कि एक अज्ञानी भील का कार्य प्रमाण नही माना जा सकता! प० पूर्णदत्त ने गीता के कुछ श्लोक उद्धृत किए। स्वामी जी ने उनकी भी समुचित व्याख्या कर उपस्थित सैकडो श्रोताओ को सतुष्ट कर दिया। कतिपय ईसाई पादरी और मुसलमान मौलवी भी स्वामी जी से शास्त्रार्थ करने के लिए वहाँ आए, किन्तु वे सब भी स्वामी जी के अकाट्य तर्कों के समक्ष "मौन सम्मति लक्षणम्" की उक्ति चरितार्थ कर और अपनी आकांक्षाओ को धूलि धूसरित कराकर वहाँ से लौटे।

कायमगंज प्रवास

काकोडा मेले की समाप्ति पर स्वामी जी ने श्री बलदेवगिरि आदि को विदाई दी और काकोडा से प्रस्थान कर मार्गशीर्ष सवत् १९२५ (९ नवम्बर, १८६८) को नारदोली होते हुए कायमगज पहुँचे। वहाँ आप श्री हरिशकर पांडे के शिवालय मे ठहरे। उन दिनो स्वामी जी के पास केवल एक लगोट था। अत: देवालय मे आने वाले लोगो के कारण स्नान आदि के समय उन्हें काफी असुविधा सहन करनी पडती थी। अतएव आप सन्ध्या और भोजन हेतु अन्यत्र जाया करते थे। आप कायमगज मे लगभग २० दिन ठहरे। वहाँ आप का शास्त्रार्थ तो नहीं हुआ, किन्तु अनेको पौराणिको ने उनसे विचार विमर्श कर अपनी शकाओ का समाधान किया। एक दिन कुछ सज्जन स्वामी जी के ठहरने के स्थान पर आए और इधर उधर उच्च स्थानो पर बैठ गए। कई ऋषि भक्तो ने इन लोगो के इस व्यवहार पर बुरा भी मनाया। किन्तु उन की शका का समाधान करते हुए स्वामी जी ने उन्हें बताया कि किसी के ऊचे स्थान पर आ बैठने से दूसरा नीचा नही हो जाता। यदि वरिष्ठता का यही मापदड माना जाए तो फिर वृक्षो की शाखाओ पर बैठने वाले पक्षी ही मनुष्य से अधिक श्रेष्ठ माने जायेगे। पादरियो को आपने समझाया कि कोई भी किसी को पापो से मुक्ति दिलाने मे सफल नही हो सकता। यही मुर्शिदाबाद के अनेक मुस्लिम बन्धुओ ने भी स्वामी दयानन्द से बहस की और निरुत्तर होकर लौट आए।

पुनः फर्रुखाबाद आगमन

तदुपरांत स्वामी जी काम्पिल होते हुए शकरुल्लापुर (जिला फर्रुखाबाद) पहुँचे। वहां आपने प० चोखेलाल के उद्यान मे आसन लगाया। यहा महाभारत के शातिपर्व पर उनके कई व्याख्यान हुए। शकरुल्लापुर से प्रस्थान कर आप पौष सवत् १९२५ को फर्रुखाबाद पहुँचे और वहा सेठ जगन्नाथ के विश्रामघाट पर आसन लगाया। जब देव दयानन्द पहली बार फर्रुखाबाद पधारे तभी सेठ जगन्नाथ स्वामी जी के भक्त बन गए थे। उन्होने तभी से अपने परिवार मे स्वामी जी की शिक्षाओ के अनुसार सभी सस्कार आरम्भ कर दिये थे। सेठ जगन्नाथ के यहा पुत्र ने जन्म लिया तो स्वामी जी ने ही उसका नामकरण किया। उसका नाम पुरुषोत्तम नारायण रखा गया।

स्वामी जी की शय्या के लिए सेठ जगन्नाथ ने पियार की व्यवस्था कर दी थी। यही उनका ओढना भी और बिछौना भी। था सेठ जी के अनेक बार के आग्रह पर भी स्वामी जी ने कम्बल का उपयोग करना स्वीकार न किया।

स्वामी जी के उपदेशो और प्रवचनो का कार्यक्रम चल रहा था और प्रति दिन सैकडो व्यक्ति उनकी अमृतवाणी से अपने मानस पटल पर पड़े अध-

विश्वासो के सघन घनो से मुक्ति प्राप्त कर वास्तविक ज्ञान की प्राप्ति कर नवीन प्रकाश पा रहे थे। अनको ने मूर्तिपूजा का परित्याग कर महर्षि दयानन्द के हाथो यज्ञोपवीत धारण किए थे।

'साध' का भोजन

फर्रुखाबाद मे कुछ लोग हैं, जिन्हें स्थानीय निवासी 'साध' कहते हैं। वे सभी काम धधा कर जीवन निर्वाह करते थे, और पारिवारिक जीवन व्यतीत करते थे। उनके हाथ का भोजन, ब्राह्मण और वैश्य नहीं किया करते थे। एक दिन इसी वर्ग के सुखवासी लाल नामक सज्जन अपने घर से चावल और दाल लेकर स्वामी जी की सेवा में उपस्थित हुए। स्वामी जी ने सप्रेम इसे ग्रहण कर लिया। कतिपय ब्राह्मणो ने स्वामी दयानन्द से प्रश्न किया कि आप ने साध के घर का भोजन ग्रहण कर अनर्थ कर दिया है। स्वामी जी ने मुस्कराते हुए उन्हे उत्तर दिया, "बन्धुओ ! अन्न तो केवल दो स्थितियो में ही दूषित होता है, एक तो तब जब वह किसी को सता कर प्राप्त किया जाए अथवा तब जब कोई मलिन वस्तु उसमे पड जाए। साध परिवार का अन्न तो उनके परिश्रम से अर्जित धन का है और पवित्र है। अत. उसे ग्रहण करने मे तो किसी प्रकार के दोष की कल्पना करना गलत है।"

कुछ और प्रसंग

यही एक दिन तृतीय प्रहर बीता। कुछ मुसलमान बन्धु महर्षि के पास आए। उन्होने स्वामी जी से प्रश्न किया "महाराज ! आपके विचार मे परमात्मा ने ही हमारे लिए हजरत मुहम्मद को भेजा था कि नहीं ? स्वामी जी जहा किसी की भी आलोचना करन मे सकोच न बरतते थे, वहा वह यह भी नही चाहते थे कि किसी की भावनाओ को व्यर्थ मे ही ठेस लगे। अतएव उन्होने उत्तर देने से पूर्व तीन बार पूछा कि 'बन्धुओ ! हमारे उत्तर से आप को बुरा तो नही लगेगा ?" जब वे बोले कि "नही महात्मा जी !" तब स्वामी जी ने कहा कि "मेरा तो ऐसा विचार नही है। मेरे विचार मे आप लोगो ने उनका अनुकरण कर अच्छा नही किया। जब शिखा को साफ कर दिया तो फिर किसी का अधानुकरण कर लम्बी दाढ़ी रखने से ही क्या लाभ है ?"

यही कतिपय ब्राह्मणो ने स्वामी जी से शास्त्रार्थ कराने के लिए मेरठ से श्री हरिगोपाल शास्त्री को आमन्त्रित किया। शास्त्रार्थ का क्रम आरम्भ हुआ तो प० जी ने "देवताभ्यर्चनं चैव समिधादानमेव च।" यह श्लोक उच्चारा और देवता शब्द का अर्थ बताया प्रतिमा। किन्तु स्वामीजी तो ऐसी स्थितियो का अनेक बार सामना कर चुके थे, अतः उन्होने युक्तियों एव प्रमाणो से यह सिद्ध कर दिखाया कि इस श्लोक मे देवार्चन का तात्पर्य है अग्निहोत्र एव

अतिथि सत्कार । तदुपरान्त वे कुछ देर तक ठहरे किन्तु अन्तत उन्होने वहाँ से चले जाना ही श्रेयस्कर समझा ।

इस पराजय के शूल की वेदना से मर्माहत श्री हरिगोपाल जी ब्राह्मणो के गढ काशी मे पहुँचे और वहा से मूतिपूजा की पुष्टि मे कतिपय वरिष्ठ पडितों की व्यवस्था प्राप्त कर फरूखाबाद पहुँचे । उन्होने वहा स्वामी जी के ठहरने के स्थान के समीप ही एक खुले मैदान मे अपना ध्वज गाड दिया । वे काशी के पडितो से मूर्तिपूजा के पक्ष मे जो व्यवस्था लिखाकर लाए थे, उसका उन्होने अपनी पूर्ण शक्ति सहित कोलाहल करना आरम्भ कर दिया । स्वामी जी द्वारा पुन शास्त्रार्थ की चुनौती दिए जाने पर भी वह स्वामीजी के समक्ष आने का साहस न सजो पाए । हाँ, महर्षि के निवास स्थान के नीचे गुल-गपाडा करने का क्रम जारी रहा । अन्तत. पुलिस के हस्तक्षेप पर ही श्री हरि-गोपाल शास्त्री ने अपना डण्डा और झण्डा वहा से उठाया ।

ओछे हथकण्डे मुँहतोड़ उत्तर

उद्दण्डता का यह क्रम समाप्त नही हुआ था । दो-तीन दिन हीं बीते थे कि श्री हरिगोपाल जी का एक साथी ज्वालाप्रसाद मदिरा मे झूमता हुआ स्वामी जी के निवास स्थान पर पहुँचा और अभद्र शब्दो की बौछार करने लगा । जब समझाने बुझाने पर भी उसने अपनी वाणी पर लगाम न लगाया तो लोगो ने 'शठे शाठ्य समाचरेत्' के सिद्धान्त का अनुगमन किया और और उस उद्दण्ड व्यक्ति की यथायोग्य 'सेवा' कर दी ।

इन्ही ज्वालाप्रसाद के एक सम्बन्धी ठाकुरदास ने भी एक दिन २०-२५ व्यक्तियो को साथ लेकर स्वामी जी की हत्या की योजना बनाई । किन्तु स्वामी जी की प्रबल सामर्थ्य के समक्ष उन्होने पलायन कर जाने मे ही अपनी कुशलता समझी ।

इन सब उद्दण्डताओ की जानकारी मिलते ही लाला जगन्नाथ ने महाराज की सेवा मे उपस्थित होकर उनसे अनुरोध किया कि "आपके प्राण लेने के बार-बार प्रयास हो रहे हैं, स्वामी जी ! अत आप इस स्थान को छोडकर हमारे घर पर चलकर ठहरिए ।" किन्तु परम पिता परमात्मा मे अडिग और अटूट आस्था रखने वाले देव दयानन्द ने उन्हे उत्तर दिया "यहा इस उपाय का अवलम्बन कर आप मेरी रक्षा कर लेंगे । किन्तु अन्यत्र कौन करेगा ? मेरे रक्षक तो वही परम-पिता परमात्मा है । अतएव मैं सर्वथा निर्भय और निश्चित हूँ ।"

एक दिन विश्रांति स्थान मे स्वामी दयानन्द के उपदेश का क्रम चल रहा था । सैकडो जिज्ञासु जन वहाँ महर्षि की मधुर वाणी से नि सृत ज्ञान की गगा

मे स्नान कर रहे थे। उसी समय एक मूर्तिपूजक ब्राह्मण ने उठकर मूर्तिपूजा सम्बन्धी कतिपय प्रश्न करने आरम्भ कर दिए। स्वामी जी उसके प्रश्नो का सन्तोषजनक उत्तर दे रहे थे। सभी श्रोतागण इस प्रश्नोत्तर का पूर्ण मनोयोग सहित श्रवण कर रहे थे। उसी समय एक काड घटित हुआ। एक काली उपासक मद्योन्मत्त ब्राह्मण ने गाली गलौज करते हुए स्वामी जी पर जूता फेंक दिया। वह जूता स्वामी जी तक न पहुँच पाया। बीच मे ही गिर पडा। सत्सग मे उपस्थित कतिपय सतनामी साधु इस दुर्व्यवहार पर विक्षुब्ध हो उठे। उन्होंने तुरन्त ही उसे पकड लिया और उसकी मुरम्मत करने लगे। दया की जीवित जागृत मूर्ति स्वामी जी की करुणा उमड पडी और उन्होंने इन साधुओ को उसे छोड देने का निर्देश देते हुए कहा "इसके कृत्य से मुझे कोई कष्ट नही हुआ। यदि इसके द्वारा फेंका हुआ जूता मुझे लग भी जाता तो यह कौन-सा रामबाण था। फिर इसने जो अभद्रता की है वह अज्ञान एव सुरा की मादकता के वशीभूत होकर की है।" साधुओ ने महर्षि के निर्देश का पालन करते हुए उसे छोड दिया।

दुष्ट का भी हृदय परिवर्तन

इस नराधम को जो दण्ड मिला था, उसके कारण वह और भी खीझ उठा। वह ताक मे रहा। एक दिन समय पाकर वह स्वामी जी के स्थान मे प्रविष्ट हो गया। स्वामी जी उस समय अकेले ही थे। उन्होने एक हृष्ट-पुष्ट लट्ठधारी व्यक्ति को झूमते हुए अपनी ओर आते देखा। वह जब महर्षि के समीप आया तो उनके मुखमण्डल का तेज उसे प्रभावित किए बिना न रह सका, अतएव उसने स्वामी जी से अन्य किसी प्रकार का अभद्र व्यवहार न करते हुए प्रश्न किया "बाबा जी! क्या तुम मूर्ति को परमेश्वर नहीं मानते?" स्वामी जी ने शान्त भाव से कहा "भाई! तुम्हे पता है कि प्रभु का स्वरूप क्या है?" उत्तर मे उसने कहा "हाँ बाबा! मैं जानता हूँ। वह सर्वशक्तिमान्, भक्तवत्सल, सच्चिदानन्द स्वरूप एव सर्वाधार है।

महर्षि तनिक मुस्कराए और वोले " भद्रजन! ईश्वर के जो गुण तुमने बताए है, वे सब सत्य हैं। तुम्हारी इस समझ की मै प्रशसा करता हूँ। किन्तु अब तुम्ही मुझे बताओ कि जिन ईश्वरीय गुणो का तुमने उल्लेख किया है, क्या मदिरो मे प्रतिष्ठित प्रतिमाओ मे ये गुण उपलब्ध है? यदि वे हो तो फिर मै सहर्ष तुम्हारा सहयोगी वन जाऊगा और यदि ऐसा न हो तो तुम्हें भी अपनी आत्मा की वाणी को ही सत्य समझना चाहिए।"

महर्षि के इन अमृतमय वचनो ने उसकी उद्दण्डता और भ्रम के आवरण को तारतार कर सत्य का साक्षात्कार करा दिया था। अत उसने अपने

हाथ मे पकडा लट्ठ दूर फेंक कर महर्षि के चरणो को स्पर्श किया और दोषो से मुक्त होकर सदाचारी बनने का सत्सकल्प ग्रहण कर लिया।

हलधर भी हारे

श्री हरिगोपाल शास्त्री की पराजय का शूल अनेको मूर्ति पूजक बन्धुओ के हृदय को कचोट रहा था। अतएव उनमे से प्रमुख लाला प्रेमदास आदि ने कानपुर के एक तान्त्रिक पडित श्री हलधर को स्वामी जी से शास्त्रार्थ हेतु आमन्त्रित किया। युग को चुनौती देने वाले महान् सन्यासी दयानन्द को किसी तान्त्रिक विद्वान् से शास्त्रार्थ के क्षेत्र मे किसी प्रकार का सकोच होने का तो प्रश्न ही उपस्थित नही होता था। अतएव उन्होने प० हलधर की चुनौती सहर्ष स्वीकार की। शास्त्रार्थ का क्रम आरम्भ हुआ। श्री हलधर ने यज्ञ मे मदिरा पान के प्रमाण मे "सौत्रामण्यां सुरां पिबेत्" इस "वेदमत्र" को उद्धृत किया। स्वामी जी ने उनकी मान्यता मे दोष प्रदर्शित करते हुए बताया कि "यहाँ सुरा शब्द से तात्पर्य है सोमरस।"

स्वामी जी से शास्त्रार्थ की इस शृखला मे बात 'समर्थ' शब्द के अर्थ तक जा पहुँची। रात के एक बजे तक यह वाद विवाद चलता रहा। अन्त मे तान्त्रिक महोदय का साहस भी उनका साथ छोडने लगा और उठते उठते यह निश्चय हुआ कि समर्थ पद विधि. सूत्र यदि सर्वत्र लग जायगा तो स्वामी जी की विजय मानी जायगी और यदि वह एक ही स्थान पर लगे तो प० हलधर विजयी घोषित होगे। दूसरे दिन जब शास्त्राथ का क्रम पुन आरम्भ हुआ तो स्वामी जी ने उपरोक्त सूत्र को सर्वत्र लगाकर दिखाया। तदुपरात पडित समुदाय ने हलधर को पराजित घोषित कर दिया।

इस व्यवस्थावचन पर हलधर तिलमिला उठे। प्रत्यक्षदर्शियो के अनुसार वे अपने इस मान मर्दन से इतने हताश हुए कि मूर्छित से होने लगे और लोगो ने उन्हें सहारा देकर सभाला एव अन्यत्र पहुँचाया।

कुपथगामी को दिशादान

स्वामी जी के परम श्रद्धालुओ मे से ही एक थे सेठ पन्नालाल। उनकी प्रेरणा पर स्वामी जी ने एक सुसम्पन्न परिवार के वेश्यागामी युवक को कुपथ से हटाकर सुपथ पर लगाया। इस कामभक्त युवक को सुपथ पर चलने की प्रेरणा स्वामी जी द्वारा दिए गए इस दृष्टान्त से मिली कि " यदि किसी वेश्यागामी के ससर्ग से किसी वेश्या के यहाँ पुत्री उत्पन्न होती है तो वह उस व्यक्ति की ही सतान होती है। फिर वह बालिका भी वेश्यालय मे पाले पोसे जाने के उपरात यौवन को प्राप्त करती है तो वेश्यावृत्ति ही उसके भी जीवन यापन का आधार बनती है। इस प्रकार उसे वह कुदिन भी अपने जीवन

मे ही देखना पडता है, जब उस की पुत्री चकले मे बैठती है अथवा द्वार द्वार पर नृत्य करती है ।"

इस दृष्टांत ने युवक की सुप्त आत्मा को जाग्रत कर उसको रोमाचित्त कर दिया। आज उसने सत्य का साक्षात्कार कर लिया था। उसने महर्षि के श्री चरणो का स्पर्श कर वेश्याओ के सपर्क से सदैव के लिए मुक्त होने का सकल्प ग्रहण कर लिया और उसके जीवन को नवीन दिशा मिल गयी ।

शिवालय (शिवाला) नहीं पाठशाला

फर्रूखाबाद मे ला० वशीलाल ने एक शिवालय की स्थापना का सकल्प ग्रहण किया था। किन्तु स्वामी दयानन्द के सदुपदेशो के परिणाम स्वरूप उन्होने शिवाला के स्थान पर पाठशाला की स्थापना की। इसमे प्रविष्ट हुए लगभग ५० छात्रो को स्वामी जी की प्रेरणा पर अष्टाध्यायी का अध्ययन कराया जाने लगा। स्वामी जी की पाठशाला की स्थापना सबन्धी चिरसचित अभिलाषा भी पूर्ण हो गई। इस पाठशाला के छात्रो के वस्त्रो एव भोजन तथा इसमे नियुक्त शिक्षक श्री ब्रजकिशोर के वेतन आदि का भार क्रमश महाशय दुर्गादास एव श्री पन्नालाल ने वहन किया। यही स्वामी जी ने जर्मनी से वेद मगाए ।

आदित्य ब्रह्मचारी का बल

स्वामी जी की कीर्ति पताका, उनके प्रकाण्ड पाडित्य और वैदिक ज्ञान की प्रशसा चतुर्दिक् व्याप्त होती जा रही थी। कतिपय पहलवान युवक भी स्वामी जी के बल की चर्चा सुनकर उनके दर्शनार्थ पहुँचे। स्वामी जी उसी समय गगा स्नान करके वापस लौटे थे। उन पहलवानो मे से एक ने अहकार की मुद्रा मे कह दिया "यदि स्वामी जी व्यायाम करना आरम्भ कर दें तो फिर किसी के हिलाए भी न हिल पाएगे।" स्वामी जी ने उसके दभ का अनुमान लगा लिया। उन्होने अपना कौपीन निचोडा और उन पहलवानो को सम्बोधित करते हुए बोले "यदि आप मे से कोई भी अब इस कौपीन को निचोड कर एक बूद भी जल निकाल कर दिखा दे तो मैं समझ लूगा कि वह वास्तव मे मल्ल है।" उन सब ने बारी बारी से अपना पूर्ण बल लगाया, किन्तु जल की एक बूद भी कौपीन से न छलक पाई। फिर स्वामी जी ने उसी कौपीन को निचोडा तो उसमे से कई जल कण छिटक कर धरती पर गिरे। वे सभी पहलवान स्तब्ध थे, क्योकि आदित्य ब्रह्मचारी दयानन्द के समक्ष उनके पहलवानी का अहकार मिट गया था ।

स्वामी जी द्वारा प्रवाहित नई वैदिक ज्ञान की गगा मे अवगाहन कर ऐसे अनेक युवक भी स्वधर्म को त्याग कर विधर्मी होने से बच गए थे, जो वैदिक

धर्म की गगा को त्याग कर ईसाइयत के सरोवर मे डुबकी लगाने को आतुर हो उठे थे ।

मनोरजक शास्त्रार्थ

यहाँ से प्रस्थान कर जून १८६६ मे स्वामी जी शृगीरामपुर पहुँचे और कुछ दिन वहाँ ठहरकर जलालाबाद पधारे । वे एक दिन वहाँ श्री गयाप्रसाद शुक्ल के अनुरोध पर श्री मरनदास उदासी की कुटिया मे ठहरे और अगले दिन कन्नौज जाकर आसन लगाया । कल-कल निनादिनी कालिन्दी के तट पर स्थित गौरीशकर महादेव का चबूतरा ही महर्षि का स्थान बन गया । यहाँ स्वामी जी एव एक श्रेष्ठ वैयाकरण व कन्नौज की विद्वन्मडली मे अग्रगण्य प० हरिशकर जी से स्वामी जी का मनोरजक शास्त्रार्थ हुआ । पडित जी ने 'वेद स्मृति सदाचार:' मनु स्मृति के इस श्लोक को उद्धृत कर मूर्ति पूजा को सदाचार निश्चित किया । पडित जी ने कहा कि महाराज, मनु ने कहा है कि राजा प्रतिमाओ की रक्षा करें । स्वामी दयानण्द ने उनके इस तर्क का उत्तर देते हुए कहा कि प्रतिमाओ से मनु का तात्पर्य नाप तोल के बाटो से है । इस पर पडित जी ने यह तर्क प्रस्तुत किया कि पूर्व मीमासा मे ऐसा ही उल्लेख है और यदि वहाँ ऐसा न बताया गया हो तो मैं शिखा सूत्र का परित्याग कर सन्यासी हो जाऊगा । उस दिन चर्चा यही समाप्त हो गई । बाद मे अपने निवास स्थान पर वापस लौटकर जब पडित जी ने पूर्व मीमासा का पारायण किया तो उससे उन्हे स्वामी जी के मत की ही पुष्टि होती हुई लगी । प० हरिशकर सच्चे ब्राह्मण थे । अतएव उन्होने अगले दिन स्वामी जी के श्रीचरणो मे उपस्थित होकर अपनी भूल स्वीकार कर ली और बोले "भगवन् ! मै पराजित हो गया, मुझे सन्यास की दीक्षा दे दीजिए ।" स्वामी जी बोले ' बन्धु ! सन्यास तो ज्ञान से होता है । जय पराजय की प्रतिज्ञा पर सन्यासी बनना उचित नही । " स्वामी जी ने मुक्त कठ से पडित हरिशकर की प्रशसा करते हुए कहा, ' पडित हरिशकर प्राचीन काल के आदर्श ब्राह्मणो के ही तुल्य हैं ।" उस दिन हरिशकर भी महर्षि दयानन्द अनुगामी बन गए ।

यही स्वामी जी ने प० गयादीन को भी सच्चे धर्म का बोध कराया और कायस्थो के सम्बन्ध मे अपना यह मन्तव्य भी स्पष्ट किया कि वे शूद्र नही, अपितु, चित्रगुप्त के वशज होने के कारण वैश्य हो सकते हैं ।

कन्नौज मे एक सप्ताह तक वैदिक ज्ञान की अजस्र धारा प्रवाहित करन के उपरात स्वामी जी मदनपुर होते हुए सुप्रसिद्ध नगरी कानपुर जा विराजे ।

कानपुर मे महर्षि का सत्य धर्म प्रचार

वर्षा ऋतु का प्रारम्भ था । कानपुर मे देव दयानन्द का शुभागमन हुआ ।

वे वहाँ भैरव मंदिर के समीप स्थित ला० दरगाहीलाल वकील के घर पर ठहरे। यहां उनका आतिथ्य प्राय. प० हृदय नारायण नितात श्रद्धा सहित करते थे। स्वामी जी के शुभागमन का सुसमाचार प्राप्त होते ही जहाँ सैकडो जिज्ञासु जनो के हृदय प्रफुल्लित हो उठे, वहाँ अनेको ऐसे भी थे जो खिन्न हो गए। यहाँ स्वामी जी ने एक विज्ञप्ति प्रसारित कराई, जिसमे जनता से आठ गप्पो को त्याग कर आठ सत्यो को ग्रहण करने का आह्वान किया। इस विज्ञप्ति मे जिन आठ गप्पो का उल्लेख था, उनकी चर्चा हो चुकी है। उन्होने जिन आठ सत्यो को अपनाने पर जोर दिया है वे हैं -

(१) 'ईश्वर कृत ऋग्वेदादि चार वेद एव ऋषिकृत अन्य २१ ग्रन्थ'

(२) ब्रह्मचर्य आश्रम मे रहते हुए गुरु सेवा एव स्वधर्मानुष्ठान पूर्वक वेदो का अध्ययन,

(३) वेदोक्त वर्णाश्रम धर्म तथा सध्यावन्दन, अग्निहोत्र आदि कर्म करना,

(४) धर्म शास्त्रो मे वर्णित नियमानुसार गृहस्थ धर्म का पालन करना,

(५) शम, दम, तपश्चरण, दम आदि से समाधि पर्यन्त उपासना व सत्सगपूर्वक वानप्रस्थाश्रम अनुष्ठान,

(६) विचार, विवेक, वैराग्य, परम विद्या, अभ्यास तथा सन्यास ग्रहण कर सकल कर्मों की फलेच्छा का त्याग,

(७) जन्म, मरण, सुख, दु ख, लोभ, मोह तथा सग दोष के परित्याग का अनुष्ठान एव

(८) अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश सम क्लेशो से और तमोरजस् सत्त्व गुणो से निवृत्ति प्राप्त कर पच महाभूतो के प्रतीक मोक्ष एव स्वराज्य की प्राप्ति।

स्वामी जी की इस विज्ञप्ति के जनसाधारण मे प्रसारित होने से श्रद्धालु जनो मे उत्साह और प्रसन्नता की लहर दौडी तो ईर्ष्यालु जन आवेश मे आकर विवेक भी खो बठे। उनका नेतृत्व कर रहे थे श्री ब्रह्मानन्द सरस्वती। उन्होने स्वामी जी के सम्बन्ध मे जनता को भ्रमित करने हेतु उनके विरुद्ध नास्तिक व छद्मवेषी ईसाई होने तक का सर्वथा निराधार प्रचार आरम्भ कर दिया। ब्रह्मानन्द जी को नगर के दो प्रतिष्ठित व्यक्तियो श्री प्रयागनारायण एव श्री गुरुप्रसाद का भी सहयोग प्राप्त हो गया। इनके द्वारा स्वामी जी के विरोध मे जुटने का एक प्रमुख कारण बना 'कैलाश' और बैकु ठ नामक दो मन्दिरो का निर्माण, क्योकि जब ये दोनो स्वामी जी से मिले थे तो स्वामी जी ने इनसे स्पष्ट शब्दो मे कह दिया कि " ई ट पत्थरो पर लाखो रुपए का व्यय करके उन्हे नष्ट कर दिया। इससे तो अच्छा यह होता कि आप इस धन

को किसी कल कारखाने की स्थापना कर स्वदेश के कल्याण मे सहयोगी बनते अथवा कान्यकुब्ज परिवारो मे ३०-३० वर्ष की आयु हो जाने पर भी कुँआरी बैठी कन्याओ का विवाह करा देते।"

स्वामी जी के उपरोक्त कथन से जहाँ समाज की दुरवस्था पर उनके मन मे उभरी टीस प्रकट होती है, वहा उससे स्वदेश को औद्योगिक दृष्टि से सुदृढ अधिष्ठान प्रदान करने की उनकी आकाक्षा की भी अभिव्यक्ति हो जाती है।

उपरोक्त दोनो श्रीमतो को गाठ कर स्वामी ब्रह्मानन्द जी ने स्वय स्वामी जी से शास्त्रार्थ करने का साहस न सजोते हुए श्री हलधर और श्री लक्ष्मण शास्त्री को शास्त्रार्थ के लिए तैयार कराया।

ऐतिहासिक शास्त्रार्थ

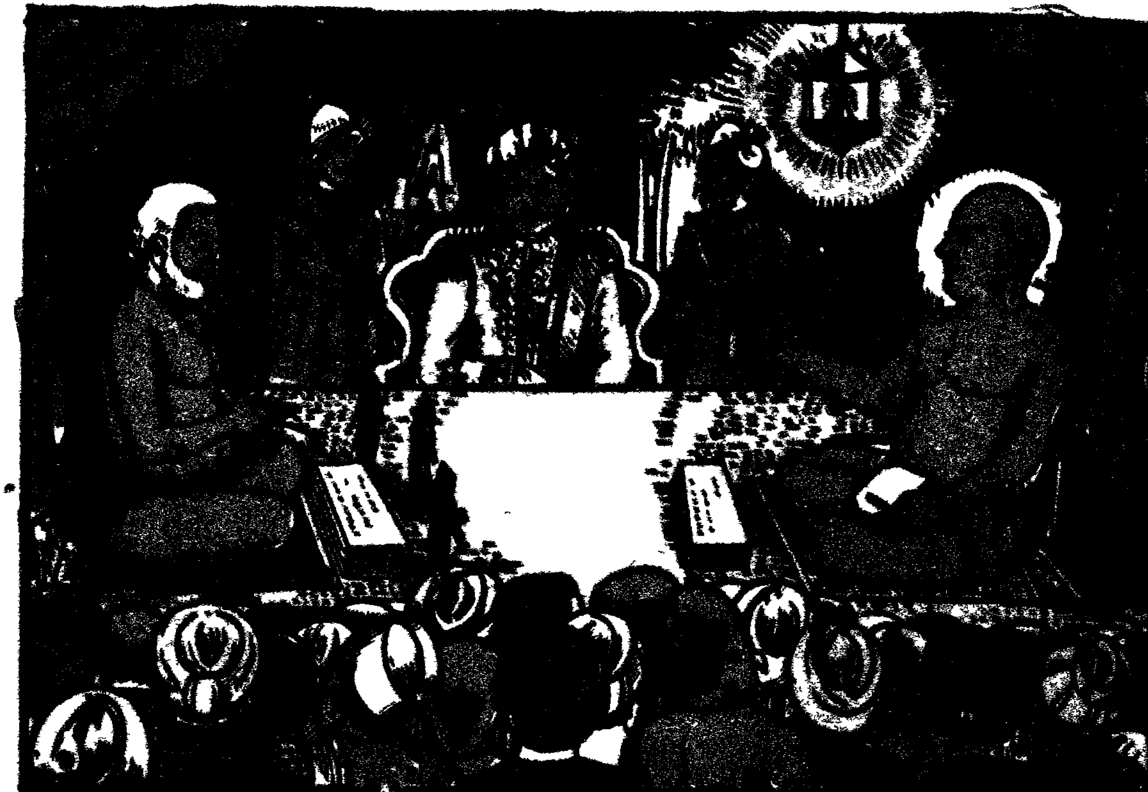
३१ जुलाई १८६९ ई० को यह ऐतिहासिक शास्त्रार्थ निश्चित हुआ। इसमे मध्यस्थ नियुक्त हुए सहायक कलेक्टर श्री थेन। भैरव घाट पर दरियाँ बिछ गई। नगर के धनी और निर्धन पडित और श्रमिक, सभी वर्गों के सहस्रो व्यक्ति वहाँ जुटने लगे। एक विशाल मेला-सा लग गया। उस समय के प्रत्यक्षदर्शियो के अनुमान के अनुसार २०-२५ सहस्र का जनसमुदाय एकत्रित हो गया। ठीक सायकाल ४॥ बजे शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ। हलधर जी ने प्रश्न किया "स्वामी जी, आप महाभारत को मानते हैं या नहीं स्वामी जी ने "हाँ" मे उत्तर दिया। इस पर श्री ओझा ने एक श्लोक पढा, जिसका अर्थ यह है कि एकलव्य ने गुरु द्रोणाचार्य की मूर्ति समक्ष रखकर धनुर्विद्या सीखी थी। इस पर स्वामी जी ने कहा कि जिस श्लोक को उद्धृत किया गया है, उससे भी प्रतिमा पूजन के वेद शास्त्रोक्त होने का कोई प्रमाण नही मिलता। इसका तात्पर्य तो केवल इतना ही है कि एक भील ने प्रतिमा का पूजन किया था। वह कोई ऋषि मुनि न था कि उसका कर्म प्रमाण माना जाए। उसके धनुर्वेद मे पारगत होने का कारण द्रोण प्रतिमा नही, अपितु उसका सतत अभ्यास ही था।"

श्री ओझा इस उत्तर को सुनकर असमजस मे पड गए। उनकी तर्क-शक्ति जवाब देने लगी। किन्तु कुछ क्षणो मे ही उन्होने स्वय को सभाला और बोले "स्वामी जी, मान लिया कि वेद मे मूर्ति पूजा का निर्देश नही, किन्तु निषेध भी तो कही नही है।" स्वामी जी बोले "पडित जी, जब कोई स्वामी अपने शिष्य को पश्चिम की ओर जाने का निर्देश देता है, उसमे अन्य दिशाओं की ओर जाने का निषेध तो स्वत समाहित होता है। आप यह स्वीकार करते हैं या नही ?"

इस तर्क-सगत उत्तर को सुनकर ओझा जी निरुत्तर हो गए। अब बारी



अनूपशहर में जब उन्हें विष दिया गया और स्वामीजी के भक्त तहसीलदार ने अपराधी को पकड़ स्वामीजी के सम्मुख उपस्थित किया तब स्वामीजी ने कहा—छोड़ दो इसे, मैं संसार को कैद कराने नहीं कैद से छुड़ाने आया हूं ।



आई श्री लक्ष्मण शास्त्री की । उन्होने कहा कि ईश्वर सर्व व्यापक है अतएव मूर्ति में भी तो वह विद्यमान है ?" उत्तर में स्वामी जी ने कहा "जब ईश्वर सर्व व्यापक है तो फिर मूर्ति मे ही ऐसी कौन-सी विशेषता है कि उसका पूजन किया जाए ? और चेतन को छोडकर जड की पूजा मे कौन-सा महत्त्व निहित है, यह तो बता दीजिए ?" अब सभी प्रतिपक्षी अवाक रह गए । श्री थेन ने भी प० हलधर से कुछ प्रश्न किए और तदुपरात, स्वामी जी से कुछ देर तक वार्तालाप करने के बाद वह उठकर चल दिए ।

मध्यस्थ उठ गए तो इस विशाल जन मेदिनी मे भी एक भूकम्प-सा आ गया । उसी अव्यवस्था मे कुछ विपक्षियो ने अपनी पराजय की खीझ मिटाने के लिये स्वामी जी पर पथराव भी किया । हार की कालिमा को मिटाने के प्रयास मे श्री प्रयागनारायण तिवारी ने एक रुपए के पैसे हलधर के सिर पर से वारकर लुटा दिए और जोर जोर से चीख कर घोषणा करने लगे कि पडित हलधर जीत गए हैं ।" तभी उनके टोले ने "गगा मैया की जय" और "प० हलधर की जय' के घोष भी गुजा दिए । यह क्रम यही समाप्त नही हुआ, अपितु एक बडी भीड ने नारे लगाते हुए नगर मे भी कोलाहल किया और आत्मा-प्रवचना की पराकाष्ठा यह कि 'शोलाए तूर" नामक स्थानीय समाचार पत्र मे भी हलधर की विजय का समाचार प्रकाशित करा दिया ।

तदुपरान्त स्वामी दयानन्द के कतिपय भक्त सहायक कलेक्टर श्री थेन के पास पहुचे और उन्होने शोलाए तूर' मे प्रकाशित समाचार उन्हे सुनाया । उन्होने तत्काल ही निम्नलिखित शब्दो मे अपना निर्णय लिखित रूप मे जन-साधारण के समक्ष प्रस्तुत करने के लिये दे दिया —

Gentlemen—At the time in question I decided in favour of Dayanand Saraswati Fakir and I believe his arguments are in accordance with the Vedas I think he won the day. If you wish it, I well give you my reasons for my decision in a few days

Cawnpore,

Yours faithfully
W Theme

भद्रजनो ! मेरी राय में उस दिन के शास्त्रार्थ मे दयानन्द सरस्वती फकीर की विजय हुई । उनकी युक्तिया वेदो के अनुकूल थी । यदि आप चाहेंगे तो मैं अपनी व्यवस्था की पुष्टि मे कुछ दिनो मे प्रमाण भी दे दूगा ।

भवन्निष्ठ
डब्लू. थेन

ऋषि भक्तो ने श्री थेन द्वाना दी गई इस व्यवस्था को पत्रक और समाचार-पत्रो के माध्यम से जन साधारण तक पहुचाया। सत्य को जान कर अनेको के चक्षुओ पर पडी भ्रम की पट्टी हट गई। सत्य के पावन प्रकाश मे उनका मानसिक तिमिर तिरोहित हो गया। एक नही अपितु अनेक जनो ने अपनी प्रतिमाओ का गगा मे विर्मजन आरम्भ कर दिया। इस क्रम का इतना विस्तार हुआ कि श्री ओझा अदि भी स्थिति की गम्भीरता से प्रभावित हुए बिना न रहे और स्वामी जी की विजय का जादू उनके सिर चढ कर उन शब्दो मे मुखारित हो उठा जो उन्होने एक विज्ञापन मे अकित किये। वह विज्ञापन निम्न लिखित था —

मूर्तियो का जल प्रवाह अनुचित है। अतएव जो लोग स्वामी दयानन्द के मत को ग्रहण करे, वे कृपया अपनी अपनी मूर्तिया 'कैलाश जी' या वकुण्ठ जी मन्दिर मे पहुचा दे। यदि उन्हे अवकाश न हो तो हमे सूचित करें। हम ही उन्हे उठवा लेगे।

(हस्ताक्षर) ओझा हलधर

निंदक भी प्रशसक बना

कानपुर के इसी प्रवास के दौरान एक गगा पूजक ब्राह्मण प्रति दिन ही स्वामी जी के स्थान से कुछ दूरी पर खडे होकर उन्हे अपशब्द कहा करता था। स्वामी जी इतने शान्त स्वभाव के थे कि उन्होने कभी उसे कुछ नही कहा। स्वामी जी के भक्त और श्रद्धालु प्रतिदिन उनकी सेवा मे पर्याप्त फल और मिष्टान्न लाते थे। एक दिन स्वामी के पास बडी मात्रा मे मिष्टान्न आदि रखा था। वह सोच ही रहे कि इसे किसे दे। तभी वह गाली देने का अभ्यस्त ब्राह्मण उधर से गुजरा। स्वामी जी ने उसे अपने पास बुलाया और बोले, तुम हर सायकाल मेरे पास आया करो। मै तुम्हे पर्याप्त भोजनादि दे दिया करूगा। छह-सात दिन तक वह हर रोज आता रहा। अन्ततः देव दयानन्द की दया का उसके मानस पटल पर भी प्रभाव पडा और वह स्वामी जी के चरणो मे गिर कर बोला 'महाराज! आपने अपनी सज्जनता से मुझ दुर्जन को जीत लिया है।' स्वामी जी उसे उठाते हुए बोले 'भैया! हमने तो तुम्हारे शब्दो को भी स्मरण रखने का प्रयास नही किया। अब तुम भी बीति ताहि बिसारि दे 'आगे की सुधि लेह'—का वाक्य हृदयगम कर लो।

द्वन्द्वातीत दयानन्द

कानपुर मे स्वामी जी के भक्तो की सख्या काफी बढ चुकी थी। प्रति

दिन श्रद्धालु जन आते और उनकी सेवा मे पर्याप्त खाद्य सामग्री आदि अर्पित कर जाते। वे उनकी सुख सुविधा के लिए अपेक्षित वस्तुए जुटाने का आग्रह करते, किन्तु स्वामी दयानन्द रात्रि मे ऊची नीची धरती पर मोटी-मोटी ईटो को ही तकिया बना कर सो जाते।

तीन चार मास तक कानपुर मे रहने के उपरान्त स्वामी जी एक दिन प्रात काल ही बिना किसी को सूचित किये लोटा और लगोटा भैरव घाट पर छोड कर वहाँ से प्रस्थान कर गये। स्वामी जी एक ही लगोट अपने पास रखते थे। कानपुर मे उन्हे एक और लगोट ला दिया गया था। परन्तु अपनी यात्रा मे दूसरा लगोट भी उन्हे भार ही लगा। अत जहा से दूसरा लगोट मिला था उसी धरती पर उसे छोड कर उन्होने कानपुर से विदा ले ली।

ब्राह्मणवाद के गढ मे जयनाद

अब स्वामी जी ने भारत मे ही नही, अपितु विश्व भर मे विख्यात पौराणिक दुर्ग काशी को सत्य सनातन वैदिक धर्म के वास्तविक रूप का दिग्दर्शन कराने और पाखण्ड खण्डिनी स्वर्ण गैरिक पताका फहराने का सत्-सकल्प ग्रहण कर लिया। यह ब्राह्मणवाद का महान् केन्द्र था।

वाराणसी को हिन्दू जगत् मे अनुपम स्थान प्राप्त है। विश्व मे शायद ही किसी नगर को धर्म और सस्कृति के प्रमुख केन्द्र के रूप मे इतनी ख्याति प्राप्त हुई हो, जितनी इस महानगरी को प्राप्त हो रही है। श्रद्धा की दृष्टि से इटली मे स्थित पोप की निवासस्थली रोम को ही किसी सीमा तक इसके समकक्ष कहा जा सकता है। किन्तु रोम को इतिहास मे राजनैतिक दृष्टि से ही अधिक महत्त्व प्राप्त होता रहा है। वाराणसी की तो गरिमा ही निराली है। धर्म और शास्त्र का प्रत्येक छात्र इस नगरी को प्रेरणाप्रद मानता रहा तो प्रत्येक आध्यात्मिक, सामाजिक व धार्मिक सुधारक की काशी विजय एक चिरतन कामना रही है। अतएव स्वामी दयानन्द ने भी काशी विजय का सकल्प अपने हृदय मे सजोया।

आश्विन शुक्ल पक्ष सवत् १९२६ (१८६९ ई०) स्वामी जी ने कानपुर से विदाई ली और वह गगा तट पर विचरण करते करते रामनगर जा पहुचे। उन दिनो वहा दशहरा पर्व की धूमधाम थी। वाराणसी के महाराजा ईश्वरी प्रसाद नारायण सिह ने स्वामी जी के आवास आदि की व्यवस्था की। जब स्वामी जी ने मूर्ति पूजा के विरुद्ध अभियान आरम्भ किया तो महाराज ने उनकी सेवा मे एक पण्डित महोदय को भेजा तथा उसके माध्यम से यह भी

कहला दिया कि यदि वह मूर्ति पूजा का खण्डन करना छोड दें तो महाराजा की ओर से उन्हे १०० रुपया मासिक प्राप्त होते रहेगे। किन्तु महाराज के इस प्रस्ताव को ठुकराते हुए स्वामी जी ने उन्हें उत्तर दिया "१०० रुपये तो क्या, यदि महाराज मुझे अपना सम्पूर्ण राज्य भी देने का प्रस्ताव करें तब भी मैं सत्य धर्म का प्रचार और मूर्ति पूजा का खण्डन नही त्याग सकता।" रामनगर मे लगभग एक मास तक ठहरने के उपरान्त स्वामी जी अक्तूबर १८६६ मे वाराणसी पहुचे और उन्होने दुर्गा कुण्ड स्थित आनन्द बाग मे अपना आसन लगाया।

काशी मे कोलाहल

महर्षि दयानन्द के काशी आगमन का समाचार तत्काल ही सारे नगर मे फैल गया। प्रतिदिन सैकडो जिज्ञासु जन स्वामी जी के दर्शनार्थ एकत्रित होने लगे। स्वामी जी द्वारा मूर्ति पूजा का खण्डन किए जाने के कारण काशी मे कोलाहल-सा व्याप्त हो गया। प० दामोदर शास्त्री, राम शास्त्री और बाल शास्त्री आदि काशी के प्रमुख पण्डित ही नही अपितु यह भी कहा जाता है कि काशी पण्डित मण्डली के शिरोमणि श्री राजाराम शास्त्री भी चुपचाप स्वामी जी को देखने आये।उन सभी ने यह अनुमान लगा लिया कि स्वामी जी सस्कृत के असाधारण विद्वान् हैं और प्रभावशाली तार्किक है। इसके साथ ही उन्हें इस तथ्य का भी आभास मिल गया कि जहा वे वेदो से अनभिज्ञ है, वहा स्वामीजी वेदो के प्रकाण्ड पडित है।

अतएव वे स्वामी जी से शास्त्रार्थ करने का साहस न सँजो पा रहे थे। जब स्वामी जी ने किसी पौराणिक पण्डित को शास्त्रार्थ के लिए तैयार होते न देखा तो स्वय ही श्री राजाराम शास्त्री को एक प्रश्न लिख भेजा और उसका उत्तर देने का अनुरोध किया। यह प्रश्न था —

येनोच्चारितेन सास्नालागू लरककुखुर विषाण प्रत्ययो भवति स शब्दः अथवा प्रतीत पदार्थ को लोके ध्वनि शब्द। अस्योदाहरण प्रत्युदाहरणपूर्वक समाधान कुरुत।

प० राजा राम शास्त्री इस प्रश्न का उत्तर तो न दे पाये, किन्तु उन्होने कहला भेजा, तुम्हारे प्रश्न का उत्तर देने से पूर्व हम दोनो के मध्य एक चाकू रखा जाना चाहिये। यदि मैं प्रश्न का सतोषपूर्ण उत्तर दे पाया तो उस चाकू से मैं तुम्हारा नाक काट लूगा और यदि मैं असमर्थ रहा तो तुम मेरा नाक काट लेना। स्वामी जी ने भी शास्त्री जी को तुरन्त ही उत्तर भिजवा

दिया 'बहुत ठीक। एक क्यो, दो चाकू रखो। यदि तुम शास्त्रार्थ के स्थान पर शस्त्रार्थ के इच्छुक हो तो फिर ऐसा ही होने दो।' महर्षि के इस उत्तर पर प० राजाराम शास्त्री ने मौन धारण करना ही श्रेयस्कर समझा।

कई सप्ताह व्यतीत हो गये। स्वामी दयानन्द का मूर्ति पूजा विरोधी प्रचार जारी रहा कोई भी पण्डित उनसे शास्त्रार्थ करने का साहस नहीं कर पा रहा था, काशी नरेश चिंतित हो उठे। क्योकि उन्हे यह भय सताये जा रहा था कि यदि काशी मे स्वामी दयानन्द के तर्कों का यह प्रवाह इसी प्रकार गतिमान् रहा तो धार्मिक जगत् मे काशी को प्राप्त यश धूमिल हो जायेगा। अतएव उन्होने काशी की पण्डित मण्डली को एकत्रित किया और कहा कि वे स्वामी दयानन्द को शास्त्रार्थ करने की चुनौती दे। महाराजा ने पण्डितो मे अग्रगण्य प० राजाराम शास्त्री को यह दायित्व सौपा। उन्होंने महर्षि दयानन्द के ज्ञान की गहनता को जानने हेतु अपने एक शिष्य प० सालिगराम को भेजा। प० सालिगराम स्वामी दयानन्द के पास गये और उनके प्रकाण्ड पाण्डित्य से प्रभावित होकर लौटे। १५ दिन के बाद शास्त्रार्थ आयोजन का निश्चय कर लिया गया।

निर्धारित दिवस आया, यह था १६ नवम्बर १८६९ ई०। आनन्दबाग मे ही शास्त्रार्थ होना था। उस दिन सहस्रो की सख्या मे लोग उस ओर उमडने लगे। काशी की प्रमुख पण्डित मण्डलो को आनन्दबाग तक पहुचाने के लिए काशी नरेश के दरबार से पालकी, छत्र, चँवर इत्यादि भेजे जाने लगे। आज ही तो थी इन पण्डितो की अग्नि परीक्षा वेला। इसी दिन की सफलता पर तो अवलम्बित था उनका भविष्य। एक ओर कौपीनधारी सन्यासी दयानन्द थे, सत्य ही जिनका दुर्ग था और विद्या ही एकमात्र शस्त्र और परमात्मा ही एकमात्र सहायक। दूसरी ओर पण्डितो की मण्डली थी। उसके पास विद्या रूपी खड्ग तो था किन्तु वह विवेक के अभाव मे रूढियो के जग से कुंठित हो गया था। हा, दयानन्द को दहलाने के लिए पण्डित मण्डली के साथ सैंकडो शिष्यो का लाव लश्कर अवश्य आया था।

आनन्द बाग की ओर जो सहस्रो लोग आज उमड घुमड कर बादल दल के तुल्य आ रहे थे, उनमे ९९ प्रतिशत तो मूर्तियो को ही परमेश्वर मानने वाले लोग थे। वे सत्यासत्य का निर्णय जानने नही, अपितु कथित सनातन धर्म को इस सघर्ष मे विजयी बनाने हेतु वहा एकत्रित हुए थे। किन्तु उनमे भले थे, तो बुरे भी थे। सभा मण्डप की व्यवस्था नगर कोतवाल श्री रघुनाथ सहाय ने सँभाली। तीन उच्च आसन लगाये गये। एक स्वामी दयानन्द के लिए दूसरा विपक्षियो के लिए और तीसरा काशी के महाराज के लिए। जब काशी

की पण्डित मण्डली एकत्रित हुई तो काशी नरेश का आगमन हुआ। पण्डित मण्डली ने स्वामी जी के चतुर्दिक् आसन जमा लिए। इस मण्डली मे २७ पण्डित जुटे थे, जिनमे प० विशुद्धानन्द, प० बाल शास्त्री, प० शिव सहाय, प० माधवाचार्य, प० वामनाचार्य, प० देवदत्त शर्मा, प० जयनारायण तर्कवाचस्पति, प० चन्द्रसिंह त्रिपाठी, प० राधामोहन तर्क वागीश, प० काशी प्रसाद शिरोमणि, प० हरि कृष्ण व्यास, प० नवीन चन्द्र तर्कालकार, प मदन मोहन शिरोमणि, कैलाशाचार्य शिरोमणि, प० माधा कृष्ण वेदाती, प० गणेश श्रोत्रिय और प० ताराचरण तर्करत्न भी सम्मिलित थे। इस पण्डित मण्डली के अतिरिक्त दो ईसाई मिशनरी भी वहा उपस्थित थे। काशी नरेश ने अपने राज्य पण्डित ताराचरण तर्करत्न से शास्त्रार्थ का आरम्भ करने को कहा।

शास्त्रार्थ मे विजय

शास्त्रार्थ का आरम्भ हुआ। स्वामी दयानन्द ने पण्डित तारा चरण से कहा "पण्डित जी, मूर्ति पूजा के समर्थन में किसी वैदिक मत्र का उल्लेख करिये।" प० ताराचरण एक भी ऐसे वैदिक मत्र का उल्लेख न कर सके।

बाबू ताराचरण मित्र बोले "किसी अन्य विषय पर विचार किया जाए।" प० विशुद्धानन्द ने एक शारीरक सूत्र का पाठ किया और बोले कि 'क्या इसमे वेदो का सार नही है।" इस पर स्वामी जी ने कहा कि वेदो का अवलोकन करने के बाद ही इस प्रश्न का उत्तर दिया जा सकता है और किसी भी पण्डित को सभी वेद कण्ठस्थ नही। विशुद्धानन्द ने अवसर का लाभ उठाते हुए कहा "तो फिर आप काशी मे शास्त्रार्थ करने के लिए क्यो पधारे है।" प्रत्युत्तर मे स्वामी दयानन्द ने कहा कि "विशुद्धानन्द जी, क्या आपको वेद कण्ठस्थ हैं ?" प्रश्न को सुन कर विशुद्धानन्द जी मौन रह गये। उन्हे मौन देख कर बाल शास्त्री ने कहा कि "मुझे है।" स्वामी दयानन्द बोले "तो फिर आप धर्म की व्याख्या कर दीजिये।" बाल शास्त्री ने एक स्वचरित श्लोक सुना दिया। स्वामी दयानन्द बोले "यह वेद का मत्र तो नही है। यह तो बाल शास्त्री की अपनी रचना है।" इस पर प० शिव सहाय उठे और मनु का यह सुविख्यात श्लोक उच्चारित किया —

धृति क्षमा दमो ऽस्तेय शौचमिन्द्रिय निग्रह।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशक धर्मलक्षणम्॥

स्वामी दयानन्द ने इस श्लोक को सुनने के बाद प्रश्न किया "अच्छा यह तो बताइए कि "अधर्म के लक्षण क्या हैं ? इस प्रश्न का कोई उत्तर न

मिला। पराजय की छाया पडते देख कर प० माधवाचार्य ने मोर्चा सभाला। उन्होने कतिपय पुराने पत्रो को उलटा-पुलटा और उन्हे पढते हुए बोले "देखिए, ये वेद के पृष्ठ है और इनमे प्रतिमा शब्द का उल्लेख है।" स्वामी जी बोले 'वहा प्रतिमा शब्द से तात्पर्य मूर्ति से नही। इस पर माधवाचार्यजी ने एक वाक्य कहा "ब्राह्मणानीतिहासान् "पुरार्णान्" और बोले कि यहा शब्द है "पुराणान्" का उल्लेख पुराणो के लिए हुआ है। स्वामी जी ने उत्तर दिया कि यहाँ पुराण शब्द विशेषण है। इस पर माधवाचार्य को मौन सम्मति लक्षणम् का ही पथ अपनाना पडा। अब प० वामनाचार्य जी बोलने के लिए उठे। उन्होने अपने हाथो मे दो कागज पकडे हुए थे, जिन पर लिखा गया लेख स्पष्ट नही था। उन्होने कहा कि ये वेद के पृष्ठ है। इनमे अकित है कि —

यज्ञसमाप्तौ सत्या दशमे दिवसे पुराणाना पाठ शृणुयात्।

आपने यह भी कहा कि यहा पुराण शब्द का प्रयोग विशेषण के रूप मे नही हुआ है। स्वामी जी ने ये दोनो कागज अपने हाथ मे लिए। रात्रि के आठ बज रहे थे। लालटेन का प्रकाश मन्द था। स्वामी जी उस अस्पष्ट-से लेख को पढने का प्रयास कर रहे थे। अभी दो मिनट भी नही बीते थे कि प० विशुद्धानन्द एव अन्य पण्डित मण्डली ने करतल ध्वनि की और 'दयानन्द हार गए, दयानन्द हार गए" का उद्घोष आरभ कर दिया। यह कहते हुए इस मण्डली ने सभा स्थल से प्रस्थान भी कर दिया। स्वामी जी ने प० विशुद्धानन्द से अनुरोध कर दिया कि 'कृपया आप आसन ग्रहण कीजिए। बिना निर्णय के ही उठ खडे होना आप सरीखे विद्वानो के लिए सर्वथा अनुचित है।" किन्तु पण्डित विशुद्धानन्द न बैठे और स्वामी जी से बोले "अब जो होना था, वह हो चुका।" पण्डितो के सकेत पर काशी नरेश श्री ईश्वरी नारायण सिह भी खडे होकर ताली पीट रहे थे। "सनातन धर्म की जय" का जयघोष चतुर्दिक् गूज रहा था और यह सब हो रहा था एक पूर्व निर्धारित योजना के अनुसार।

नगर कोतवाल से न रहा गया। उन्होने काशी नरेश को सम्बोधित करते हुए कहा "महाराज! आपने ताली पीट कर सभा के नियमो के सर्वथा विपरीत आचरण किया है।" किन्तु काशी नरेश ने उन्हे भी सनातन धर्म का वास्ता देकर चुप करा दिया। उस समय एक उपद्रव का दृश्य उपस्थित हो गया था। मनमानी पर उतारू लोगो ने अपनी खीझ मिटाने के लिए षड्यत्र मे सलग्न स्वयभू धर्म रक्षको के सकेत पर स्वामीजी पर ककड पत्थर आदि फेके। किन्तु स्थितप्रज्ञ महर्षि दयानन्द इस उपद्रव मे सर्वथा सयत रहे और उनके मन के महासागर मे किसी भी प्रकार की प्रतिशोध भावना का उद्वेलन न हुआ।

सिद्ध पुरुष दयानन्द

उन दिनो प० ईश्वर सिह नामक एक निर्मल सन्त भी काशी मे निवास करते थे। वह वेदान्त के प्रकाण्ड पण्डित थे। उन्होने भी उद्यान से वापस लौट रहे जन समूह का देखा तथा अनेको पण्डितो को स्वामी के प्रति कुवचन कहते हुए सुना। उन्हें कुछ लोगो से यह भी विदित हुआ कि स्वामी जी पर ककड पत्थर ही नही, अपितु कुछ कुविचारी लोगो ने जूते आदि भी फेंके है। उनके मन मे आया कि चल कर स्वामी दयानन्द की मानसिक अवस्था का अवलोकन करे। यदि वह वास्तव मे ही सच्चे ज्ञानी होगे तो फिर इस उपद्रव से भी वह सर्वथा अविचलित ही होगे।

सन्त जी उद्यान मे पहुचे तो उन्होने देखा कि महर्षि सामान्य रूप से उद्यान मे टहल रहे है। सन्तजी को आते देख कर स्वामी दयानन्द के मुख मण्डल पर एक मधुर हास्य की रेखा खिची और उन्होने आदर सहित उनकी अगवानी की। काफी रात गए तक दोनो आत्मा एव परमात्मा सम्बन्धी विषयो पर वार्तालाप मे निमग्न रहे। इस लम्बी वार्ता के दौरान सत ईश्वर सिह जी ने महर्षि के मुख मडल पर म्लानता या उदासीनता का कोई चिह्न तक उभरता हुआ न पाया। उन्होने लोगो द्वारा उनके साथ किये गये अभद्र व्यवहार का अप्रत्यक्ष रूप से भी उल्लेख न किया। स्वामी दयानन्द के हृदय मे आर्य जाति की अवस्था पर आक्रोश नही था। वह तो अपनी करुणा और दया के अमृत का ही सभी को रसास्वादन कराने वाले महान् योगी थे।

स्वामी दयानन्द की मनस्विता सतजी पर और भी अधिक स्पष्ट हो गई और सहसा ही वह श्रद्धा मे महर्षि के श्रीचरणो मे मस्तक नत कर बोले, "स्वामी जी आज तक तो मैंने आपको वेद शास्त्र के महान् मर्मज्ञ और पडित के रूप मे ही देखा था किन्तु आज मुझे अडिग विश्वास हो गया है कि आप वास्तव मे वीतराग सन्यासी एव सिद्ध पुरुष है। तदुपरान्त सतजी ने महर्षि से विदाई ले स्वस्थान को प्रस्थान किया।

सत्य उजागर होकर रहा

काशी की पडित मण्डली का मिथ्या प्रचार, आडम्बर एव झूठे विज्ञापनो एवघोषणाओ का गर्द गुबार भी सत्य के सूर्य को आच्छादित न कर पाया। देश के पक्षपात विहीन समाचार पत्रो ने इस शास्त्रार्थ मे स्वामी दयानन्द की विजय का सत्य समाचार प्रकाशित कर अप-प्रचार की कलई खोल दी। प०

सत्यव्रत सामश्रमी ने अपनी मासिक पत्रिका मे स्वामी जी की विजय की घोषणा की तो रुहेलखड ने भी यह समाचार प्रकाशित करने का साहस प्रदर्शित किया कि स्वामी दयानन्द जी ने काशी की पडित मडली को शास्त्रार्थ मे परास्त किया है। ज्ञान प्रदायिनी (लाहौर) ने सत्य का उद्घोष किया तो हिन्दू पैट्रियट ने लिखा कि काशी के पडितो का शास्त्रज्ञान सम्बन्धी गर्व खण्डित हो गया है और उन्हे भारी पराजय का मुख देखना पडा है।

स्वामी जी के उपदेशो का बहिष्कार करने सम्बन्धी विज्ञापन भी सर्वथा निष्प्रमाण ही रहा। क्योकि जिज्ञासु जनो का ताता स्वामी दयानन्द के सदुप-देशो का श्रवण करने हेतु उसी प्रकार लगा रहा, जिस भाति वायु का प्रबल प्रभजन भ्रमरो के समूह को पुष्पो के समीप जाने से नही रोक पाता। इतना ही नही, स्वामी जी के सदुपदेशो के श्रवणार्थ आने वालो की सख्या दिन प्रति दिन बढती ही गई। विरोध की आधी और अवरोधो का अलाव सभी निरर्थक बन कर रह गए। देश के कोने-कोने मे दयानन्द दिग्विजय का समा-चार वायु के सुशीतल समीरण के तुल्य प्रवाहित हो उठा था। रूढिवाद के दुर्ग पर स्वामी दयानन्द के प्रबल प्रहार से जो टकार निनादित हुई उससे दसो दिशाए गुजित हो उठी। महर्षि के पाण्डित्य की कीर्ति पताका चतुर्दिक् फहरा उठी। स्वार्थ और मिथ्या मान्यताओ का दुर्गम दुर्ग प्रकम्पित हो उठा। अज्ञान व अन्धकार को तिरहित कर सत्य के सूर्य ने चतुर्दिक् प्रकाश फैला दिया।

काशी पर एक बार नही, अपितु सात बार स्वामी जी ने धावा बोला किन्तु कोई उनसे लोहा लेने का साहस न सँजो पाया। वह जब दूसरी बार काशी पधारे तो स्वय काशी नरेश ने उन्हे अपने निवास स्थान पर बुला कर सम्मानित किया। इतना ही नही, अपितु उन्होने अपनी भूल पर पश्चात्ताप भी व्यक्त किया। स्वामी जी के छठी बार काशी आगमन पर तो नगर के प्रमुख पडितो की मडली ने उनसे एकात मे भेट कर यह नम्र निवेदन किया—'स्वामी जी, यदि आप मूर्ति पूजा का खडन करना त्याग दे तो हम आपको भगवान विष्णु का अवतार घोषित कर देंगे। किन्तु जो प्रलोभनो को ठुकरा कर मानवमात्र के कल्याण हेतु कर्तव्य पथ पर अग्रसर हुआ था, उस महा-मानव को ये व्यामोह भला कैसे भ्रमित कर पाते। पडित मडली निराशा से मुख लटकाये लौट गई।

हत्या के प्रयास

काशी मे ही स्वामी दयानन्द ने इस्लाम के सम्बन्ध मे अपने विचार

निर्भीकता पूर्वक व्यक्त किए थे। अतएव दीने इस्लाम के अनेक दीवाने भी सच्चे धर्म के इस दीवाने को दुनिया मे हटाने की तमन्ना अपने दिल मे बसाये दाव खोजने मे व्यस्त थे। एक दिन सायकाल महाराज गगा तट पर आसन लगाये बैठे थे। उसी समय मजहबी उन्मादियो की एक टोली वहाँ आ पहुची। उन्ही मे से दो उन्मत्तो ने स्वामी जी को उठा कर गगा मे फेकने का प्रयास किया। किन्तु स्वामी जी इन दोनो को अपनी भुजाओ मे दबाय गगा जी मे छलाग लगा गए। जब इन दोनो का दम घुटने लगा तो स्वामी जी तो दयानन्द थे, अतएव उन्होने इन दोनो को अपनी पकड से छोड दिया। बाद मे वे दोनो बडी कठिनाई से जल से बाहर निकल पाए। फिर भी वे स्वामी जी के गगा से बाहर निकलने की प्रतीक्षा मे तट पर खडे रहे। किन्तु महर्षि दयानन्द ने तो तलहटी मे पद्मासन लगा लिया था। सूर्यास्त हो गया। मजहबी जनून मे अन्धे बने ये लोग अन्तत स्वामी जी को डूब गया जान कर वहा से चले आए। बाद मे स्वामी जी जल से निकले और अपने आसन पर आकर विराजमान हो गए।

काशी मे ही एक दिन एक छद्मवेशी भक्त ने स्वामी जी को एक पान का बीडा लाकर श्रद्धा का अभिनय किया। परन्तु ज्योही स्वामी जी पान को खोल कर देखने लगे, वह नौ दो ग्यारह हो गया। बाद मे राज्य औषधालय मे हुई पान की जाच से उसमे विष प्रमाणित हो गया।

समाज सुधार अभियान

माघ बदि सवत् १६२६। स्वामी दयानन्द प्रयाग पधारे और गगा तट पर ही उन्होने अपना आसन जमाया। धूम-धाम से प्रचार आरम्भ हो गया। स्वामी जी का भाषण सुनने हेतु जो सैकडो व्यक्ति गगा तट पर उपस्थित होते थे, उनमे साधु-सतो की भी अच्छी खासी सख्या होती थी। साधु-सत प्राय वेदान्त और निष्क्रियतावाद पर वादविवाद किया करते थे।

प्रवृत्ति और निवृत्ति मार्ग का विवेचन

यही एक दिन प्रवृत्ति और निवृत्ति मार्ग पर एक साधु से स्वामी जी का शास्त्रार्थ हुआ। इस शास्त्रार्थ मे विजयश्री प्राप्त कर स्वामी जी ने अपने व्याख्यान मे प्रवृत्ति और निवृत्ति मार्ग का विवेचन करते हुए बताया —

"क्रियात्मक जीवन ही शुभ जीवन है। समस्त दृश्यमान जगत् अपनी नित्य क्रिया मे निरन्तर निमग्न है। हमारे शरीर भी इसी विशाल सृष्टि के अश मात्र है। जब इस विराट् देह मे निरन्तर गति है, क्रिया है तो हम जो उसके

अश रूप ही हैं, उनमे भी निवृत्ति और निष्क्रियता कदापि नही होनी चाहिए। आर्य धर्म के अनुसार वेद विहित कार्य करना ही प्रवृत्ति है और निषिद्ध कार्यों का परित्याग ही निवृत्ति मार्ग। जो इस मर्म को हृदयगम किए बिना ही निवृत्ति का राग अलापते हे, वस्तुत उन्हे वैदिक धर्म का बोध ही नही हो पाया है। जो लोग सत्य-उपदेश, प्रजा प्रेम और लोक हितकारी कार्यो का परित्याग कर स्वय को परम निष्क्रिय मानते है, वे भी देह का भरण-पोषण नही छोड पाते। मधूकडी की प्राप्ति हेतु वे दो-दो कोस की पद यात्रा करते हैं। यो ही तीर्थाटन करते रहते हैं। किन्तु सत्य यह है कि सत्य और परम कल्याण हेतु स्वसुखो को भस्मसात् कर देना ही सर्वोत्तम त्याग है।"

स्वामी जी ने अपने प्रवचन मे यह भी कहा "परोपकार विहीन नर का जीवन मृग जीवन से श्रेष्ठ नही। इस मेले मे एकत्रित सैकडो साधु जन गृहस्थो से प्रतिदिन अठन्नी का प्रसाद प्राप्त कर वनो मे पडे रहते है। भला इनमे और मृगो मे अन्तर ही क्या है? मृग भी तो इसी भाति कृषको के खेत नोच कर वनखण्डो मे प्रविष्ट हो जाते है। फिर इस जीवन का क्या लाभ? ऐसा जीवन तो पशु-पक्षियो को भी सहज ही उपलब्ध है।"

देश दुर्दशा की टीस

एक दिन गगा तट पर बैठे देव दयानन्द नील धवल लहरो को निहारन मे निमग्न थे। उसी समय उन्होने देखा कि एक महिला एक मृत शिशु को हाथ मे उठाए गगा की जल धारा मे प्रविष्ट हुई। वह जल धारा मे कुछ गहराई तक गई और उसने शिशु के शव पर लपेटा हुआ वस्त्र उतार लिया और हाय-हाय का आर्तनाद करते हुए उस मृत पिण्ड को जल मे विसर्जित कर दिया। दया की सजीव प्रतिमा दयानन्द का हृदय दहल उठा। उनके मन के महासागर मे तूफान उठ खडा। वे विचारने लगे कि भारत भूमि मे निर्धनता और दैन्य की यह स्थिति है कि माता शिशु को जल मे तो प्रवाहित कर गयी है, किन्तु उस पर लिपटे हुए वस्त्र को उसने इसलिए उतार लिया है कि उसे बहा दे तो दूसरा वस्त्र मिलना कठिन हो जायेगा। वे सोचते रहे कि क्या देश की कगाली और बदहाली का इससे भी बडा और कोई प्रमाण होगा। यही महर्षि दयानन्द ने सकल्प ग्रहण किया. "कुछ ही समय के उपरान्त मैं इन्ही लोगो की भाषा मे प्रचार करके इनकी समस्याओ के निदान का पथ प्रशस्त करूगा।"

अनिष्टकर्ता को ईश्वरीय दण्ड

कुम्भ पर्व पर प्रचार कार्य का समापन करने के उपरान्त महर्षि मीरजा

पुर आ विराजे। यहाँ भी सामाजिक कुरीतियो और मूर्तिपूजा के विरुद्ध उनका अभियान गतिमान रहा। उनके द्वारा किए जा रहे सत्य धर्म के प्रचार से विरोधी पक्ष प्रकम्पित हो उठा था। अतः येन केन प्रकारेण वह महर्षि दयानन्द को समाप्त कराने के उपायो मे तल्लीन था।

स्वय को तात्रिक विद्या मे पारगत घोषित करने वाले एक ओझा को भी उन दिनो मीरजापुर मे डेरा पडा हुआ था। उसने दावा किया कि वह अपने सिद्ध यत्र और मत्र प्रयोग द्वारा पुरश्चरण कर दयानन्द का उसके २१वे दिन अकाल ही कराल काल के गाल म पठा सकता है। एक सेठ ने इस मत्र प्रयोग का सम्पूर्ण व्यय वहन करने की स्वीकृति दे दी। ओझा के मत्र प्रयोग का क्रम आरम्भ हो गया। किन्तु अभी तीन चार दिन की अवधि ही व्यतीत हुई थी कि दैवयोग से उक्त सेठ के कठ मे एक फोडा उभर आया। दिन प्रति दिन वह भयकर रूप ग्रहण करता जा रहा था। उस सेठ का कष्ट इतना अधिक बढ गया कि उसे कोई बात मुख से उच्चारने मे भी पीडा होने लगी। उक्त ओझा एक दिन सेठ जी के पास पहुचा और बोला "सेठ जी, प्रयोग समाप्ति की घडी समीप आ रही है अत आप बलिदान की साम्ग्री प्रस्तुत करा दीजिये। इधर प्रयोग समाप्ति पर बलि समर्पित की जाएगी और उधर दयानन्द का सिर धड म अलग होकर भूलुठित हो जाएगा।' किन्तु पीडा से कराहते हुए सेठ बडबडाए ओझा! दयानन्द का सिर तो जब धड से अलग होगा तब होगा, किंतु मेरा सिर तो अभी अलग हुआ जा रहा है। अत कृपा करो, अपना पुरश्चरण तत्काल बन्द करो।" इस प्रकार अनिष्ट हेतु किया जा रहा प्रयोग अनिष्ट-कारियो के ही गले पडने लगा। जा अत उन्होने इसे बीच मे ही रोक देने मे कुशल मानी।

निर्भयता का प्रदर्शन

एक दिन विरोधियो का एक बडा गिरोह गुसाई छोटू गिरि के नेतृत्व मे स्वामी दयानन्द के निवास स्थान पर आ धमका। महर्षि ने अपनी दिव्य दृष्टि से इनकी उद्दण्डता और दुष्टता को भॉप लिया। स्वामी जी का प्रवचन जारी था। उन्होने मूर्ति पूजा के खडन का क्रम और भी अधिक ओजपूर्ण कर दिया। स्वामी जी के तर्को का कोई उत्तर तो गुसाई के पास था नहीं, अतएव उसने स्वामी जी के समीप रखे एक दोने से बताशे खाने आरम्भ कर दिए। महाराज बोले "यदि आपको बताशे खाने ही हो तो मुट्ठी मे भर लो और फिर उन्हे खुशी से चबाओ। किन्तु एक-एक चबा कर सबको जूठा न करो।" किन्तु जो व्यक्ति लडने के लिए ही आया हो, भला वह सही परामर्श को

स्वीकार करता तो कैसे ? अतः बोला "बच्चू ! तू मेरी जूठन से घृणा करता है। मैं तेरा गुरु हू। तनिक ठहर जा, आज मैं तुझे खडन का पूरा-पूरा मजा चखा दूगा।"

किन्तु निर्भीकता की मूर्ति दयानन्द को ऐसी गीदडी भभकियो से भला क्या डर हो सकता था। वे खडे हुए और गरजे "तुम मुझे डराना चाहते हो। किन्तु याद रखो, यदि मैं डरपोक होता तो देश-देशान्तर मे घूम घूम कर सत्य धर्म का प्रचार न करता।" और फिर देव दयानन्द ने सेवको को निर्देश दिया" "तनिक बाहर के द्वार बन्द कर दो। मैं अकेला ही इन सभी को सीधा किए देता हू।" स्वामी जी की तेजस्वी आकृति उग्र हो उठी। उन्हे देखते ही छोटू गिरि को पसीना छूटने लगा। उसका दर्प चूर्ण-चूर्ण हो गया और वह ठण्डा होकर पीछे हट गया।

पादरी की शंका का निवारण

मीरजापुर मे आर्थर नामक एक यूरोपीय ईसाई पादरी स्वामी जी के पास प्राय आया करता था। एक दिन वह स्वामी जी मे बोला "भगवन् ! यदि आपकी यह धारणा है कि वेदो के विद्यमान भाष्य त्रुटिपूर्ण है तो आप स्वय वेदो का भाष्य क्यो नही करते ?" महर्षि बोले कि विद्यमान भाष्यो को दोषपूर्ण होने का कारण यह है कि योगाभ्यास से अनुशासित मष्तिष्क के बिना वेदो के सही अर्थों को समझना कठिन है। केवल सस्कृत के ज्ञान से वेदो का सही अर्थ कर पाना असम्भव है।

स्वामी जी ने बनवारी बाबू नामक एक बगाली सज्जन की सेवाए उक्त पादरी को मैक्समूलर द्वारा किए वेदो के अग्रेजी अनुवाद की भूल से अवगत कराने के लिए प्राप्त की।"

पाठशाला की स्थापना

मीरजापुर के ही एक धनी-मानी ऋषि भक्त चौधरी गुरुचरण ने अपने व्यय पर नगर मे वैदिक धर्म के अध्ययन और शिक्षा के लिए एक पाठशाला स्थापित करा दी और उसके लिए अपना एक भवन भी अर्पित कर दिया। स्वामी जी ने इस विद्यालय के सचालन का भार मथुरा के अपने एक सहपाठी श्री युगल किशोर जी को सौंप दिया और अन्य आवश्यक व्यवस्थाए भी करा दी।

तदुपरान्त वह पुन गगा के किनारे- किनारे वेदो की पावन ज्ञान सरिता

को प्रवाहित करते हुए काशी जा पहुचे। वहा आप दो मास तक ठहरे और आपकी शास्त्रार्थ सम्बन्धी चुनौती को स्वीकार कर कोई भी पौराणिक पडित शास्त्रार्थ के लिए आगे न आ पाया। यहा ही आपने शकर के अद्वैत मत के खडन मे एक पुस्तक का लेखन और प्रकाशन भी किया तथा "ब्रह्म सत्य जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापर" के सिद्धान्त की धज्जिया उडा दी।

पुन: कासगज मे

वाराणसी मे अपनी विद्वत्ता की धाक बैठाने और वैदिक धर्म का वास्तविक मर्म समझाने के उपरान्त आप पुन कासगज पधारे और यहा सर्व प्रथम स्थापित की गई वैदिक पाठशाला का निरीक्षण किया। यही एक दिन जब स्वामी जी स्नानार्थ समीप स्थित एक उद्यान की ओर प्रस्थान कर रहे थे तो राम प्रसाद नामक उनका एक सेवक भी स्नान के उपकरण उठाये उनके पीछे-पीछे चल रहा था। मार्ग मे एक पका हुआ आम वृक्ष के नीचे पडा था। स्वामी जी तो उसे देख कर भी अनदेखा करते हुए आगे बढ गए किन्तु सेवक ने वह फल उठा लिया। छोटी छोटी भूलो की भी उपेक्षा न करने वाले महर्षि दयानन्द ने तत्काल रामप्रसाद की भर्त्सना की और अपने स्थान पर लौट आने के उपरान्त उस पर एक रुपया अर्थ दण्ड भी लगा दिया।

इसी नगर मे एक दिन एक मरखने साँड के सामने से निर्द्वन्द्वता पूर्वक गुजर कर आपने लोगो को अपने अनुपम धैर्य और साहस का परिचय देकर आश्चर्य चकित कर दिया था।

स्वामी दयानन्द पर्याप्त समय तक कासगज मे रहे और जब पाठशाला के प्रबन्ध की दृष्टि से सतुष्ट हो गए, तब वहा से जलेसर प्रस्थान कर गए। जलेसर मे सैकडो लोगो ने इस युग द्रष्टा के प्रति सम्मान व्यक्त करते हुए उनकी अगवानी की। वे उनके स्वागतार्थ पालकी भी लाए, किन्तु महर्षि ने उन सबके साथ पैदल ही चलकर अपने इस आचरण से उन पर अमिट प्रभाव छोडा। उनके स्वागतार्थ उपस्थित होने वालो मे इस क्षेत्र के सुप्रसिद्ध व्यक्ति ठाकुर मुकुन्द सिंह प्रमुख थे।

यहा प्रतिदिन उनके उपदेशामृत का पान कर सैकडो क्षत्रिय जन नव प्रेरणा पाते रहे और उन्होने महर्षि को अपना गुरु मान कर उनसे यज्ञोपवीत धारण किया।

बिछुड़ो को मिलाया

ठाकुर मुकुन्द सिंह एव उनके पुत्र श्री चन्दन सिंह मे काफी समय से चली आ रही अनबन का भी महर्षि ने अपने उपदेश से शमन किया। उन्होने ठाकुर

साहब को समझाया कि "पिता को विशेष कोमल होना चाहिये । छोटे यदि भूल करे तो बडो को अपनी गरिमा का त्याग नही करना चाहिए । सतान से वमनस्य सासारिक सुख के लिए कटकवत् है ।" ठाकुर मुकुन्द सिंह ने भी करिष्ये वचन तव "अनुगमन" कर पुत्र के प्रति वात्सल्य भावना का प्रदर्शन करते हुए उसे अपने गले से लगा लिया । इस अवसर पर पिता पुत्र के नेत्रो से बहे श्रद्धा और स्नेह के गगा जल ने अनेक वर्षो से दोनो के मन मे जमा हुए मल को बहा दिया ।

शास्त्रार्थ मे विजय

जलेसर मे अनेक पौराणिक पडितो का जमघटा स्वामी जी से शास्त्रार्थ के लिए आया, किन्तु उनके ज्ञान के आलोक मे उनकी शकाओ और अन्ध विश्वास का अन्धकार तिरोहित हो गया और अतरौली के काजी इमदाद अली खा न भी उनके अमृतमय उपदेश से अपनी ज्ञान पिपासा का शमन किया । जलेसर मे भी महर्षि ने एक वैदिक पाठशाला की स्थापना की ।

यहा से आप मई १८७१ मे रामघाट पहुचे और वहा २१ दिन रह कर फर्रुखाबाद आए और फिर मार्च १८७२ मे आपने काशी मे पुन अपनी विद्वत्ता की पताका फहराई ।

चाणक्य और चैतन्य की भूमि मे

१६ अप्रैल, १८७३ । स्वामी दयानन्द ने काशी से कलकत्ता के लिये प्रस्थान कर दिया । सर्व प्रथम मुगलसराय मे दस दिन आपका पडाव रहा और यही आपने पादरी लाल बिहारी दे की भ्रान्ति का निवारण किया । तदुपरान्त आप डुमराव पहुचे । वहा के महाराजा ने आपको अपना अतिथि बनाया । यहा प० दुर्गादत्त, जय गोविन्द और बशीधर आदि पण्डितो से आपका शास्त्रार्थ हुआ । पण्डित मडली परास्त होकर झल्लाई और अपना सा मुह लिये लौट गई ।

डुमराव मे वैदिक धर्म का नाद गुजा कर ऋषि आरा पहुँचे और वहाँ वैदिक धर्म पर आपके दो प्रवचन हुए । ये उपदेश सस्कृत मे होते थे और प० रजनीकान्त इनका हिन्दी मे अनुवाद सुनाते थे । यहा के जिलाधीश श्री एच० डब्लू० अलेग्जेन्डर को आपने वैदिक वर्ण व्यवस्था का मर्म समझाया और बताया कि प्राचीन काल मे भोजन बनाने का कार्य शूद्र करते थे, ब्राह्मण नही ।

पटना की घटना

आरा से स्वामी जी ६-७ सितम्बर १८७२ को गुप्तवंशीय सम्राटों की प्राचीन राजधानी और ऐतिहासिक नगरी पाटलिपुत्र (पटना) पहुचे। यहा महाराजा भूपसिंह के उद्यान मे आपका वास रहा। उन्ही दिनो पटना मे प० रामजीवन भट्ट नामक एक विख्यात पडित विराजते थे। वह एक दिन ६०-७० व्यक्तियो को लेकर स्वामी जी से शास्त्रार्थ करने आये और उनके श्रीमुख से सत्य धर्म की व्याख्या सुन कर निरुत्तर होकर लौट गए। पटना कालेज के पण्डित रामजीवन तो आपके उपदेश से इतने प्रभावित हुए कि उन्होने अपने शालिग्राम सदा के लिए त्याग दिये। यहा के उप-जिलाधीश श्री सोहनलाल भी स्वामी जी की विद्वत्ता से प्रभावित हुए बिना न रह सके।

योगबल का चमत्कार

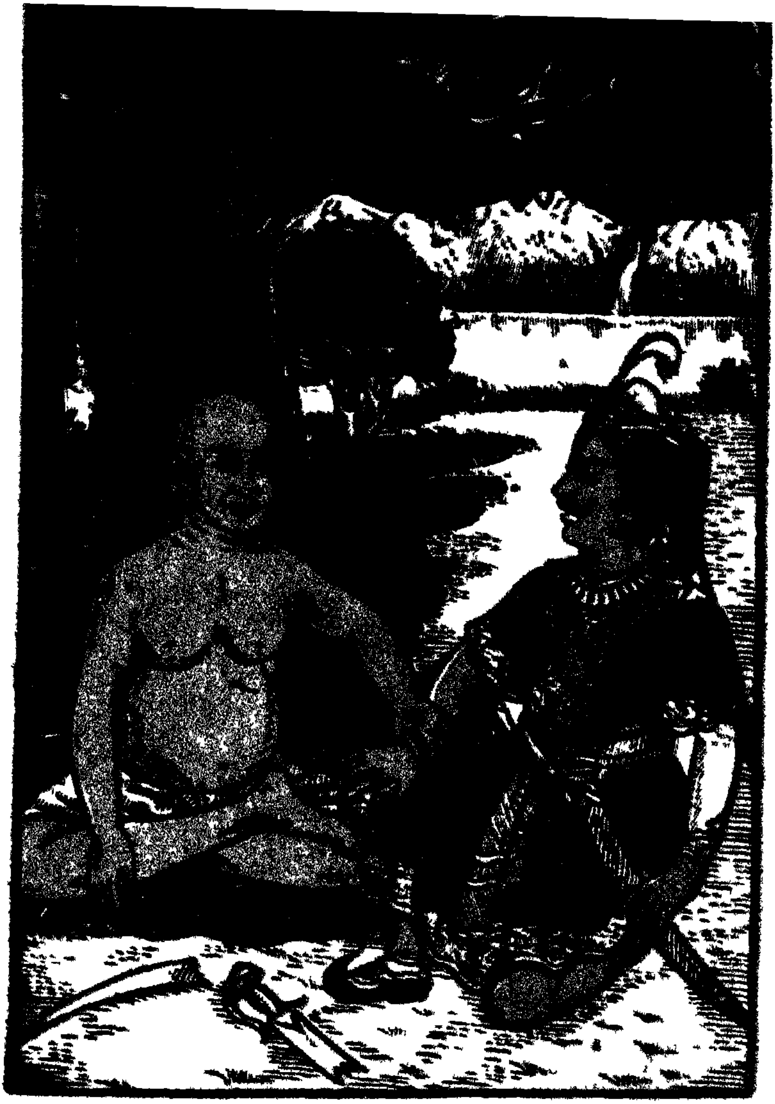
श्री सोहनलाल प्रति दिन स्वामी जी को दूध, शक्कर आदि भेजा करते थे। राजनाथ नामक एक युवक स्वामी जी से वेदाध्ययन की तीव्र आकाक्षा रखता था। राजनाथ एक दिन सायकाल श्री सोहन लाल के यहा बैठा था तो उन्होने उससे ही स्वामी जी को दूध देकर आने के लिए कहा। अन्धकार छाया हुआ था। वर्षा के कारण मार्ग मे कीचड भी हो गया था। वह एक हाथ मे लोटा व दूसरे हाथमे छडी लिये चल रहा था। कुछ ही दूर जा पाया था कि एक ओर से एक सर्प निकला और मार्ग मे आ डटा। राजनाथ भयभीत हो कर पीछे हटने लगा तो उस ओर भी उसने एक भयकर सर्प देखा। राजनाथ ने साहस सँजोया और सामने आए नाग पर से छलांग लगा कर आगे बढ़ गया। जब वह स्वामी जी के पास पहुँचा तो वह उसे देखते ही बोले "क्या मार्ग मे तुम्हे सर्प मिले थे ?" राजनाथ ने आश्चर्य चकित होकर तथ्य को स्वीकार किया और उस दिन से उसके हृदय मे स्वामी जी के योगबल के सम्बन्ध मे श्रद्धा और भी अधिक बढ गया।

पटना मे ही आपने गुरु प्रसाद नामक एक सम्भ्रान्त सज्जन की ससाराश्रम त्यागने सम्बन्धी जिज्ञासा का शमन किया तो श्री छोटे लाल के मन मे व्याप्त स्वर्ग और नरक की मिथ्या धारणा का निवारण किया।

मूर्ति पूजा और अवतारवाद के सम्बन्ध मे शास्त्रार्थ के लिए दी गई आपकी चुनौती के बाद भी जब कोई पडित मैदान मे न आया तो आपने मु गेर का पथ अपनाया।

अग्रेज इंजीनियर का दर्प चूर्ण

पटना से मु गेर जाते समय स्वामी दयानन्द को जमालपुर मे दूसरी रेल गाडी के आने की प्रतीक्षा करनी पडी। आप कौपीन धारण किये ही प्लेटफार्म



अभिमानी राव कर्णसिंह की तलवार के स्वामी दयानन्द ने
बाएं हाथ से ही दो टुकड़े कर दिए



जोधपुर नरेश को फटकारते हुए स्वामी दयानन्द

पर घूम रहे थे कि आप पर एक अंग्रेज इंजीनियर की पत्नी की दृष्टि पडी । उसे महाराज का यह बेश कुछ अटपटा सा लगा । इंजीनियर महोदय ने शासक जाति का सदस्य होने के दर्प से स्टेशन मास्टर को बुलाया और निर्देश दिया कि वह कौपीनधारी सन्यासी को वहा से हटा दे । स्टेशन मास्टर न स्वामी जी से प्रार्थना की, किन्तु स्वाभिमानी दयानन्द ने कहा "जाओ और उससे कह दो कि हम उस युग के मानव हैं, जब आदम और हव्वा सर्वथा नग्न अदन के उद्यान मे सैर किया करते थे । "यह उत्तर सुन कर स्टेशन मास्टर चला गया और स्वामी जी पूर्ववत् प्लेटफार्म पर घूमते रहे । इंजीनियर पुन भभका और स्टेशन मास्टर के पास पहुँचा । जब स्टेशन मास्टर ने उसे बताया कि "यह साधु कोई भिखारी नही, अपितु युगद्रष्टा स्वामी दयानन्द है" तो इंजीनियर महोदय स्वय स्वामी जी की सेवा मे उपस्थित हुए और मुगेर जाने वाली गाडी के आने तक स्वामी जी से वार्तालाप करते रहे ।

केशवचन्द्र सेन से भेंट

मुगेर मे कुछ समय ठहर कर स्वामी जी दिसम्बर १८७२ मे भारत की तत्कालीन राजधानी कलकत्ता पधारे । उन दिनो बगभूमि मे श्री केशवचन्द्र सेन के नाम की धूम थी । जब स्वामी जी कलकत्ता पहुँचे तो श्री सेन वहाँ नहीं थे । किन्तु वापस नगर मे लौटते ही आप स्वामी जी से भेंट करने के लिये उनके स्थान पर पधारे । श्री सेन ने अपना परिचय दिए बिना ही स्वामीजी से वार्तालाप आरम्भ कर दिया और बीच मे ही पूछने लगे "स्वामीजी क्या आपकी कभी केशवचन्द्र सेन से भी भेंट हुई है ?" स्वामी जी ने एक मद मुस्कान बिखेरते हुए कहा "हा, हुई क्यो नही ?" श्री सेन ने अगला प्रश्न किया "वह तो कलकत्ता मे थे ही नही, आपकी उनसे भेंट कहा हो गई ?" स्वामी जी ने यह उत्तर देकर श्री सेन को आश्चर्य-चकित कर दिया "महाशय ! आप ही तो केशवचन्द्र सेन है ।" सेन महोदय स्तब्ध थे । भगवन् ! आपने कैसे जान लिया कि मैं ही सेन हूँ ? महर्षि बोले "जैसी बातें आपने की हैं, ऐसी किसी अन्य की हो ही नही सकती ।" इस भेंट ने श्री सेन के मन मे स्वामी जी के प्रति आदर की भावना उत्पन्न कर दी ।

यह भेंट दो युग पुरुषो का मिलन था । दोनो ही स्वदेश की कल्याण कामना से परिपूरित हृदय वाले देशभक्त थे– कुशल और अद्भुत वक्ता भी । दोनो मे ही जनमेदिनी को अपने साथ ले चलने की क्षमता थी—सत्यान्वेषण की लगन से भी दोनो ही प्रेरित थे । किन्तु जहा इन महापुरुषो के जीवन मे ऐसी अनेक समानताए थी, वहा कतिपत विषयो मे उनमे मतभेद भी थे । उनके विचारो के अन्तर की अभिव्यक्ति निम्नलिखित प्रसग से भली भाति हो जाती है ।

एक दिन वार्तालाप के दौरान श्री सेन ने स्वामी जी से कहा "स्वामी जी,

विभिन्न धर्मावलम्बी अपने-अपने ग्रन्थो को ईश्वरीय एव अन्तिम प्रमाण मानते हैं। आप भी वेद को ईश्वरीय ज्ञान बताते हैं। भला यह निर्णय कैसे हो कि किसका कथन सत्य है ?" स्वामी जी ने उत्तर मे कुरान एव बाइबल के कतिपय दोष दर्शाए और वेदो की दोषमुक्तता स्पष्ट करते हुए दावा किया कि "सर्वथा निर्दोष होने के कारण वैदिक धर्म ही सत्य है ।" स्वामी जी की युक्तियो से श्री सेन भी प्रभावित हुए बिना न रहे और बोले "वेदो का इतना अद्वितीय विद्वान् अग्रेजी से अनभिज्ञ है। काश ! उसे अग्रेजी का ज्ञान होता तो वह मेरी इच्छा के सर्वथा अनुरूप इगलैण्ड प्रवास मे मेरा सहयोगी बनता ।" स्वामी जी के मुख मण्डल पर हास्य की एक रेखा बिखर गई और वह बोले "खेद है कि ब्राह्म समाज के नेता को सस्कृत का ज्ञान नही और वह लोगो को उस भाषा मे उपदेश देता है, जिसे वे समझते ही नही ।"

परामर्श स्वीकार

कलकत्ता के इस प्रवास मे श्री केशवचन्द्र सेन ने स्वामी जी को स्वदेश की भाषा मे व्याख्यान देने का जो परामर्श दिया, उसे उन्होने सहर्ष स्वीकार कर अपनी निरहकारिता और सही परामर्श को स्वीकार करने के लिये सदैव उद्यत रहने की प्रवृत्ति का परिचय दिया। सेन महाशय ने महर्षि से यह अनुरोध भी किया कि आप सभाओ आदि मे यदि पूर्ण वस्त्र धारण करके जाए तो उचित होगा। स्वामी जी ने उनके इस आग्रह को भी मानने मे सकोच न किया।

विद्वद् गोष्ठी

स्वामी दयानन्द को श्री सेन ने कल्लू टोला स्थित अपने निवास स्थान पर भी आमन्त्रित किया। यहा भी स्वामी जी ने अपनी मान्यता के अनुसार मूर्ति पूजा का खण्डन करने मे कोई सकोच न बरता और २३ मार्च को गोरा बाबू के निवास स्थान पर श्री सेन द्वारा आयोजित विद्वज्जनो की एक गोष्ठी मे भी स्वामी जी ने परमेश्वर एव धर्म विषय पर विद्वत्तापूर्ण प्रवचन करने के अतिरिक्त उपस्थित विद्वानो द्वारा व्यक्त की गई अनेक शकाओ का समाधान कर अपनी तर्कशक्ति की छाप सब के मानस पटल पर अकित कर दी। कलकत्ता महानगरी देव दयानन्द के जय जयकार से निनादित होने लगी।

वाइसराय के समक्ष स्वराज्य का उद्घोष

जनवरी १८७३। कलकत्ता मे इगलैण्ड के आर्कबिशप ने वाइसराय लार्डनार्थ ब्रुक एव स्वामी दयानन्द की भेंट का आयोजन कराया। दुभाषिए के माध्यम से हुई इस भेंट का प्रामाणिक विवरण प्रस्तुत है —

सामान्य शिष्टाचार के उपरान्त वाइसराय ने स्वामी जी से प्रश्न किया "पडित दयानन्द ! मुझे विदित हुआ है कि आपके द्वारा दूसरे मत मतान्तरो व धर्मों की कडी आलोचना की जाती है। परिणामत उन मतो एव धर्मों के अनुयायियो के हृदय मे क्षोभ उत्पन्न होता है तथा आपके विरुद्ध भयानक विचार भी उभरता है, विशेषत मुस्लिम और ईसाई जनता के हृदय मे। क्या आप अपने शत्रुओ से किसी प्रकार का भय अनुभव करते हैं ? और क्या आप सरकार से अपनी सुरक्षा की व्यवस्था कराना चाहते हैं ?"

स्वामी दयानन्द ने इस प्रश्न को सुनते ही निर्भीकता पूर्वक वाइसराय को दो टूक उत्तर दे दिया "मैं ऐसी बातें स्वीकार करने को तैयार नहीं, क्योंकि मेरा यह अडिग विश्वास है कि मेरे देशवासियो की निर्बाध राजनैतिक उन्नति तथा ससार के राष्ट्रो मे भारत को समानता का स्थान प्राप्त कराने के लिये मेरे देश का शीघ्रातिशीघ्र पूर्ण स्वतन्त्र होना आवश्यक है। श्रीमन् ! मैं तो ईश्वर से नित्य प्रातः एव साय यही प्रार्थना करता हूँ कि उसकी अपार कृपा के फलस्वरूप इस देश को विदेशियो की दासता से यथाशीघ्र मुक्ति प्राप्त हो।

स्वामी जी के ये निर्भीक वचन सुनते ही नार्थब्रुक हताश हो गया और उसने वार्ता का क्रम यही बन्द कर दिया। बाद मे उसने लन्दन स्थित भारतीय कार्यालय को स्वामी दयानन्द के साथ हुए वार्तालाप का पूर्ण विवरण लिख कर भेजने के साथ ही साथ यह भी लिखा कि इस विद्रोही साधु पर सतर्क दृष्टि रखा जाना नितान्त आवश्यक है।

पत्रपत्रिकाओ द्वारा जय जयकार

स्वामी जी के कलकत्ता प्रवास के सम्बन्ध मे यही वाक्य दोहराया जा सकता है "वह आये, उन्होने देखा तथा विजय पा ली।" उनकी इस यात्रा के प्रभाव का वर्णन करते हुए ब्राह्म समाज के मुख पत्र ने लिखा —"
वह प्रचण्ड विद्वान्, उदार एव उच्च चरित्र के धनी हैं। मूर्तिपूजा के घोर विरोधी हैं। सस्कृत तो उनकी मातृ भाषा ही हो गई है।"

"तत्त्व बोधिनी" नामक पत्रिका ने स्वामी जी की कलकत्ता यात्रा की सफलता को इन शब्दो मे स्वीकार किया—"कुछ दिन पूर्व विद्वान् स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपनी महती विद्वत्ता से कलकत्तावासियो को गहन आश्चर्य मे डाल दिया।"

हुगली मे धर्म प्रचार

कलकत्ता से प्रस्थान कर अप्रैल, १८७३ को स्वामी दयानन्द हुगली पधारे। वहाँ आप श्री वृन्दावनचरण मडल के उद्यान मे ठहरे। वहाँ भी

असख्य नर नारी आपके दर्शनार्थ आने लगे। यहा आठ अप्रैल को सुप्रसिद्ध बगाली पडित श्री ताराचरण तर्करत्न के साथ मूर्ति पूजा के विषय पर आपका लम्बा शास्त्रार्थ चला। श्री तर्करत्न का कोई भी तर्क वितर्क स्वामी जी द्वारा मूर्ति पूजा के खण्डन मे प्रस्तुत किये गये तर्कों को न काट पाया। उन्होंने पराजय तो मान ली, किन्तु अपनी नौकरी से हाथ धो बैठने की आशका से सबके समक्ष इस तथ्य को स्वीकार करने मे सकोच बरता। किन्तु उसी सायकाल भाटपाडा के अनेक पडित स्वामी जी के समक्ष आए और उन्होने स्पष्ट शब्दो मे माना कि स्वामी जी के विचार ही सही हैं।

बर्दवान व भागलपुर मे

हुगली मे दस दिन ठहरकर वैदिक ज्ञान की पावन वैतरणी मे अनेकों श्रद्धालु और जिज्ञासु जनो को अवगाहन कराकर स्वामी जी बर्दवान पहुँचे। वहा महाराजा ने ही आपके आवास की व्यवस्था की। किन्तु उपदेश के समय सामान्य जनो से पृथक् कुर्सी बिछवाकर बैठने वाले बर्दवान नरेश से स्वामी जी ने वार्ता तक न की और उनके दम्भ को अपने इस व्यवहार से दूर करने का प्रयास किया।

बर्दवान से आप भागलपुर पहुँचे और वहा भी लगभग एक मास तक प्रवचन और उपदेश का अपना कार्यक्रम जारी रखा। १७ मई, १८७३ को भागलपुर से प्रस्थान कर अगले दिन स्वामी जी दूसरी बार पटना आए। ८ दिन तक पटना ठहरने के उपरान्त स्वामी जी ने छपरा मे डेरा लगाया और वहा हुए शास्त्रार्थ के दौरान उद्‌भट पौराणिक विद्वान् समझे जाने वाले पडित जगन्नाथ को परास्त कर अपना विजय केतु फहराया। हा, कतिपय पौराणिक पडितो ने तर्क का उत्तर तर्क से देने मे स्वय को असमर्थ पाकर गुलगपाडा करके अपनी पराजय पर पर्दा डालने को असफल प्रयास किया।

यहा से जब स्वामी जी ने आरा की ओर पग बढाया तो नगर के अनेक प्रमुख श्रीमन्तो और विद्वज्जनो का समूह आपको विदाई देने के लिये काफी दूर तक आपके साथ आया। ११ जून को स्वामी जी आरा पहुँचे और महाराज डुमराव की कोठी मे अपना डेरा लगाया। यहाँ रुद्र वस्त्र नामक एक पडित से जब मूर्तिपूजा विषय पर स्वामी जी का शास्त्रार्थ हुआ तो कुछ मिनट के उपरान्त ही वह निरुत्तर हो गया। स्वामी जी डुमराँव भी गए और कुछ दिन वहा आपका प्रवास रहा।

सत्य धर्म और पावन वैदिक ज्ञान से जनता जनार्दन को परिचित कराने की दृष्टि से स्वामी दयानन्द का अभियान पूर्ववत् जारी था। किसी एक स्थान पर बहुत समय तक ठहरना वह उचित न मानते थे। अतएव डुमराव से आपने पुन उत्तर प्रदेश की ओर प्रस्थान कर दिया।

—०—

पुनः उत्तर प्रदेश में

८ अगस्त, १८७३। बगाल और बिहार की लगभग १५ मास की अपनी प्रचार यात्रा समाप्त कर स्वामी दयानन्द ने उत्तर प्रदेश की प्रमुख नगरी मीरजापुर को पुन अपनी चरणरज से पावन किया। १५ मास की इस अवधि मे स्वामी जी की कीर्ति कौमुदी और भी अधिक छिटक चुकी थी। स्वामी जी ने अब अपने द्वारा स्थापित पाठशाला को अस्त-व्यस्त पाया तो उसे बन्द कर दिया। उन्होने उसके स्थान पर एक नवीन सस्कृत विद्यालय आरम्भ किया। इसमे श्री गजाधर नामक एक पडित की शिक्षक के नाते नियुक्ति की गई। स्वामी जी का स्थानीय हाई स्कूल मे भी भाषण हुआ।

कानपुर व लखनऊ में

मीरजापुर से स्वामी जी प्रयाग होते हुए कानपुर पहुँचे और वहा गगा तट पर तुका घाट मे आसन लगाया। यहा आपने एक प्रवचन मे जहा मृतको के श्राद्ध का खण्डन किया वहा यजुर्वेद के एक मन्त्र से यह भी बताया कि पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करती है।

यहाँ आपके कई सभाओ मे प्रवचन हुए, जिनमे अनेक जिज्ञासु यूरोपियनो ने भी सम्मिलित होकर वैदिक धर्म के इस महान् व्याख्याता की ज्ञान गगा से अपने को पवित्र कर स्वय को धन्य माना।

स्वामी जी २० अक्तूबर से ६ नवम्बर तक कानपुर के नरनारियो को पाखण्डो से सावधान कर सत्य का मार्ग समझाते रहे और धर्म के नाम पर प्रचलित अधार्मिक विश्वासो और मान्यताओ से हटने की शिक्षा देते रहे। लखनऊ मे प० गगाधर शास्त्री ने शास्त्रार्थ मे स्वामीजी के मूर्तिपूजा विरोधी तर्कों के समक्ष निरुत्तर होकर कतिपय श्रीमन्तो के सहयोग से अपनी विजय का ढिंढोरा पीट कर अपने मुह मिया मिट्ठू बनने की कहावत चरितार्थ की।

पुनः फर्रुखाबाद में

१८ नवम्बर, १८७३। सायकाल भगवान् दिवाकर अस्ताचल की ओर प्रस्थान कर रहे थे तो वैदिक धर्म के पावन प्रकाश को अग जग मे प्रस्फुटित

करने को कटिबद्ध महर्षि दयानन्द अपने परमस्नेही बाबू हेमचन्द्र चक्रवर्ती के साथ सडक मार्ग से फर्रुखाबाद की ओर बढ रहे थे। वे दोनो २१ नवम्बर को फर्रुखाबाद पहुँचे और उन्होने पाठशाला मे ही आसन लगाया।

गोरक्षा के महत्त्व का प्रतिपादन

बताया जाता है कि इस बार आज के उत्तर प्रदेश और तत्कालीन सयुक्त प्रान्त के लेफ्टीनेन्ट गवर्नर श्री म्योर एव इसी प्रान्त के शिक्षा निर्देशक श्री कोम्पसन से भी स्वामी जी की भेंट हुई। महर्षि दयानन्द के हृदय मे गोरक्षा का प्रबल भाव था। अतएव वार्त्तालाप के दौरान आपने श्री म्योर से आग्रह किया कि "अब आप अवकाश ग्रहण करने वाले हैं। स्वदेश वापस लौटकर आप वहाँ भारत सचिव को इस बात के लिये प्रेरित करें कि भारत मे गो-हत्या पर प्रतिबन्ध लगा दिया जाए। श्री म्योर ने भी स्वामी जी के कथन को पूर्ण मनोयोग पूर्वक सुनने के उपरान्त उन्हे इस दिशा मे प्रयत्न करने का आश्वासन दिया।

भ्रान्ति का निवारण

उन दिनो के एक प्रकाण्ड पण्डित श्री विशेश्वर दयाल शास्त्री के मन मे भी यह भ्रान्ति कतिपय स्वार्थी तत्त्वो ने उत्पन्न कर दी थी कि स्वामी दयानन्द को हिन्दुओ को पथभ्रष्ट करने के लिये ईसाइयो से धनराशि प्राप्त होती है। ऐसे तत्त्व यह प्रचार भी किया करते थे कि इस कारण स्वामी दयानन्द का मुख देखना भी पाप है। प० विशेश्वरदयाल ने स्वामी जी के पाण्डित्य एव ज्ञान की प्रशस्ति भी सुनी थी। अत वह स्वय सत्यान्वेषण के इच्छुक थे। एक दिन अर्धरात्रि मे वह स्वामी जी के निवास स्थान पर पहुँचे। वहा उन्होने स्वामी दयानन्द को समाधिस्थ पाया। अतः वह चुपचाप वही बैठ गये। जब स्वामी जी समाधि से उठे तो उन्होने पण्डित जी से इतनी रात गए आगमन का कारण पूछा। शास्त्री जी बोले कि आपके इस प्रश्न का उत्तर तो मैं बाद मे दूगा, पहले तो मै आपसे अपने प्रश्नो का सप्रमाण उत्तर चाहूँगा। शास्त्री जी जब स्वामी जी के उत्तरो से पूर्णत सतुष्ट हो गये तो अन्त मे आपने प्रश्न किया कि क्या ईसा मसीह ईश्वर के पुत्र थे ? जब स्वामी जी ने इस धारणा को गलत बताया तो शास्त्री जी मुस्कराते हुए बोले कि मेरे यहां आने का उद्देश्य तो यही जानना था कि स्वामी जी ईसाई अथवा उनके क्रीत दास तो नही। शास्त्री जी के मानस पर पडा भ्रान्ति का पर्दा हट गया और उन्हे दर्शन हुए देव दयानन्द के क्रान्तिकारी स्वरूप के। शका तिरोहित हो गई और श्रद्धा ने उसका स्थान ले लिया।

अलीगढ़ में ज्ञानामृत की वर्षा

फर्रुखाबाद से प्रस्थान कर स्वामी जी कासगंज एव जलेसर होते हुए २६ दिसम्बर १८७३ को धूमधाम सहित अलीगढ़ पहुँचे। वहा आपने अचल तालाब पर राजा जयकिशन दास का आतिथ्य ग्रहण किया। महाराज के आगमन का समाचार पाते ही समीपस्थ ग्रामो और नगरो के सैकडो आबाल-वृद्ध नर नारी आपके दर्शनार्थ आने लगे। अलीगढ मे आपका प्रथम प्रवचन २७ दिसम्बर को हुआ।

स्वदेशी पर जोर

यही एक दिन छावली निवासी कुवर ऊधोसिह अपने पिता ठाकुर भूपालसिह के साथ स्वामी जी के दर्शनार्थ पहुँचे। उस दिन श्री ऊधोसिह विदेशी वस्त्रो से सजे-सवरे हुए थे। वह कुछ दिनो तक जलेसर की पाठशाला मे अध्ययन करते रहे थे, अत· स्वामी जी उनसे भली भाति परिचित थे। स्वामी जी ने श्री ऊधोसिह को सप्रेम अपने समीप बुलाया और बोले "ऊधव! देखो तुम्हारे पिता जी कितने सादे, मोटे तथा स्वदेशी वस्त्र धारण करते है। उनको अपनी जाति तथा अन्य लोगो मे भारी आदर-सम्मान भी प्राप्त है। क्या तुम विदेशी कपडो से बने इन वस्त्रो को धारण कर अपने पिता से अधिक सुसभ्य एव सुसस्कृत हो गये हो? भइया, स्वदेश की वस्तु का उपयोग और व्यवहार ही श्रेयस्कर है।"

स्वामी जी के इस उपदेश ने ऊधोसिह की आँखें खोल दी और विदेशीयता के रग मे रगने की दिशा मे प्रवृत्त हुआ यह युवक पुनः स्वदेशी वस्त्रो को धारण कर विपथगामी होने से बच गया।

ठाकुर मुकुन्दसिह की प्रार्थना पर एक दिन स्वामी जी ने सामगान भी सुनाया जिसे श्रोताओ ने अनुपम आनन्ददायक एव कर्णप्रिय पाया।

सर सैयद अहमद भी तर्क बल के समक्ष झुके

जिन दिनो स्वामी दयानन्द अलीगढ़ मे वैदिक धर्म के वास्तविक स्वरूप का जनता जनार्दन को दर्शन करा रहे थे एव अज्ञान के सघन घनो को विदीर्ण कर ज्ञान का प्रकाश फैला रहे थे, सुप्रसिद्ध मुस्लिम नेता सर सैयद अहमद खा भी प्राय. उनसे भेंट करने आया करते थे। एक दिन अनेक सम्भ्रान्त मुस्लिम एव अग्रेज सज्जनो की उपस्थिति मे ही सर सैयद अहमद ने स्वामी जी से कहा "स्वामी जी! आपकी अन्य अनेक बातें तो बडी युक्तिसगत लगती हैं, किन्तु यह बात समझ मे नही आती कि आप सरीखे विचारवान विद्वान् को भी क्या इस बात पर विश्वास है कि थोडी सी हवन सामग्री के अग्नि समर्पण से वायु शुद्ध हो जाती है।"

महर्षि ने हवन का महत्त्व स्पष्ट करते हुए सर सैयदअहमद खा से प्रश्न किया "तनिक यह तो बताइए कि आपके यहा प्रति दिन कितने व्यक्तियो के लिए भोजन बनता है ?" उन्होने उत्तर दिया "लगभग ५०-६० के लिये।" स्वामी जी पुन. बोले "तो आपके यहा ५-६ सेर दाल तो एक बार मे पकाई ही जाती होगी।" वह बोले "जी हा।" देव दयानन्द ने पुन प्रश्न किया "कितनी हीग से छौंकी जाती होगी यह दाल ?" सर सैयद ने उत्तर दिया कि "एक माशा भर से कम तो क्या डाली जाती होगी ?" स्वामी जी ने पुनः प्रश्न किया "तो इतनी सी हीग से सारी दाल सुगधित हो जाती है ?" सर सैयद ने स्वीकार किया। उनकी स्वीकारोक्ति के बाद महर्षि ने शका का निवारण करते हुए कहा कि "जब एक माशा हीग से कई सेर दाल सुगधित हो जाती है तो क्या थोड़े से अग्निहोत्र से वायुमडल शुद्ध नही हो सकता ?"

सर सैयद स्वामी जी के तर्क के समक्ष लाजवाब हो गये और उन्होने स्वामी जी की प्रशसा करते हुए उनसे विदाई ली।

वृन्दावन मे

अलीगढ मे अनेक दिन तक धर्म के वास्तविक मर्म से जनता को अवगत कराने के उपरान्त स्वामीजी हाथरस होते हुए २६ फरवरी, १८७४ को प्रात दस बजे वृन्दावन पहुँचे। आपके वृन्दावन आगमन का प्रमुख उद्देश्य था श्री रगाचार्य से शास्त्रार्थ। स्वामी जी ने यहा राधा उद्यान मे अपना डेरा लगाया। वृन्दावन में प्रति वर्ष ही रथ यात्रा अथवा ब्रह्मोत्सव के अवसर पर सहस्रो व्यक्ति एकत्रित होते हैं। स्वामी जी इन्ही दिनो वृन्दावन मे थे और निर्भीकतापूर्वक तिलक छाप और मूर्ति पूजा का खडन कर रहे थे। स्वामी जी ने अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये श्री रगाचार्य को पत्र लिख कर शास्त्रार्थ हेतु आमन्त्रित किया। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि श्री रगाचार्य काशी के शास्त्रार्थ मे स्वामी जी के समक्ष पौराणिक पडितो की पराजय के वृत्तान्त से अवगत थे। अत उन्होने कहला भेजा कि मेले के कारण अवकाश नही है अत ऐसा आयोजन सम्भव न हो सकेगा। किन्तु मेले के सम्पन्न हो जाने के बाद भी उन्होने कहला दिया कि वह बीमार हैं अत शास्त्रार्थ होना सम्भव नही।

इस भाति श्री रगाचार्य तो स्वामी जी के समक्ष मैदान मे डटने से कतरा रहे थे, किन्तु उनके कतिपय धूर्त शिष्यो ने कायरता का सहारा लिया और स्वामी जी को अपमानित करने के लिये कई ओछे हथकण्डे अपनाये। किन्तु इन सबसे स्वामी जी की कीर्ति कौमुदी अप्रभावित ही रही और वृन्दावन मे वैदिक धर्म के सत्य स्वरूप का प्रकाश कर अज्ञान के अन्धकार से अनेको को उबार कर देव दयानन्द मथुरा जा पहुँचे।

स्वामी जी के मथुरा पधारने से पूर्व तो उनसे शास्त्रार्थ की बड़ यहा की पडित मडली खूब हाकती थी। किन्तु अब महर्षि मथुरा आ विराजे तो सभी का साहस उनका साथ छोड गया। एक दिन यह योजना अवश्य ही बनाई गई कि सैकडो लोगो द्वारा अकेले योगी दयानन्द पर आक्रमण कर अपने हलवे माडे की दुकान चलाए रखने का कार्य सम्पन्न किया जाए। यह उपद्रवी मडली स्वामी जी के निवास स्थान पर पहुँची। अपशब्दो की बौछार तो की किन्तु स्वामी जी के भक्त कतिपय राजपूतो के वहा डटे रहने के कारण उनका और कुछ कर पाने का साहस न हो पाया और वे सभी अपना-सा मुह लिये लौट गये।

दुर्जन भी सम्पर्क से सज्जन बने

अनेक लोगो के मन मे स्वामी जी के प्रति द्वेष और डाह की भावनायें बढती जा रही थी। वे तर्क और विद्वत्ता के समक्ष तो ठहर न पाते थे अत उन्होने छल छद्म को ही अपना अवलम्बन बनाया। ऐसे ही लोगो मे से एक था मागीलाल मुनीम। उसने स्वामी जी को अपमानित करने के लिये एक षड्यत्र रचा। एक दिन जब श्री लक्ष्मीदास के निवास स्थान पर स्वामी जी का उपदेश हो रहा था तो वहा एक शराब का दुकानदार एव एक कसाई पहुँचा। वे दोनो ही एक साथ बोले "महाराज! आपकी ओर बहुत दिनो का लेखा हो गया। दाम देकर चुका दीजिए न।"

उनके इस वाक्य को सुनते ही वहाँ उपस्थित अनेक श्रोताओ के नेत्र रक्ताभ हो उठे। उनकी मुठ्ठिया भिच गई और इससे पूर्व कि वे धूर्तों को दण्ड देते, स्वामी जी का स्वर गूजा "आप लोग शान्त रहिए।" प्रवचन जारी रहा। उसके समाप्त होते ही स्वामी जी ने शराब विक्रेता और कसाई को अपने समीप बुलाया और पूछा "भाई सच बताओ कि तुम्हे यह सब कुछ कहने के लिये किसने यहा भिजवाया था?" स्वामी जी के तेजस्वी मुख मण्डल की ओर क्षण भर निहारते ही उनके कुविचार कपूर तुल्य उड गये और सद विवेक उभर उठा। वे नितान्त कातर भाव से जा बोले "स्वामी जी, हमे तो मागी लाल मुनीम ने कहा था कि तुम सभा मे ओ और एक साथ यह वाक्य दोहराओ तो मैं तुम्हें कुछ इनाम दूगा। यदि हमे पता होता कि आपको बुरा लगेगा तो हम कदापि ऐसी धृष्टता न करते।" स्वामी जी ने उन्हें क्षमा दान दे दिया, किन्तु नगर के सभी विवेकशील जनो ने मागीलाल की निन्दा की।

इसी प्रकार कतिपय दुष्टो की एक मण्डली ने एक दिन एक दुराचारिणी नारी को पट्टी पढा कर स्वामी जी के व्याख्यान स्थल पर भेज दिया। वह मार्ग मे तो बहुत कुछ बडबडाती जा रही थी किन्तु ज्यो ही वह सभा मे पहुँची और उसने युग पुरुष दयानन्द के उद्दीप्त मुख मडल को निहारा तो उसके

हृदय का सम्पूर्ण कलुष धुल गया। उसके हृदय मे इस महामानव के प्रति श्रद्धा का उद्भव हुआ और वह उनके समीप पहुँची तथा भूमि पर गिर कर उसने स्वामी जी से क्षमा याचना की। उसने रो-रो कर अपना आचल भिगो लिया। तभी स्वामी जी ने उसे सम्बोधित करते हुए कहा, "देवि ! प्रभु तुम्हारी इस समय की सुमति को स्थिर रखे।"

पुन प्रयाग मे

मथुरा से प्रस्थान कर स्वामी जी मीरजापुर आदि कई नगरो की यात्रा कर प्रयाग पहुँचे और वहा अलोपी देवी के उद्यान मे ठहरे। उनके नगरागमन का समाचार फैलते ही श्रद्धालु और जिज्ञासु नरनारियो, अध्यापको एव भद्र-जनो की भारी भीड उनके पास आने लगी। स्वामी जी ने अपनी इस बार की प्रयाग यात्रा मे ईसाई मत की कडी टीका टिप्पणी की तो मैक्समूलर द्वारा किए गए वेद भाष्य को भी भ्रम मूलक निरूपित किया।

प्रयाग के एक प्रमुख विद्वान् श्री काशीनाथ शास्त्री एक दिन स्वामी जी के पास आए और बोले "भगवन् ! आपने किस लिए सारे देश मे कोलाहल मचा रखा है ?" स्वामी जी ने शान्त भाव से उत्तर दिया "पण्डित जी, पथो के प्रेरक पडितो ने लोगो को भ्रम जाल मे जकड दिया है। जड-पूजन के प्रचार के परिणाम स्वरूप जनता की बुद्धि मे भी जडता ही जड जमाती जा रही है। आज तो देशवासियो मे सत्यासत्य का विवेक भी मन्द होता जा रहा है। मैं इस सकटापन्न अवस्था मे देशवासियो को उबारने के लिए ही प्रयत्नशील हूँ।" स्वामी जी के इस उत्तर को सुन कर श्री काशीनाथ की भ्रान्ति का निवारण हो गया।

योगबल का चमत्कार

प्रयाग मे देव दयानन्द की विद्वत्ता के साथ ही साथ उनके योगबल की चर्चा भी चतुर्दिक् व्याप्त हो रही थी। पडित ठाकुर दास भी इन जिज्ञासु जनों मे एक थे, जो स्वामी जी को योग मुद्रा मे देखने की तीव्र आकाक्षा अपने हृदय मे सजोये थे। एक दिन वह उस समय स्वामी जी के निवास स्थान पर पहुँचे जब वह ध्यानमग्न थे। सेवको से अनुमति प्राप्त कर जब पडित जी ने कुटिया मे प्रवेश किया तो उन्होने देखा कि स्वामी जी का आसन धीरे-धीरे भूमि से उठा और अधर मे स्थित हो गया। उस समय देव दयानन्द के मुख मण्डल पर चतुर्दिक् प्रकाशमान चक्र भी उन्हें दृष्टिगोचर हुआ।

इसी प्रकार महर्षि के योग बल के चमत्कार की एक और घटना भी यहीं अनेक श्रद्धालु जनो ने प्रत्यक्ष देखी थी। एक दिन पडित सुन्दर लाल कई अन्य व्यक्तियो के साथ स्वामी जी के दर्शनार्थ आए तो स्वामी जी ध्यानमग्न

अवस्था में थे । अत वे सब कुटिया के द्वार के बाहर ही प्रतीक्षा मे बैठे रहे । लगभग आधा घण्टा बाद स्वामी जी हसते हुए कुटिया से बाहर निकले तो पडित जी ने पूछा "भगवन् ! आप किस कारण हस रहे हैं ।" स्वामी जी ने उत्तर दिया "एक व्यक्ति इधर ही आ रहा है । कुछ क्षण प्रतीक्षा कीजिए तो आपको एक कौतुक देखने को मिलेगा ।"

कुछ ही क्षण बीते थे कि एक ब्राह्मण वहा पहुँचा और "नमोनारायण" कहते हुए स्वामी जी के समक्ष मिष्टान्न से भरा एक पात्र रखते हुए बोला "स्वामी जी भोग लगाइए ।" महर्षि हसते हुए बोले "विप्रदेव, कुछ प्रसाद तो इसमें से आप भी ग्रहण कीजिए ।" किन्तु ब्राह्मण की कपकपी छूट गई । स्वामी जी गरजे "तुम हमारे लिये विष-मिश्रित मिष्टान्न लाए हो ।" पडित सुन्दर लाल सुनते ही उठे और पुलिस को बुलाने हेतु जाने लगे । किन्तु स्वामी जी बोले "यह तो स्वय ही अपने पाप से काप रहा है । रहने दीजिए, इसे पर्याप्त दण्ड मिल गया है । महाराज ने दया की वृष्टि करते हुए उस ब्राह्मण को क्षमा दान दे अपने दयानन्द नाम को सार्थक कर दिखाया ।

इस प्रकार स्वामी जी अपने शारीरिक सुख दु ख की चिन्ता से सर्वथा मुक्त हो अपने नियत कार्य की पूर्ति मे अहर्निश लगे रहते थे । प्रयाग नगरी की गली-गली में उनके नाम, ज्ञान, योग बल तथा विद्वत्ता की चर्चा हो रही थी । वह लाखो लोगो की मुक्ति और कल्याण को ही अपने जीवन का ध्येय बनाये दीन दु खी और पाखण्ड लीलाओ से मोहित जन-जन की प्रगाढ निद्रा को तोड कर उन्हे जगाने के कार्य मे तन्मयता से लगे हुए थे ।

उन्ही दिनो बम्बई के श्रद्धालु जन स्वामी जी को बार-बार बम्बई पधारने के लिये निमत्रण भिजवा रहे थे । वहा के सैकडो भक्त जन स्वामी जी के दर्शनो और उपदेशो के श्रवण की साध को हृदय मे बसाए प्रतिक्षण उस शुभ घडी की प्रतीक्षा मे रत थे, जब स्वामी दयानन्द बम्बई नगरी को अपनी चरणरज मे पावन कर उन सब को कृतार्थ करेगे । अन्तत उन सबकी प्रार्थना को स्वीकार कर स्वामी जी ने गगा, यमुना और सरस्वती के इस सगम स्थल से विदा लेकर महासिन्धु के तटवर्ती मुम्बई (बम्बई) के लिये प्रस्थान कर दिया ।

———०००———

बम्बई, गुजरात और महाराष्ट्र की यात्रा

२६ अक्तूबर १८७४। स्वामी दयानन्द का महानगरी बम्बई मे पदार्पण हुआ। सैकडो प्रतीक्षारत भक्त जनो के हृदय कमल खिल उठे। जब स्वामी जी रेलवे स्टेशन पर पहुँचे तो नगर के अनेक सभ्रान्त और गण्यमान्य नागरिको ने तुमुल जयघोष से इस युग पुरुष का अभिनन्दन किया। उन्होने बालकेश्वर मे स्वामी जी के निवास की व्यवस्था की।

बम्बई मे स्वामी जी के उपदेशो का क्रम आरम्भ हुआ। यहा उन दिनो वल्लभ सम्प्रदाय की विशेष धूम थी। अत स्वामी जी के खण्डन का विशेष जोर भी बल्लभ सम्प्रदाय पर ही था। इस आलोचना से क्रुद्ध होकर जीवन जी गोस्वामी ने स्वामी जी के रसोइए बलदेवसिह को प्रलोभन दिया कि यदि वह स्वामी दयानन्द को भोजन मे विष दे-दे तो उसे एक सहस्र रुपये दिये जाएगे।

किन्तु इस षडयन्त्र मे सम्मिलित होने के उपरान्त बलदेव सिह ज्यो ही वापस लौटा, स्वामी जी ने उस पर दृष्टि डालते ही पहला प्रश्न किया "बलदेव सिह, क्या तुम गोसाइयो के यहा होकर आ रहे हो ? सच-सच बताना कि क्या कुछ योजना बनाई गई थी ?" बलदेवसिह ने गिडगिडाते हुए स्वामी जी के चरण स्पर्श किये और सारे षड्यन्त्र की कलई खोल दी। उदारमना दया की मूर्ति स्वामी जी ने उसे क्षमादान दे दिया।

लेखन कार्य भी

बम्बई मे स्वामी जी जहा मूर्तिपूजा के खण्डन मे प्रवृत्त हुए वहा लेखन कार्य की ओर भी। सत्यार्थप्रकाश तो बम्बई आगमन से दो मास पूर्व ही लिख कर आप राजा जयकृष्णदास जी को मुद्रित कराने दे आए थे, यहाँ आपने वल्लभाचार्य मत खण्डन, वेदान्त-ध्वाति निवारण एव स्वामी नारायण मत खण्डन पुस्तकें लिखीं और प्रकाशित कराईं। इन्ही दिनो सस्कार विधि का लेखन कार्य भी जारी था।

आर्यसमाज स्थापना का विचार

स्वामी दयानन्द द्वारा प्रतिपादित सत्य धर्म के मर्म को ग्रहण कर अनेक सज्जन उनके विचारो के प्रचार और प्रसार की आवश्यकता अनुभव करने

लगे थे। मार्गशीर्ष मास सवत् १९३२ मे ऐसे ही अनेक भक्तजन एक दिन महर्षि के पास आए और उन्होने एक सस्था की स्थापना का विचार व्यक्त करते हुए स्वामी जी से उसके नामकरण की इच्छा व्यक्त की। स्वामी जी कुछ क्षण ध्यानावस्थित हुए और बोले "इस सस्था का नाम आर्यसमाज होना चाहिए।" उपस्थित सज्जनो ने तुरन्त इस नाम का अनुमोदन कर दिया। किन्तु अनेक अपरिहार्य कारणो से उस समय आर्यसमाज की स्थापना सम्भव न हो सकी।

अपनो के पाषाण भी पुष्प समान

बम्बई मे अपने उपदेशो की वर्षा कर स्वामी जी गुर्जर देश (गुजरात) की सुप्रसिद्ध नगरी सूरत पधारे। यहाँ जब स्वामी जी का पाचवा भाषण जब श्री नर्मदा शकर के निवास स्थान पर हो रहा था तो वहा कुछ उपद्रवियो ने पथराव कर उपद्रव कर दिया। स्वामी जी के भक्तो ने उनसे प्रवचन स्थगित करने का अनुरोध किया तो वे बोले "अपने भाइयो द्वारा फेंके जा रहे ये पाषाण भी मेरे लिये पुष्प समान है। मै अपना प्रवचन तो समय पर ही समाप्त करू गा। उन्होने ऐसा ही किया। उपद्रवी भी उनके साहस और धैर्य के समक्ष परास्त हो गए।

यहाँ अनेक युवको और बालको को उन्होने ब्रह्मचर्य की महत्ता और मादक वस्तुओ के सेवन की हानियो से अवगत कराया।

भले बुरे सब अपने

सूरत से महर्षि भडौच पधारे। प्रतिदिन सायकाल उपदेशो का सिलसिला आरम्भ हुआ। एक दिन माधवराव त्र्यम्बक नामक एक पौराणिक ने सभा स्थल मे प्रवेश कर स्वामी जी को मूर्तिपूजा पर शास्त्रार्थ करने की चुनौती दी। किन्तु एक दो प्रश्नो के उत्तर के उपरान्त ही वह लडखडा गया। वह विद्या बल से परास्त होकर गाली गलौज पर उतर आया। उसके अपशब्दो से क्षुब्ध हुए स्वामी जी के सेवक बलदेव ने जब अपने रौद्र रूप का प्रदर्शन किया तो दयानिधान दयानन्द उसे शान्त करते हुए बोले "बलदेव ! किन पर कोप कर रहे हो तुम ? ये अपने ही भाई तो हैं। इन्ही की कल्याण कामना मे तो मैं अहर्निश लगा हूँ। बलदेव तो शान्त हो गया किन्तु त्र्यम्बक वहा दो क्षण भी खडे रहने का साहस न सजो पाया और नौ दो ग्यारह हो गया।

आर्य मर्यादा के सूत्र

स्वामी जी अपने निकट सम्पर्क मे रहने वालो को आर्य मर्यादा का पालन करने के लिये सदैव प्रेरित करते रहते थे। वह भोजन के उपरान्त

सेवको को कुछ काल के लिये विश्राम का अवसर प्रदान करते तो विद्यार्थियो को भी मर्यादा पालन का मर्म समझाते रहते थे। एक दिन एक विद्यार्थी स्वामी जी की ओर पाव पसार कर सो गया। जब सारे सेवक तथा विद्यार्थी आदि जागे तो स्वामी जी ने सभी को एकत्र कर आर्य मर्यादा का मर्म समझाते हुए कहा "प्रत्येक आर्यजन के लिये आर्य मर्यादा का पालन करना आवश्यक है। बिना बुलाए बोलना, बडो को वार्ता मे हस्तक्षेप करना वैदिक मर्यादा के प्रतिकूल है। इसी भाति अपने माननीय जनो की ओर पीठ करना तथा पाव पसार कर सो जाना भी मर्यादा विरुद्ध है।" स्वामी जी के उपदेश को सुनकर उपरोक्त विद्यार्थी ने उनके श्री चरणो को स्पर्श कर अपनी भूल का पश्चात्ताप कर भविष्य मे ऐसा न करने का सकल्प ग्रहण किया।

यदि ऐसा न होगा तो .....

महर्षि दयानन्द अपने व्यवहार से भी अपने सेवको और श्रद्धालुओ को मर्यादित जीवन का मर्म समझाया करते थे। एक दिन भडौंच मे पडित कृष्णराम इच्छाराम ज्वर पीडित हो गए तो स्वामी जी उनका सिर दबाने लगे। लज्जित हुए पडित जी ने स्वामी दयानन्द को ऐसा करने से रोकने का प्रयास किया तो वह बोले "यदि बडे आवश्यकता पडने पर छोटो की सेवा न करेंगे तो छोटो मे सेवा भावना का सृजन कैसे होगा ?"

=×=

पुनः बम्बई में : आर्यसमाज की स्थापना

स्वामी जी भडौच से अहमदाबाद पहुँचे और वहा दो सप्ताह से भी अधिक समय तक वैदिक ज्ञान की अमृत वर्षा करते रहे। यहाँ अनेक प्रबुद्ध जनो ने आपके ज्ञान और विद्वत्ता से नया प्रकाश पाया। प्रतिदिन सहस्रो नर-नारी यहा आपके उपदेश सुनने आते। शास्त्रार्थ के लिये कोई भी पौराणिक पडित साहस न सजो पाया। "टाइम्स आफ इण्डिया" के ४ जनवरी, १८७५ के अक मे स्वामी जी की अहमदाबाद यात्रा का विवरण देते हुए यह भी घोषित किया गया "वह (स्वामी जी) वेदो के ही प्रकाण्ड पण्डित नही, अपितु उन्हे सभी हिन्दू शास्त्रो का भी पर्याप्त ज्ञान है एव जैनियो, ईसाइयो और मुस्लिमो के धर्म ग्रन्थो से भी वह परिचित हैं।"

स्वामी जी अहमदाबाद से एक दिन के लिये नडियाद भी गए और अहमदाबाद होकर राजकोट पहुँचे। यहाँ के राजकुमार कालेज के अनेक छात्र

आपके प्रवचनो को सुनने उपस्थित होते थे। स्वामी जी की राजकोट यात्रा की सफलता का विवरण "हितेच्छु" नामक समाचार पत्र के सवाददाता ने २१ जनवरी को प्रकाशित एक लेख मे इन शब्दो मे दिया .—

"राजकोट के अधिकतर शिक्षितजनो ने स्वामी जी की शिक्षाओ को अंगीकार किया है।" इसमे यह भी कहा गया है कि "जब नियम मुद्रित हो गए तो ३० व्यक्तियों ने उनको मान्य कर आर्यसमाज मे प्रवेश किया।" राजकोट की आर्यसमाज ५-६ मास तक ही सक्रिय रह सकी।

गुजरात के कतिपय अन्य क्षेत्रो का भ्रमण कर स्वामी जी २६ जनवरी, १८७५ को पुनः वेदो का नाद गु जाने के लिये बम्बई महानगरी मे आ विराजे।

आर्यसमाज का नामकरण तो इससे पूर्व स्वामी जी कर ही चुके थे, इस बार महर्षि ने जिज्ञासु जनो को पुन प्रेरणा प्रदान की आर उन्होने सर्वसम्मति से राजमान्य राजेश्वर पाना चन्द्र आनन्दजी पारिख को समाज के नियमोपनियम बनाने का अधिकार प्रदान किया। श्री पारिख ने थोडे ही दिनो मे नियम प्रस्तुत किए। स्वामी जी द्वारा भी इन नियमो का हार्दिक अनुमोदन कर दिए जाने के उपरान्त विक्रमाब्द १९३२, चैत्र शुक्ला प्रतिपदा बुधवार तदनुसार ७ अप्रैल, १८७५ को साय ५॥ बजे बम्बई के गिरगाँव क्षेत्र स्थित डा० माणिकचन्द्र जी की वाटिका मे आर्यसमाज की विधिवत् स्थापना का कार्य सम्पन्न हुआ। उस समाज की सदस्य सख्या लगभग १०० थी और प्रथम प्रधान श्री गिरधारीलाल दयालदास कोठारी तथा मन्त्री श्री कृष्णदास चुने गये। स्वामी जी ने श्रद्धालु जनो के नितान्त आग्रह पर समाज की साधारण सदस्यता ही स्वीकार की। उस समय समाज के २८ नियम बनाये गये थे, किन्तु कुछ समय बाद जब लाहौर मे आर्यसमाज की स्थापना हुई तो दस नियम अन्तिम रूप से स्वीकृत किये गए।

श्यामजी कृष्ण वर्मा सम्पर्क में आए

बम्बई मे ही एक दिन प० श्यामजी कृष्ण वर्मा ने जो अत्यन्त मेधावी युवक थे स्वामी दयानन्द से भेंट की। श्याम जी को सस्कृत के अध्ययन मे गहन रुचि थी। वह अपनी प्रथम भेंट मे ही स्वामी दयानन्द के प्रति अनुरक्त होगए और उन्होने उन्हे गुरु स्वीकार कर उनसे पाणिनि व्याकरण का ज्ञान प्राप्त करना आरम्भ किया। स्वामी जी को भी श्यामजी के रूप मे एक सुयोग्य शिष्य प्राप्त हो गया था। इस दूरदर्शी युग पुरुष ने सोचा की यदि श्यामजी इगलैण्ड चले जाए तो वह वहा उच्च शिक्षा प्राप्त कर सकेंगे और साथ ही वैदिक धर्म के प्रचारक भी सिद्ध होगे। स्वामी जी ने ही श्री वर्मा का सुप्रसिद्ध प्राध्यापक मोनियर विलियम्स से परिचय करा दिया तथा उन्हे आक्सफोर्ड भेजने की

व्यवस्था करा दी। बम्बई के सुप्रसिद्ध ऋषि भक्त सेठ छबील दास लाल भाई ने अपनी पुत्री भानुमती का विवाह श्यामजी से कर दिया। यही श्याम-जी कृष्ण वर्मा ब्रिटेन मे भारतीय क्रान्तिकारियो मे अग्रगण्य हुए और महर्षिने इन्हे स्वतत्रता की महत्ता का जो पाठ पढाया था, उसी को हृदयगम कर ये आजीवन भारत भूमि को विदेशी दासता से मुक्ति दिलाने के लिये सक्रिय रहे और स्वातन्त्र्यवीर विनायक दामोदर सावरकर एव मैडम कामा सरीखे भारतीय स्वातन्त्र्य युद्ध के वरेण्य योद्धाओ को इन्होने भरपूर सहयोग दिया।

श्री रानाडे के निमन्त्रण पर पूना मे

स्वामी दयानन्द के पाण्डित्य, विद्वत्ता और धर्म के वास्तविक मर्म की व्याख्या की चर्चा बम्बई की गलीगली मे ही नही अपितु आस पास के नगरो मे भी जोर शोर से होने लगी थी। सुप्रसिद्ध देशभक्त श्री महादेव गोविन्द रानाडे उन दिनो पूना मे जिला न्यायाधीश थे। उन्होने तथा श्री मोरेश्वर कुण्टे ने स्वामीजी को पूना आने का निमत्रण दिया। उनके निमत्रण पर स्वामी दयानन्द आषाढ बदि १३ स० १६३२ को पूना पधारे और वहा विट्ठल पेठ मे श्री शकर सेठ के निवासस्थान पर ठहरे। यहा नगर स्थित भिडे के बाडे तथा छावनी स्थित मराठी विद्यालय मे उनके कुल मिला कर लगभग ५० भाषण हुए। इनमे से १५ व्याख्यान नगर मे हुए जो उपदेश मजरी के नाम से पुस्तक रूप मे प्राप्य है। उनके इन भाषणो से पेशवाओ की यह ऐतिहासिक नगरी वास्तविक वैदिक धर्म के जय नाद से निनादित हो उठी।

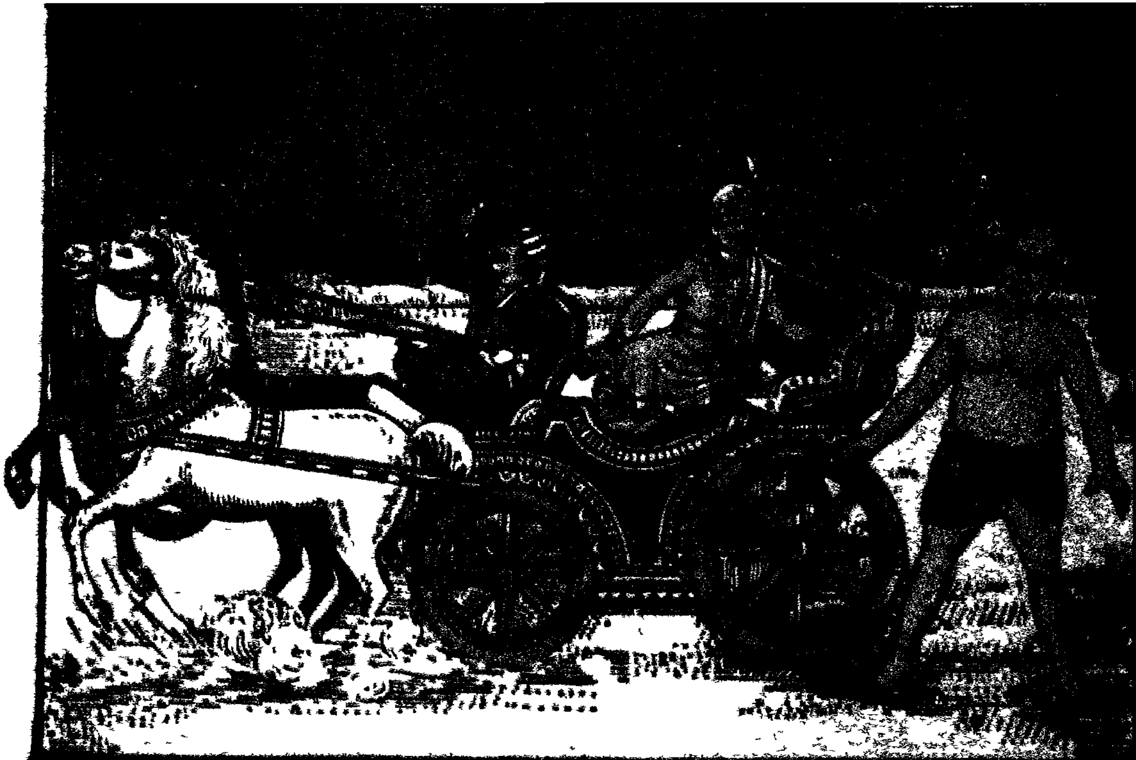
धम के नाम पर आडम्बर, सत्य का नाम लेकर असत्य का प्रतिपादन और परम्पराओ की आड मे कुरीतियो को बढावा देने वाले तत्त्वो के हृदय मे युग पुरुष दयानन्द का सत्यान्वेषण शूल सा चुभा। अत उन्होने पूना मे स्वामी जी की उपस्थिति को उपद्रवो का अवसर बनाने के अनेक उपक्रम किए। कई स्थानीय समाचार पत्रो मे भी महर्षि के विरुद्ध विषवमन किया गया। उनकी यह दुरभिसधि जब सफल न हो पाई तो उन्होने स्वामी जी की पूना से विदाई यात्रा के समय अपनी मानसिक भडास निकालने का उपक्रम किया।

यथा नाम तथा गुण

ऋषि भक्तो ने स्वामी जी को पूना से विदा देने के लिये एक भव्य शोभा यात्रा की व्यवस्था की। विदाई के समय सायकाल स्वामी दयानन्द का व्याख्यान समाप्त होने के उपरान्त श्रोताओ ने उन पर श्रद्धा सुमन समर्पित किए। यद्यपि स्वामी जी की शोभा यात्रा मे उन्हे एक सजाए हुए हाथी पर बैठा कर ले जाने की व्यवस्था की गई थी किन्तु लोकैषणा से सर्वथा मुक्त इस महामानव ने पैदल ही चलना श्रेयस्कर समझा। शोभा यात्रा के प्रारम्भ मे



मेलाचादपुर में मौलवी और पादरी को पराजित कर वैदिक धर्म की महत्ता
स्वामी दयानन्द ने सभी के हृदय पर बिठा दी।



अपूर्व बली दयानन्द जालधर मे दो घोड़ों की बग्घी एक हाथ से रोक ली

जहा ३००, ४०० व्यक्ति थे, वहा नगर तक पहुँचते सहस्रो नर नारियो का जन समूह इसमे सम्मिलित हो गया।

विरोधियों ने अपनी ईर्ष्यालुता का परिचय देते हुए इस शोभा यात्रा के मुकाबले मे गर्दभ यात्रा आयोजित की। इसमें एक गर्दभ को गैरिक वस्त्र धारण करा, उस पर गर्दभानन्द सरस्वती लिख दिया गया। एक स्थान पर जब दोनों जन समूह आमने सामने आ गए तो महर्षि के विरोधियो ने 'स्वामी गर्दभानन्द की जय' की घोषणा कर ऋषि भक्तो को उत्तेजित किया। ऋषि भक्तो की शिकायत पर गधे को पकड कर पुलिस ने अपने सरक्षण मे ले लिया। इसी समय गर्दभ दल वालो ने मशालें बुझा दी और स्वामी जी के भक्तों पर पथराव आरम्भ कर दिया तथा कीचड आदि भी फेंका। पुलिस पहले तो मूक दर्शक बनी रही। किन्तु बाद मे पुलिस अधीक्षक ने स्वय एकसौ सिपाहियो सहित पहुँच कर इस उपद्रव को बढने से रोका। उस समय तक स्वामीजी की शोभा यात्रा व्याख्यान स्थल अर्थात् भिडे के बाड़े पर पहुँच चुकी थी। शान्ति स्थापित होते ही महर्षि का व्याख्यान आरम्भ हुआ। किन्तु दयानन्द नाम को सार्थक सिद्ध करते हुए युग निर्माता ने उस सारी घटना का किंचित् मात्र भी उल्लेख न किया। वह सदैव की भाति शान्त और प्रसन्नमना अपनी अमृत वाणी से धर्म सुधा सरसाते रहे। व्याख्यान के समापन पर प० रघुनाथ शास्त्री ने स्वामी जी का आभार व्यक्त करते हुए यह भी कहा "प्रभो ! आज आपने अपना दयानन्द नाम सार्थक कर दिखाया है।" महर्षि को इस अवसर पर वेद भाष्य हेतु २५० रुपये समर्पित किए गए। तदुपरान्त महर्षि के जय नाद के साथ सभा विसर्जित हुई।

बड़ौदा के प्रधान मन्त्री का श्रद्धा ज्ञापन

पूना से सतारा एव वहा से पूना होते हुए स्वामीजी १६ अक्तूबर १८७५ को पुनः बम्बई आ विराजे। यहा ३० अक्तूबर को आर्य नव वर्ष पर आपका भाषण हुआ। कुछ दिन ठहरने के उपरान्त आप बडौदा प्रस्थान कर गए। वहा भी आपके कई भाषण हुए, जिनमे राज्य के अनेक मन्त्री और वरिष्ठ अधिकारी भी उपस्थित होते थे। यहा अनेक ब्राह्मणो ने आपके समक्ष शास्त्रार्थ मे मुह की खाई। स्वामी जी ने यहा सत्ताधीशो के कर्तव्य पर भी एक व्याख्यान दिया, जिसे सुनने के लिये बडौदा राज्य के प्रधान मन्त्री श्री टी० माधवराव भी उपस्थित थे। उन्होने महर्षि की विद्वत्ता के प्रति श्रद्धा ज्ञापन करते हुए कहा "स्वामी जी को राजनीति का ज्ञान मुझ से १०० गुना अधिक है।" उन्होंने स्वामी जी को एक हजार रुपया भेंट देने चाहे तो ऋषि ने यह कह कर उन्हे लेना अस्वीकार कर दिया कि मे वल्लभाचार्यों के समान व्यापारी नही हूँ।

प्रो० मोनियर विलियम्स से वार्ता

बडोदा से स्वामीजी भडोच एव सूरत होते हुए बलसाड पहुँचे और वहा से पुनः बम्बई पधारे। ५ मार्च, १८७६ को वेदो की श्रेष्ठता एव पवित्रता विषय पर स्वामी जी के व्याख्यान पोलेन मार्ग स्थित गोविन्द विष्णु इगलिश विद्यालय मे आयोजित हुए। इसमे बम्बई के प्रमुख हिन्दू नेताओ के अतिरिक्त सुप्रसिद्ध सस्कृत विद्वान् प्रो० मोनियर विलियम्स भी उपस्थित थे। व्याख्यान के उपरान्त प्रो० विलियम्स से स्वामी जी का बहुत देर तक सस्कृत मे सम्भाषण हुआ। विदा होते हुए श्री विलियम्स ने स्वामी जी की विविध विद्याओ के पाण्डित्य, उनकी व्याख्यान शैली की भी मुक्त कठ से प्रशसा की।

इन्दौर मे अमृत वर्षा

अप्रैल १८७६ मे स्वामी ने बम्बई से इन्दौर के लिये प्रस्थान किया। वहाँ उनके ठहरने की व्यवस्था प्रमुख नागरिक डा० गणपति सिंह द्वारा की गई। स्वामी जी के व्याख्यान सुनने प्रति दिन अनेक प्रतिष्ठित नागरिक तो आते ही थे, एक दिन स्वय इन्दौर नरेश महाराजा तुकोजी राव होलकर भी स्वामी जी का व्याख्यान सुनने के लिये हाई स्कूल मे पधारे। तदुपरान्त इन्दौर नरेश ने कई बार स्वामी जी से भेंट की। यद्यपि महाराजा शिव भक्त थे, किन्तु उन्होने स्वामी जी के प्रति पूर्ण आदर भावना व्यक्त की। स्वामी जी ने उन्हे शासन के कतिपय सिद्धान्त भी लिख कर दिए। महाराजा ने स्वामी जी के वेद भाष्य की ५० प्रतिया खरीदने का वचन दिया।

स्वामी जी को महाराज इन्दौर ने एक शाल भेंट करने का प्रयास किया, किन्तु महर्षि ने उन्हे यह उत्तर देकर अपनी त्यागवृत्ति का परिचय दिया कि यदि इसी भाति प्रत्येक नरेश मुझे एक शाल देने लगा तो मैं शालो का भण्डार ही पा जाऊगा। अच्छा है कि आप यह शाल शीत से बचने के लिये किसी ऐसे व्यक्ति को दे दें, जिसे इसकी आवश्यकता हो।

उत्तर प्रदेश की तृतीय यात्रा

इन्दौर मे प्रस्थान कर स्वामी जी ९ मई १८७६ को फर्रूखाबाद पधारे। यह आपकी पाचवी फर्रूखाबाद यात्रा थी। आप लाला जगन्नाथ के विश्रान्ति गृह पर विराजे। इस बार यहाँ आपके चार व्याख्यान हुए। इसके साथ ही आपने अपने द्वारा स्थापित पाठशालाओ की स्थिति का भी अवलोकन किया। उसमे सतुष्ट न होकर आपने इन्हे तोड दिया।

तो फिर उड़ा दो

यहाँ ईसाई पादरी जे० जे० लूकस के साथ स्वामी जी की धर्म चर्चा हुई। एक दिन उन्होने स्वामी जी से प्रश्न किया 'स्वामीजी यदि आपको तोप के मुह से बाध कर कहा जाए कि यदि आप मूर्ति के समक्ष नतमस्तक न होंगे तो आपको तोप से उडा दिया जाएगा तो आपका उत्तर क्या होगा ?" स्वामी जी ने प्रबल आत्म विश्वास का परिचय दिया और बोले उस समय मेरे मुह से यही निकलेगा "तो फिर उडा दो।"

अनेक नगरो का भ्रमण

स्वामीजी ने इस बार यह घोषणा करके फर्रुखाबाद से विदा ली कि जबतक इस नगर मे आर्यसमाज की स्थापना नही होगी, मैं पुन यहाँ नहीं आऊगा। २४ मई, १८७६ को स्वामी जी ने इस नगर से प्रस्थान किया। २७ मई को आप काशी पहुँचे। वहाँ आपने अपना अधिकाश समय वेद भाष्य प्रकाशन की व्यवस्था मे लगाया। वहा आपने ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका के छपाने का भी प्रबन्ध किया।

बनारस से १४ अगस्त को प्रस्थान कर स्वामी जी अगले दिन जौनपुर पहुँचे और तीन दिन तक वहाँ ठहरने के बाद १८ अगस्त को अयोध्या चले गए। यहाँ शास्त्रार्थ के लिये आपकी चुनौती का सामना करने का दिखावा कुछ वैरागियो ने किया, किन्तु कोई भी शास्त्रार्थ के लिये सूर्य बाग मे आने को तैयार न हुआ।

एक मास ९ दिन तक अयोध्या मे रहने के उपरात स्वामी जी २६ सितम्बर, १८७६ को लखनऊ पधारे तथा सरदार विक्रम सिह आहलूवालिया को कोठी मे ठहरे। यहाँ आपने अपना अधिकाश समय ऋग्वेदादि-भाष्य भूमिका के लेखन मे लगाया तथा कुछ व्याख्यान भी दिए। १ नवम्बर, १८७६ को स्वामी जी ने लखनऊ से प्रस्थान किया और शाहजहाँपुर व बरेली होते हुए मुरादाबाद पहुँचे। वहा आपने राजा जयकिशन दास की कोठी में निवास किया। आपके कई व्याख्यान हुए।

पादरी पार्कर निरुत्तर

मुरादाबाद मे वहाँ के प्रमुख पादरी डब्ल्यू० पार्कर से स्वामी जी का शास्त्रार्थ पन्द्रह दिन तक चलना एक उल्लेखनीय घटना रही। प्रतिदिन दो तीन घण्टे तक शास्त्रार्थ का क्रम चलता और अन्तत यह पादरी निरुत्तर हो गया जब स्वामी जी ने यह सिद्ध कर दिखाया कि किसी मानव द्वारा ईश्वर और मुक्ति प्राप्ति की मान्यता मूर्ति पूजा की तुलना से भी अधिक बडा अन्ध विश्वास है। पादरी पार्कर के साथ शास्त्रार्थ में एक दिन सृष्टि-उत्पत्ति भी

चर्चा का विषय बनी। पादरी महोदय ने पहले तो यह मान्यता व्यक्त की कि सृष्टि को उत्पन्न हुए पाच सहस्र वर्ष हुए हैं, किन्तु जब वह स्वामी जी के तर्कों के समक्ष ठहर न पाए तो उन्होने पैतरा बदला और वह बोले कि मेरा अभिप्राय मनुष्य के उत्पन्न होने से था। स्वामी जी ने इस पर भी आक्षेप किया कि सृष्टि की उत्पत्ति के प्रश्न मे तो मानव भी समाहित है। इस पर पादरी महोदय को निरुत्तर होना पड़ा।

मुरादाबाद नगर मे धर्म प्रचार और आर्यसमाज की स्थापना के उपरात स्वामी जी कर्णवास आदि स्थानो मे होते हुए दिल्ली जाने की योजना बनाने लगे, क्योकि एक जनवरी १८७७ को तत्कालीन वाइसराय लार्ड लिटन ने दिल्ली दरबार का आयोजन किया था, जिसमे सभी प्रान्तो के गवर्नर तथा राजा महाराजा एव देश के प्रमुख और प्रतिष्ठित पुरुष आमन्त्रित थे।

दिल्ली दरबार के अवसर पर

महर्षि ने स्वदेश को एकता सूत्र मे आबद्ध कर उसे एक शक्तिशाली राष्ट्र के रूप मे खडा करने की दृष्टि से इस अवसर का उपयोग करने की कल्पना अपने हृदय मे सजोई। उन्होने दिल्ली प्रस्थान का निश्चय कर लिया। ऋषि भक्त ठाकुर मुकुन्दसिंह ने अलीगढ़ से तम्बू आदि भिजवा कर दिल्ली मे कुतुब रोड स्थित शेरमल जी के उद्यान मे स्वामी जी के ठहरने की व्यवस्था कर दी। उनके साथ ठा० मुकुन्दसिंह एव कर्णवास के श्रीमन्त ठा० गोपाल सिंह, ठा० भूपाल सिंह तथा ठा० किशन सिंह, प० इन्द्रमणि आदि भी दिल्ली पहुँचे थे। स्वामी जी के ठहरने के स्थान पर स्वामी दयानन्द सरस्वती का निवास स्थान पट्ट भी लगाया गया।

सार्वभौम धर्म का आह्वान

इस अवसर पर एकत्रित देश भर के प्रमुख व्यक्तियो को एक सार्वभौम धर्म की ओर आकृष्ट करने की दृष्टि से स्वामी जी ने एक विज्ञापन प्रसारित कराया। यह विज्ञापन सभी मजहबो, मतो और पक्षो के नेताओ तथा श्रीमन्तो और राजा महाराजाओ को भेजा गया। किन्तु यहा जो मडली जुटी थी उसे धर्मचर्चा मे नही अपितु लार्ड लिटन की आराधना मे ही अधिक रुचि थी। अत उन्होने इस ओर विशेष ध्यान नही दिया। हा, डुमराव नरेश और इन्दौर के महाराजा होलकर स्वामी जी के दर्शनार्थ अवश्य उनके निवास स्थान पर पहुँचे। इस विज्ञापन का एक लाभ यह हुआ कि दिल्ली मे सर्वत्र देव दयानन्द के नाम की धूम मच गई तथा प्रतिदिन हजारो नर नारी सत्सग हेतु उनके निवास स्थान पर एकत्रित होने लगे। अनेक विद्वानो ने भी उनसे शास्त्र चर्चा की, विचार विनिमय किया।

स्वामी जी ने अपना प्रयास जारी रखा और एक दिन उनके निवास स्थान पर तत्कालीन विख्यात समाज सुधारको की एक गोष्ठी हुई। उसमें पजाब के मु शी कन्हैया लाल अलखधारी आए तो बगाल के बाबू नवीनचन्द्र राय और श्री केशवचन्द्र सेन भी पधारे। मुसलमानो के प्रतिनिधि सर सैयद अहमद खा और बम्बई के श्री हरिश्चन्द्र चिन्तामणि ने भी इसमे योगदान दिया। स्वामी जी ने अपना उद्देश्य स्पष्ट करते हुए कहा "यदि हम सभी एक-मत हो जाएं और एक ही रीति से देश का सुधार करें तो देश सुधर सकता है। स्वामी जी की आकाक्षा थी कि सभी वेद को ईश्वरीय ज्ञान मान कर वेदानुकूल धर्म प्रचार का कार्य करें। किन्तु उपस्थित सब समाज सुधारक इस बात पर सहमति व्यक्त न कर सके।

दिल्ली दरबार के अवसर पर स्वामी जी के आगमन का एक लाभ यह हुआ कि उनके तेजस्वी रूप, प्रकाण्ड पाण्डित्य और ओजस्विनी वाणी से प्रभावित हुए। सर्व श्री अलखधारी, स० विक्रमसिंह व प० मनफूल आदि ने उन्हें पजाब पधारने का निमत्रण दिया। स्वामी जी ने इस निमत्रण को सहर्ष स्वीकार कर शीघ्र ही पजाब आने का आश्वासन प्रदान किया।

मेला चादपुर मे धाक

दरबार की समाप्ति पर स्वामी जी दिल्ली से प्रस्थान कर मेरठ, सहारनपुर होते हुए चादपुर के मेले मे सम्मिलित हुए। इस मेले मे मु शी प्यारे लाल और मुक्ता प्रसाद के प्रयास से "ब्रह्म विचार" की योजना बनी। इसमें सभी प्रमुख धर्मों के प्रतिनिधि आमत्रित थे। मुसलमानो के प्रतिनिधि के रूप में देवबन्द से भारत विख्यात मौलवी मुहम्मद कासिम पधारे तो ईसाइयों का प्रतिनिधित्व बरेली के पादरी श्री टी० जी० स्काट ने किया। वैदिक धर्म के सिद्धान्तो के निरूपण हेतु स्वामी दयानन्द भी आमन्त्रित थे।

१९-२० मार्च, १८७७ को आयोजित इस मेले के अवसर पर "ब्रह्म विचार" के अन्तर्गत पाच विषय विचारार्थ प्रस्तुत थे —

(१) ईश्वर ने जगत् को किस वस्तु से, किस समय और किस अभिप्राय से रचा ?

(२) ईश्वर न्यायकारी एव दयालु किस प्रकार है ?

(३) ईश्वर सर्वव्यापक है या नही ?

(४) वेद, बाइबल और कुरान के ईश्वरीय ज्ञान होने के क्या प्रमाण हैं ?

(५) मुक्ति का स्वरूप और उसकी प्राप्ति के साधन क्या हैं ?

१९ मार्च को सामान्य विचार विमर्श के उपरान्त २० मार्च को प्रातः ७॥ बजे प्रथम प्रश्न पर विचार आरम्भ हुआ। पादरी स्काट ने कहा कि हम निश्चित रूप से यह बता पाने मे असमर्थ हैं कि परमात्मा ने विश्व को किस तत्त्व द्वारा और कब बनाया तथा उसका प्रयोजन क्या था ? केवल इतना कहा जा सकता है कि प्रभु ने हमारे सुख के निमित्त सृष्टि को अपने आदेश द्वारा अभाव से भाव रूप मे ला दिया। मौलवी कासिम ने अपना मत व्यक्त किया कि खुदा ने दुनिया को वजूदे खास से प्रकट किया और इसकी सब चीजें आदमी के लिए बनाईं और इन्सान को अपनी इबादत के लिये बनाया। कब बनाया, यह जानने की जरूरत ही नही ? हमे तो केवल सासारिक सुख भोग से ही सरोकार रखना चाहिये।

स्वामी जी ने इस अवसर पर उपस्थित धर्माधिकारियो एव श्रोताओ को सम्बोधित करते हुए कहा कि विद्वानो का यह कर्त्तव्य है कि सत्य और असत्य का निर्णय करने हेतु पारस्परिक वैर विरोध की भावना से मुक्त होकर सवाद एव विचार विमर्श करें। सृष्टि की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे स्वामी जी ने बताया कि ईश्वर द्वारा अव्यक्त प्रकृति से ही सृष्टि का सृजन किया गया है। प्रकृति ही सृष्टि का उपादान कारण है। प्रकृति अनादि और अनन्त है। अभाव से भाव की उत्पत्ति नही हो सकती। वजूदे खास (अपने स्वरूप) से भी सृष्टि का उदभव नही माना जा सकता क्योंकि यदि ऐसा होता तो सृष्टि का स्वरूप भी परमेश्वर के तुल्य ही होना चाहिए। प्रत्येक कार्य कारण के तुल्य ही गुणवाला होता है। इस प्रकार तो ससार के सभी लम्पट, धूर्त, अनाचारी, व्यभिचारी तथा हत्यारे भी परमेश्वर के ही रूप हो जाएगे।''

इसके साथ ही आपने यह भी बताया कि सृष्टि कब बनी ? इस प्रश्न का उत्तर तो प्रत्येक वेदानुयायी पण्डित हर शुभ कार्य के आरम्भ मे सकल्प का उच्चारण करते हुए देता है। तदनुसार १९६०८५२९७६ वर्ष सृष्टि क्रम को हो चुके हैं और २३५९१४७०२४ वर्ष तक सृष्टि और रहेगी।

आपने यह भी बताया कि परमेश्वर सृष्टि का निमित्त कारण, नियामक तथा अधिष्ठाता है। सृष्टि की उत्पत्ति और प्रलय का क्रम प्रवाह से अनादि है।

स्वामी जी द्वारा पादरियो और मौलवियो की शका का सतोषजनक समाधान किया गया। दिन को ११ बजे सभा की कार्यवाही स्थगित हुई और दोपहर को पुन आरम्भ हुई। इसमे विचारणीय विषय था मुक्ति का स्वरूप व उसकी प्राप्ति के साधन।

सर्व प्रथम इस विषय पर स्वामी जी ने अपना मत व्यक्त करते हुए बताया कि सब दु खो से छूट कर सच्चिदानन्द परमात्मा को प्राप्त कर सदा आनन्दित रहना और फिर जन्म मरण के चक्र मे चिरकाल तक न पड़ने का नाम ही

मुक्ति है। इसके साधन हैं, सत्याचरण, सत्य विद्या, सत्सग, योगाभ्यास, ईश्वर स्तुति और ईश्वर प्रार्थना।

पादरी साहब ने अपना विचार व्यक्त किया कि दु खों से छूटने का नाम ही मुक्ति है और ईसा मसीह पर विश्वास करने से ही मुक्ति सम्भव है। मौलवी साहब का मत था कि प्रभु जिसे चाहे मुक्ति प्रदान करता है। पैगम्बर पर विश्वास रखने से ही अल्लाह प्रसन्न हो सकता है और मानव मुक्ति पा सकता है।

अन्त मे स्वामी जी ने अपने अकाट्य तर्कों से इन मान्यताओ का खडन और अपनी मान्यता का मडन किया। श्रोता स्वामी जी के तर्कों से प्रभावित हुए और वैदिक धर्म की श्रेष्ठता और सत्यता को उन्होने स्वीकार कर महर्षि दयानन्द का जयघोष किया।

स्वामी जी ने वैदिक धर्म की विजय वैजयन्ती फहराते हुए २२ मार्च, १८७६ को वहा से विदाई ली और वह सहारनपुर लौट आए।

———०००———

स्वामी जी पंजाब में

सहारनपुर से प्रस्थान कर महर्षि ३१ मार्च, १८७७ को लुधियाना पहुँचे। यहाँ श्री कन्हैयालाल अलखधारी ने ला० वशीधर वैश्य के उद्यान मे आपके निवास की व्यवस्था की। स्वामी जी के सात व्याख्यान हुए और आठवें दिन शका समाधान का क्रम चला। इसमे आपने पुर्नजन्म के प्रश्न पर एक पादरी महाशय को अपने तर्क वितर्क से निरुत्तर कर दिया तो भूत प्रेतों के अस्तित्व का भी खडन किया।

लाहौर मे धर्म प्रचार

लुधियाना से स्वामी जी ने १९ अप्रैल, १८७७ को लाहौर की राह ली। वहा स्टेशन पर आपके स्वागतार्थ पजाब सरकार के अवकाश प्राप्त मीर मुशी प० मनफूल एव ''कोहेनूर'' के व्यवस्थापक श्री हरसुख राय तथा ब्राह्मसमाज एव सत्य सभा के अनेक वरिष्ठ पदाधिकारी उपस्थित थे। यहा स्वामी जी के ठहरने की व्यवस्था श्री रत्नचन्द दाढी वाला के उद्यान मे की गई। इस अवसर पर स्वामी जी के साथ इतनी भारी सख्या मे ग्रन्थ थे कि वे एक चार पहिए वाली गाडी मे लाद कर लाये गये।

स्वामी जी का प्रथम व्याख्यान "वेदोक्त धर्म" पर २५ अप्रैल को सहस्रो

व्यक्तियो की उपस्थिति मे हुआ। उसका दूसरा व्याख्यान बावली साहब मे आयोजित किया गया। इसमे पहले व्याख्यान की तुलना से कही अधिक सख्या में श्रोता उपस्थित थे। स्वामी जी की विद्वत्ता की धूम समाचारपत्रो मे मची तो साथ ही साथ जन-जन की चर्चा का विषय भी। अनेको ने पाषाण प्रतिमाए रावी नदी मे प्रवाहित कर दी।

ब्राह्म समाजी रुष्ट

ब्राह्म समाजियो ने भी अपने यहाँ मन्दिर मे स्वामी जी के दो व्याख्यान कराए। किन्तु ये दोनो ही ब्राह्म समाज के मन्तव्यो के विरुद्ध थे। अतएव ये प्रशसक ही उनके विरोधी बन गये। उधर पौराणिक मतवाद के खण्डन के परिणामस्वरूप लोगो के उकसाने पर श्री रत्नचन्द्र ने भी आपको उद्यान छोड देने पर बाध्य कर दिया। यहा से आप डा० रहीम खाँ की कोठी पर आ गए। प० मनफूल ने भी अब स्वामी जी की सेवा से हाथ खीच लिया था। अब डा० रहीम खा की कोठी मे ही आपके व्याख्यान और शका समाधान का क्रम चलता था।

आर्यसमाज की स्थापना

सभी विघ्न बाधाओ के बावजूद स्वामी जी निर्भीकतापूर्वक सच्चे धर्म के प्रचार मे तल्लीन थे। अनेक लोग आपके अनुयायी बनते जा रहे थे। यहाँ आर्यसमाज की स्थापना तो हुई ही, स्वामी जी ने आर्यसमाज के नियमो का भी नूतन सस्कार कर निम्नलिखित दस नियम निर्धारित किये —

१—सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उन सब का आदि मूल परमेश्वर है।

२—ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान् न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है। उसी की उपासना करनी योग्य है।

३—वेद सब सत्य विद्याओ का पुस्तक है। वेद का पढना पढाना और सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।

४—सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोडने मे सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।

५—सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार कर करने चाहिये।

६—ससार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है, अर्थात् शारीरिक आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

७—सबसे प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथा योग्य बर्तना चाहिए।

८—अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए।

९—प्रत्येक को अपनी ही उन्नति मे सन्तुष्ट न रहना चाहिए, किन्तु सब की उन्नति मे अपनी उन्नति समझनी चाहिये।

१०—सब मनुष्यो को सामाजिक सर्व हितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम मे सब स्वतत्र रहें।

मठ नहीं बनाया

यो तो आर्यसमाज मे नियम परिवर्तन सम्बन्धी पूर्ण अधिकार स्वामी जी के हाथ मे ही थे, किन्तु वह सर्वथा निरभिमान और निर्लिप्त थे। एक दिन लाहौर आर्यसमाज के साधारण अधिवेशन मे महाशय शारदा प्रसाद ने प्रस्ताव रखा कि स्वामी जी को आर्यसमाज के सस्थापक की पदवी से विभूषित किया जाए। स्वामी जी मुस्कराए और बोले "भद्रजनो! मैंने कोई नया पथ या मत चला कर कोई मठ या गुरु गद्दी नही बनाई। मैं तो लोगो को मतवादियो से स्वतन्त्र कराना चाहता हूँ। इस प्रकार की पदवियो से अन्त मे क्षति ही होती है।"

शारदा प्रसाद जी ने दूसरा प्रस्ताव प्रस्तुत कर दिया कि महाराज को इस समाज का परम सहायक नियुक्त कर दिया जाए। स्वामी जी ने इस प्रस्ताव को अस्वीकार करते हुए उत्तर दिया "यदि मुझे परम सहायक मान लोगे तो फिर परमात्मा को क्या कहोगे ? वस्तुत वही परम सहायक है। हा, मेरा नाम लिखना ही है तो सहायको की सूची मे लिख लो।"

अमृतसर आगमन

लाहौर नगर मे वैदिक धर्म के प्रति जनता मे गौरव की भावना जगा कर महर्षि अमृतसर पधारे। यहा सरदार दयालसिंह मजीठिया ने आपके निवास की व्यवस्था मिया मुहम्मद की कोठी मे करा दी। आपके प्रवचनो मे भारी भीड लगती। पडित, पादरी, मौलवी अलग-अलग तो अपनी सभाओ मे स्वामी जी के विचारो की आलोचना करते, किन्तु शास्त्रार्थ के लिए सामने न आते। एक दिन एक पाठशाला के पडित जी ने छोटे-छोटे बालको से व्याख्यान स्थल पर सभा मे पत्थर फिकवाए। किन्तु जब पुलिस ने उपद्रवी बालको को धमकाया तो दयालु दयानन्द ने उन्हे छुडवा दिया।

हिन्दू धर्म की दृढ़ता

एक दिन कमिश्नर महोदय की प्रार्थना पर आप उनके बगले पर भी गये। वहा कमिश्नर ने उनसे प्रश्न किया "महाराज, यह तो बताइये कि हिन्दू धर्म

को सूत के तार के समान कच्चा क्यो कहते हैं ?'' स्वामी जी तत्काल बोले ''हिन्दू धर्म तो लोहे से भी अधिक सुदृढ़ है।'' कमिश्नर मोहदय ने पुनः पूछा ''यह इतना दृढ़ किस प्रकार है ?''

महर्षि ने उत्तर देते हुए कहा ''हिन्दू धर्म सागर के तुल्य है। इसमे अनेक अच्छे और बुरे मतो की तरगें विद्यमान हैं। इस धर्म मे ऐसे भी लोग हैं जो नितान्त दयावान् और परोपकार-परायण है तथा एक निराकार परमेश्वर को ही अपने मन मन्दिर मे पूजते हैं। किन्तु इसके विपरीत व्यक्ति भी हिन्दू धर्म मे पाये जाते है। यहा योगी, ध्यानी, तपस्वी और आजन्म ब्रह्मचर्यव्रत पालन करने वाले हैं तो ऐसे भी अनेक हैं जो आमोद प्रमोद और सासारिक सुख को ही अपना उद्देश्य समझते हैं। इस धर्म मे जहा छुआछूत मानने वाले सहस्रो हैं तथा वहा सबके साथ खा लेने वाले भी सैकडो हैं। इस धर्म मे जहाँ उच्च श्रेणी के परमार्थी और तत्त्वज्ञानी पाए जाते है, वहा ऐसे लोग भी मिल जाते है, जो ज्ञान के पीछे लट्ठ लिये फिरते हैं। इस प्रकार उत्तम, मध्यम और निकृष्ट विचारो के लोग इस मार्ग मे मिलते है। वे सभी हिन्दू हैं और उन्हे हिन्दू मत से कोई निकाल नही सकता। इस लिये मैं कहता हूँ कि हिन्दू धर्म निर्बल नही, अपितु सबल है।''

अन्त मे स्वामी जी ने अपना मन्तव्य स्पष्ट करते हुए बताया कि मैं केवल यही चाहता हूँ कि लोग वेद की पावन आज्ञाओ को मानें एव एक निराकार परमात्मा की उपासना करें। दुर्गुणो का परित्याग कर सद्गुण ग्रहण करें।

स्वामी जी ने यहा ईसाई विद्यालय मे पढने वाले चालीस युवको को ईसाई होने से बचाया और उन्हें वैदिक धर्म के प्रति निष्ठावान् बनाया।

स्वामी जी के उपदेशो के फलस्वरूप अमृतसर मे भी आर्यसमाज की स्थापना हो गई। उसी समय गुरुदासपुर के श्रद्धालु जनो के निमत्रण पर आपने अमृतसर से उस नगरी के लिये प्रस्थान किया।

गुरुदासपुर में धर्म प्रचार

गुरुदासपुर वासियो के निमत्रण पर आप १८ अगस्त १८७७ को वहा पहुचे। आपके व्याख्यानो मे हजारो नर नारी एकत्रित होने लगे। अनेक उच्चाधिकारी भी यहा महर्षि के उपदेशामृत का पान कर स्वय को धन्य मानते। यहाँ भी २४ अगस्त, १८७७ को आर्यसमाज की स्थापना हो गई।

ब्रह्मचर्य का अद्भुत बल

गुरुदासपुर से स्वामी जी १३ सितम्बर, १८७७ को अमृतसर होते हुए जालन्धर जा विराजे। वहा सरदार सुचेत सिंह की कोठी मे महाराजा ने

आसन लगाया और ३४-३५ व्याख्यानो द्वारा जन-जन की प्रगाढ निद्रा को तोड कर उन्हें वैदिक धर्म के पावन आलोक का दर्शन कराया।

एक दिन स० विक्रमसिंह ने स्वामी जी के समक्ष अपनी शका व्यक्त की और बोले "भगवन्! ऐसा कहा जाता है कि ब्रह्मचर्य से व्यक्ति महाबली हो जाता है। क्या यह कथन सत्य है?" स्वामी जी ने उत्तर दिया कि शास्त्रो ने ब्रह्मचर्य की जो महिमा बखानी है, वह सर्वथा सत्य है। इस पर सरदार जी बोले "आप भी तो ब्रह्मचारी हैं, हमे तो आप मे कोई बल दिखाई नही देता।" स्वामीजी ने उनकी इस बात का कोई उत्तर न दिया। सरदार जी जब सत्सग की समाप्ति पर अपनी गाडी मे आरूढ हुए तो स्वामी जी ने उसे पीछे से पकड लिया। विक्रमसिंह बार-बार घोडो को चाबुक लगाते रहे, किन्तु घोडे केवल हिनहिनाते रहे। सरदार विक्रमसिंह ने अपनी दृष्टि पीछे घुमाई तो देखा कि स्वामी जी गाडी को पकडे खडे हैं। स्वामी जी ने गाडी को छोड दिया तो वह आगे बढी। इस प्रकार सरदार साहब पर स्वामी जी के ब्रह्मचर्य बल की अमिट छाप पड गई।

स्वामी जी फीरोजपुर मे

स्वामी दयानन्द जालन्धर होते हुए २६ अक्तूबर, १८७७ को फीरोजपुर पहुँचे। यहा उनके ८ व्याख्यान हुए। साथ ही आपने अनेको की शकाओ का समाधान भी किया। यहा आपने छावनी के बडे मन्दिर के पुजारी को पुजारी शब्द के अर्थ की निस्सारता बताई। भक्त स्वरूपसिंह से स्वामी जी की योग पर चर्चा भी चली। भक्त जी ने योगिराज दयानन्द के श्री चरणो मे बैठकर योग मार्ग के अनेक दुर्लभ मोती उपलब्ध किए। फीरोजपुर में स्वामी जी स्थानीय हिन्दू सगठन के अध्यक्ष श्री मथुरादास के निमन्त्रण पर पधारे थे। अतः उन्होने ही आपके इस नगर मे निवास आदि की व्यवस्था की। कई पौराणिको से यहां स्वामी जी का तर्क-वितर्क भी हुआ। वे सभी निरुत्तर हो गए।

स्वामी जी की नियमप्रियता

महर्षि दयानन्द फीरोजपुर से प्रस्थान कर ५ नवम्बर को लाहौर आए और उसी दिन सायकाल आर्यसमाज मे आपका प्रवचन हुआ। ६ नवम्बर को आर्यसमाज की अन्तरग सभा का अधिवेशन था। इसमे समाज के उपनियम निर्मित, परिवर्तित और सशोधित होकर सभासदो के समक्ष स्वीकृति के लिये प्रस्तुत किए गए। सभासद अपना मतामत व्यक्त कर रहे थे। सयोगवश स्वामी जी भी वहा विराजमान थे। स्वामी जी से भी सभासदो ने उनकी सम्मति मागी। किन्तु वे बोले मैं तो अन्तरग का सभासद नही, अत: मैं सम्मति कैसे दे सकता हूँ। महाराज की अमूल्य सम्मति के लाभ की उपलब्धि हेतु सभासदो ने सर्व-सम्मति से स्वामी जी को भी सभासद् बनाकर अपनी कामना पूर्ण की।

स्वामी जी रावलपिण्डी मे

लाहौर से प्रस्थान कर देव दयानन्द ७ नवम्बर को रावलपिण्डी पधारे। यहा पहले श्री जमशेद जी पारसी के बगले मे स्वामी जी का निवास रहा। किन्तु स्वामी जी द्वारा मूर्तिपूजा का खण्डन किये जाने के कारण उन्होने उन्हे अपने बगले से चले जाने को कहा तो स्वामी जी सरदार सुजानसिंह की कोठी मे चले गए। वही आपके अनेक दिन तक व्याख्यान हुए, जिनमे आपने अवैदिक मतो के दोषो का सागोपाग दिग्दर्शन कराते हुए वैदिक धर्म की श्रेष्ठता प्रतिपादित की।

तहसीलदार का जीवन बदला

रावलपिण्डी से २६ दिसम्बर को स्वामी जी ने गुजरात के लिये प्रस्थान किया किन्तु मार्ग मे आप जेहलम भी ठहर गए। यहा भी स्वामी जी के व्याख्यानो का क्रम चला। अनेक जिज्ञासु जन आते और अपनी ज्ञान पिपासा बुझाते। इन्ही मे से एक व्यक्ति ने एक दिन पूछा, "महाराज! अनुमति हो तो आज मैं गीत सुनाऊँ।" स्वीकृति प्राप्त होते ही उसके सुमधुर कण्ठ से गीत फूट उठा। उसकी वाणी मे इतना माधुर्य था कि स्वामी जी झूम उठे। सत्सग की समाप्ति पर एक भक्त ने स्वामी जी को बताया कि महाराज जिस व्यक्ति ने आज गीत गाया था, वह यहा का तहसीलदार है। यह चरित्रहीन है और अपनी धर्मपत्नी को त्यागकर वेश्यागामी हो गया है। मास और मद्य का भी सेवन करता है।

अगले दिन उसने स्वामी जी की स्वीकृति से पुन एक गीत गाया। श्रोता व स्वामी जी सभी उसकी सगीत लहरी से आनन्दित हो उठे। गायन समाप्त हुआ तो स्वामी जी बोले "अमीचन्द! तुम हो तो हीरा, किन्तु कीचड मे पडे हो।" स्वामीजी के इन शब्दो ने उसे विद्युत् आघात सा लगाया और वह यह कहते हुए उठकर चल दिया "महाराज, अब पाप पक से निकलकर ही आपके दर्शन करूगा।" घर जाकर अमीचन्द ने शराब की सभी बोतलें तोड दी और वेश्याओ को भी स्वगृह से निष्कासित कर दिया। मांस से भी विरक्ति धारण कर ली और तार देकर अपनी पत्नी को वापस बुला लिया।

अमीचन्द के इस जीवन परिवर्तन से जहा सारा नगर आश्चर्यचकित रह गया, वहा स्वामी जी का प्रभाव भी जन-जन मे व्याप्त हो गया। यही अमीचन्द बाद मे मेहता अमीचन्द के नाम से विख्यात हुए और इनका भजन 'आज सब मिल गीत गाओ उस प्रभु के धन्यवाद" आज भी आर्यसमाजो मे बडे प्रेम एव श्रद्धा भक्ति से गाया जाता है।

गुजरात में जागरण सन्देश

१३ जनवरी, १८७८ ई०। स्वामी जी जेहलम से गुजरात नगरी मे पधारे और आपने फतहनगर उद्यान में निवास किया। यहां के शिक्षित हिन्दू जन ईसाई मजहब के प्रभावान्तर्गत आते जा रहे थे। यहाँ अपने प्रवचनो मे स्वामी जी द्वारा वैदिक सिद्धान्तो की तर्क सम्मत व्याख्या और सत्य स्वरूप के विश्लेषण का प्रभाव ऐसे लोगो पर पडा और वे पुनः धर्म मार्ग पर आरूढ हुए। किन्तु अन्य मतो की आलोचना के साथ हिन्दू धर्म मे विद्यमान कुरीतियों पर भी अपने प्रवचनो मे आपने डटकर प्रहार किया तथा वेद की महत्ता, सन्ध्या, ब्रह्मचर्य आदि के महत्त्व का प्रतिपादन किया। देव दयानन्द के उपदेशामृत का विद्यार्थियो पर भी प्रभाव पड रहा था। यही के एक मौलवी ने गायत्री के महत्त्व को स्वीकार कर उसके जप का सकल्प ग्रहण किया।

स्वामी जी की सरलता

यही आपने प्रारब्धवाद पर शास्त्र चर्चा मे एक सिख साधु को पुरुषार्थ की महत्ता से अवगत कराया तो कतिपय अन्य दम्भी जनो का दर्प दलन कर उनसे हुई चर्चा मे अपनी सरलता का भी यह कहकर परिचय दिया कि मैं जहाँ वेदादिशास्त्रीय विषयो का ज्ञानी हूँ, वहा फारसी, अग्रेजी, अरबी आदि विषयो मे अज्ञानी भी हूँ।

परहित चिन्तन और परोपकार का अर्थ ढकोसला बताने वाले दो राजकीय अधिकारियो के साथ अपने वार्तालाप मे आपने उनके समक्ष मनुष्यता की यह सरल व्याख्या भी की, यदि अपना भला करना ही उद्देश्य है तो फिर मनुष्यता क्या हुई? अपनी भलाई का भाव तो पशु मे भी विद्यमान है। परोपकार और परहित साधना ही वास्तविक मानवता है।

स्वामी जी गुजरावाला में

स्वामी दयानन्द माघ शुदि पचमी सवत् १९३४ को गुजरांवाला पधारे। उनके स्वागतार्थ सरदार सन्त सिह, स० धर्म सिह आदि अनेक प्रमुख व्यक्ति रेलवे स्टेशन पर उपस्थित थे। स्वामी जी को यहां स० महासिह के निवास स्थान पर ठहराया गया।

नित्यप्रति सायकाल महाराज के व्याख्यान होते। आर्योद्देश्य रत्नमाला के विषयो पर ही आपके व्याख्यान हुआ करते थे। पाखड-खडन एव वेद मन्त्रो की व्याख्या का क्रम भी बीच बीच में चलता रहता था। इस नगर में आर्योद्देश्य रत्नमाला के सभी १८ विषयो पर १८ दिन तक आपके व्याख्यान हुए। प्रवचनो के उपरान्त आप शका समाधान भी करते। एक दिन यहा अपने

ब्रह्मचर्य बल का प्रदर्शन भी किया और चुनौती दी कि कोई भी व्यक्ति समक्ष आए और मेरे हाथ मे पकडा गया अपना हाथ छुडा कर दिखाए किन्तु किसी मे भी साहस नहीं हुआ। ३ मार्च,१८७८ को आपने यहा आर्यसमाज की स्थापना की। अगले दिन आपने यहा से लाहौर प्रस्थान कर दिया।

"जहां भी रहूंगा, सत्य कहूंगा"

लाहौर मे स्वामी जी का निवास नवाब वाजिद अली की कोठी मे रहा। यही महाराज के व्याख्यान भी होते थे। एक दिन अपने व्याख्यान मे जब आपने इस्लाम की आलोचना की तो व्याख्यान के उपरान्त एक सज्जन ने आपके इस प्रवचन की यह कहते हुए आलोचना की कि स्वामी जी आप एक मुसलमान के घर पर ही ठहर कर उसी के मजहब की आलोचना तो न करिए। महर्षि दयानन्द ने उत्तर दिया मैं वैदिक धर्म के प्रचारार्थ आया हू। उसी का उपदेश दूगा। मेरे यहां आने का प्रयोजन इस्लाम अथवा किसी अन्य मजहब की यशोगाथा गाना नही है। मैंने तो नवाब महोदय को ही वैदिक धर्म का महत्त्व सुनाया है। मुझे परमात्मा के अतिरिक्त और किसी का भय नही।

मुलतान मे धर्म प्रचार

१२ मार्च, १८७८। महर्षि लाहौर से प्रस्थान कर मुलतान पहुँचे। यहा रेलवे स्टेशन पर आपका भव्य स्वागत करने के उपरान्त श्रद्धालु जन आपको ब्राह्म समाज मन्दिर मे ले गए। भोजन के उपरान्त उन्हें वेदी उद्यान मे ठहराया गया। स्वामी जी के यहा कई भाषण हुए। इनमे आपने गोकुलिया गुसाइयो के मत का प्रबल खडन किया। इससे विक्षुब्ध होकर एक दिन गुसाईं गोपालदास ने उपद्रव का असफल प्रयास किया। उन दिनो होली पर्व के दिन थे। छावनी मे भी स्वामीजी के तीन भाषण हुए और उनकी समाप्ति पर स्थानीय पारसियो ने आपको एक थाल मे १०० रु० भेट किए।

अपने एक दिन के भाषण मे आपने यह सिद्ध किया कि प्राचीन काल मे भारत ज्ञान विज्ञान दोनो ही दृष्टियो से उन्नति के शिखर पर आरूढ था। आपके सम्पर्क मे आकर सागरचन्द्र नामक एक नास्तिक इजीनियर भी प्रभु भक्त बन गया। १ अप्रैल १८७८ को स्वामी जी ने मुलतान से ही दानापुर हिन्दू सभा के मन्त्री बाबू माधो लाल को एक पत्र लिख कर आर्यसमाज के दस नियम भेजे जाने का निर्देश दिया।

१६ अप्रैल, १८७८ को स्वामी जी ने मुलतान से विदा लेकर लाहौर प्रस्थान किया और अगले दिन लाहौर पहुँच गए।

सत्संग मे नींद आने का रहस्य

लाहौर मे पुनः स्वामीजी के उपदेशामृत से लोग अपना जीवन सफल करने

लगे। एक दिन एक श्रद्धालु सज्जन ने स्वामी जी से प्रश्न किया—"महाराज! नृत्य, सगीत और हास परिहास के स्थलो पर तो लोग सारी-सारी रात जागते रहते हैं, किन्तु सत्सग और धर्मोपदेश मे लोग कुछ ही समय के उपरान्त ऊघने क्यो लग जाते हैं ?" महर्षि ने उनकी शका का समाधानन इन शब्दो मे किया "जिस स्थान पर प्रभु की महिमा का वर्णन हो वह सत्सग स्थल तो सुकोमल शैया के तुल्य है, जबकि नृत्य, सगीत आदि उत्तेजक भाव आत्मा के लिये काँटों का बिछौना हैं। अत यह स्वाभाविक ही है कि सत्सग स्थल रूपी सुकोमल शैया पर किसी को भी निद्रा आ जाए। कांटों के बिछौने पर भला कोई कैसे सो सकता है ?"

अमृतसर मे अमृत वर्षा

१५ मई, १८७८। स्वामी जी लाहौर से प्रस्थान कर अमृतसर पधारे। स० भगवानसिह की वाटिका मे आपको ठहराया गया। स्थानीय आर्यसमाज द्वारा अन्य मतावलम्बियो को स्वामी जी से शास्त्रार्थ करने की चुनौती भी दी गई। १८ जून को शास्त्रार्थ की पूर्ण तैयारिया हुई। स्वामी जी को अमृतसर मे अमृत वर्षा करते-करते एक मास हो चुका था। उस दिन शास्त्रार्थ के सुनने की इच्छा से लगभग ५ हजार की विशाल जनमेदिनी उपस्थित हुई। अनेक पडितो की टोली वहा पहुँची। किन्तु वहा शास्त्रार्थ के स्थान पर ईंटो व पत्थरो की बौछार हो गई। स्वामी जी को भी एक पत्थर लगा और रक्त की धारा प्रवाहित हो उठी। कई भक्त जन उत्तेजित हो गये। किन्तु स्वामी जी ने उन्हे समझाते हुए कहा कि "निश्चित समझिए कि जो लोग मुझ पर ईंट पत्थर बरसा रहे हैं, वही कभी न कभी पछता कर पुष्प वर्षा भी करने लग जाएगे।"

"मुझ पर धूल पड़े, तो पड़े जाति का उपवन हरा रहे"

जब स्वामी जी अपने निवास स्थान पर वापस लौटे तो कतिपय भक्तो ने उपरोक्त घटना पर आक्रोश व्यक्त किया। महर्षि ने उन्हें शान्त करते हुए समझाया "परोपकार और परहित करते समय निन्दा और अपमान उसी भाति सहना पडता है, जिस भाति उपवन के पौधो मे खाद डालते समय राख और मिट्टी माली के सिर पर भी पड जाया करती है। मुझ पर चाहे कितनी धूल और राख पडे मुझे उसकी कोई चिन्ता नही, परन्तु आर्यसमाज रूपी यह वाटिका हरी भरी रहनी चाहिए।"

स्वामी जी द्वारा की जा रही कतिपय बातो की आलोचना से अनेक निहग सखो मे स्वामी जी के प्रति आक्रोश और क्रोध का भाव पनप रहा था। कुछ निहग सिखो ने जब स्वामी जी के प्राण लेने की धमकी दी तो उनसे अनेक

भक्तों ने यह प्रस्ताव रखा कि वे रात्रि से स्वामी जी की सुरक्षार्थ जागते रहेंगे, किन्तु निर्भयता के पुजारी इस युग पुरुष ने उन्हे एक ही उत्तर देकर वापस लौटा दिया कि मैं प्रभु के अतिरिक्त अन्य किसी से भी नही डरता।

महान् चमत्कार

स्थानीय ईसाई पादरियो ने अपने मार्ग मे एक बडी बाधा के रूप मे महर्षि को पाया। अतएव उन्होने जी० खड्गसिंह नामक उन पादरी को बुलाया जो बारह वर्ष पूर्व पादरी वारिंग द्वारा ईसाई मत मे दीक्षित किए गए थे। उन्होने यहा पहुँच कर बाबू ज्ञानसिंह से भेंट की और पूछा कि उन्हें किसके साथ शास्त्रार्थ करना है। ज्ञानसिंह जी उन्हे स्वामी दयानन्द के समक्ष ले गये। खड्गसिंह ने स्वामी जी को प्रणाम कर अपना स्थान ग्रहण किया। किन्तु उसी समय एक चमत्कार घटित हुआ। स्वामी जी एक ब्राह्मण के प्रश्नो के उत्तर दे रहे थे। किन्तु खड्गसिंह ही उसके प्रश्नो के उत्तर देने लगे। ब्राह्मण के आपत्ति उठाने पर आपने कहा कि यदि आपको मेरे उत्तरो से सन्तोष न हो तो फिर स्वामी जी के समक्ष अपनी शका उपस्थित कीजिए। उसी समय श्री खड्गसिंह की ईसाइयत पर से आस्था उठ गई और वह स्वामी जी के अनुयायी बन गये। तदुपरान्त उन्होने वैदिक धर्म के प्रचार को ही अपने जीवन का ध्येय बना लिया।

इस घटना से पादरी वर्ग मे खलबली मच गई। उन्होने कलकत्ता के एक प्रमुख भारतीय ईसाई पादरी के० एम० बनर्जी को अमृतसर आमिन्त्रत करने का निश्चय किया, किन्तु उन्होने यहा आना अस्वीकार कर दिया।

स्वामी जी ने ११ जुलाई तक अमृतसर मे रहने के बाद पुन सयुक्त प्रात (उत्तर प्रदेश) जाने का निश्चय कर लिया।

———०००———

उत्तर प्रदेश की चतुर्थ यात्रा

पचनद की पावन धरा मे वैदिक धर्म के सत्यस्वरूप को अपनी ओजस्विनी वाणी से सुना कर और इस प्रदेश की श्रद्धालु और सुहृदय जनता को सुप्तावस्था से जगा कर देव दयानन्द पुन उत्तर प्रदेश की ओर चल दिये। युग पुरुष के आह्वान ने जहा पजाब के निवासी हिन्दू जनो मे पाखण्डो और कुरीतियो के प्रति विरक्ति का बीजारोपण किया, वहां इस प्रदेश मे प्रवाहित हो रही ईसाइयत की वेगवती धारा भी रोक दी। महर्षि अमृतसर से प्रस्थान कर एक दिन जालन्धर ठहरे और वहा से लुधियाना पहुँच कर वहा चार दिन

तक वैदिक ज्ञान गरिमा का जयनाद गुजाया और तदुपरान्त रुडकी (उ० प्र०) उनकी चरण रज को पाकर धन्य हो उठा। इस नगर मे स्वामी जी टामसन इजीनियरिंग कालेज के शिक्षक श्री उमरावसिंह एव कतिपय अन्य जिज्ञासु जनो के निमत्रण पर पधारे थे।

जिस दिन आप रुडकी पधारे, उसी दिन से यहा आपके प्रवचनो का काम आरम्भ हो गया। यहीं आपको अमरीका से थियोसाफिकल सोसायटी के कर्नल अल्काट का पत्र प्राप्त हुआ। वह यहा एक दिन प्रवचनों मे पढ़ कर सुनाया भी गया और महर्षि ने उपस्थित श्रोताओ के समक्ष सखेद कहा कि विदेशियो मे जहा आर्य धर्म के सम्बन्ध मे जिज्ञासा बढ रही है, वहा प्राचीन आर्यों की सन्तानें ही आज उसके प्रति उपेक्षा बरत रही हैं। स्वामी जी का प्रथम प्रवचन यहा परमात्मा के सम्बन्ध मे हुआ। उसकी विशेषतः मुसलमानो ने मुक्त कण्ठ से सराहना की।

रुडकी की इस यात्रा के दौरान प्रतिदिन इजीनियरिंग कालेज के अनेक छात्र तथा प्राध्यापक स्वामी जी के पास आया करते थे और विज्ञान के विषय ही उनके विचार विमर्श का प्रमुख आधार बनते थे। ऐसे अनेक जिज्ञासु जनो की जिज्ञासा का शमन करने के लिये आपने "प्राचीन भारत मे विज्ञान" विषय पर भाषण किया और सप्रमाण यह सिद्ध किया कि गुरुत्वाकर्षण और अनेक वैज्ञानिक सिद्धान्त वैदिक साहित्य मे विद्यमान हैं। एक दिन आपने अपने प्रवचन मे डार्विन के विकासवाद की भी युक्तिसगत आलोचना की।

अनेक प्रभावित

पहले तो स्वामी जी के प्रवचन उनके निवास स्थान पर ही होते रहे, किन्तु कुछ दिन बाद औरमैन स्कूल के निकट एक खुले मैदान मे व्यवस्था की गई। यहा आपका प्रथम भाषण वेदो पर हुआ तो दूसरे में आपने मूर्ति पूजा का खडन किया और पुनर्जन्म के सिद्धान्त का प्रतिपादन भी। आपके प्रवचनो का ऐसा प्रभाव पडा कि रुडकी के सहायक सर्जन श्री सुरेशचन्द्र भी नास्तिकता से पुन आस्तिकता की ओर मुड गये।

इस खुले मैदान मे आपका तृतीय प्रवचन बाइबिल और कुरान पर हुआ। एक दिन तो रुडकी की छावनी के कमांडिंग अफसर कर्नल मैन्सल और क्वार्टर मास्टर कैप्टेन स्टुअर्ट ने भी महर्षि के मुख से सत्योपदेश सुना। उन्होंने स्वामी जी से तर्क वितर्क भी किया किन्तु मुह की खाई। इसी भाँति कुरान की आलोचना से खिन्न हुए कतिपय मुस्लिम बन्धुओं ने स्वामी जी से शास्त्रार्थ की तिथि निर्धारित की और कुछ शर्तें भी निश्चित की गईं। किन्तु अनेक बहाने बना कर मौलवी साहब ने कन्नी काट कर शास्त्रार्थ से बच जाना ही श्रेयस्कर समझा।

नियम पालन

प्रत्येक कार्य को नियम पूर्वक और नियत समय पर करना स्वामी जी का स्वभाव था। व्याख्यान भी निश्चित समय पर ही आरम्भ कर देते थे, भले ही श्रोता दो हो या दो सौ। रुडकी मे सयोगवश एक दिन केवल दो श्रोता ही उपस्थित थे किन्तु व्याख्यान प्रारम्भ करने का समय हो गया। कुछ देर और प्रतीक्षा करने का अनुरोध भी किया गया किन्तु स्वामी जी ने उनका आग्रह अस्वीकार कर अपना प्रवचन आरम्भ कर दिया। उनकी इस समय पालन की प्रवृत्ति का परिणाम यह हुआ कि लोग समय पर ही प्रवचन मे आने लगे।

दुराग्रह त्याज्य

रुडकी की इस यात्रा के दौरान एक दिन आर्यसमाज की अन्तरग सभा के सदस्यो के आग्रह पर स्वामी जी ने उन्हे उपदेश देते हुए जो वाक्य कहे वे प्रत्येक आर्य जन के लिये अनुकरणीय है। आपने कहा "सभा मे हठ और दुराग्रह नही करना चाहिए। अपने पक्ष की पुष्टि मे चाहे कितनी ही युक्तिया दो, परन्तु प्रकृति और मन मे गर्व को न बैठने दो। किसी भी बात को पकड कर इतना नही खीचना चाहिए कि पारस्परिक भ्रातृ भाव का तार-तार ही टूट जाए। बहुमतानुसार जो निर्णय स्वीकृत हो, उस पर फिर हठ नही करना चाहिए। अन्तरग सभा के कार्यो को प्रकाशित करना उचित नही। वह मनुष्य अत्यन्त तुच्छ और ओछा है जो किसी गोपनीय सम्मति को गुप्त नही रख सकता। ऐसा व्यक्ति विश्वास पात्र नही रह पाता।"

अलीगढ़ मे

२१ अगस्त को स्वामी जी ने अलीगढ प्रस्थान किया और अगले दिन वहा पहुँचे। यहाँ आपने बाबू आफताबराय के उद्यान मे आसन लगाया। यहा बम्बई से आकर क्रान्तिकारियो मे अग्रगण्य श्री श्यामजी कृष्ण वर्मा ने स्वामी जी से भेंट कर स्वदेश की स्थिति पर विचार विमर्श किया और २३ अगस्त को सर सयैद अहमद खा के निमन्त्रण पर स्वामी जी श्री वर्मा सहित उनके निवास स्थान पर भी पहुँचे।

मेरठ में धर्म जागृति

२६ अगस्त, १८७८ को स्वामी दयानन्द मेरठ पहुँचे और वहा श्री दामोदर दास की कोठी मे ठहरे। आपने इस कोठी के बरामदे मे कई दिन तक प्रवचन किए। मासिक "जलवाए तूर" के राय गणेशी लाल के निवास स्थान पर भी

आपके भाषण हुए। नगर मे ला० रामशरण दास के घर पर भी महर्षि के ६ उपदेश हुए।

मेरठ के अपने प्रवचनों और भाषणो मे स्वामी जी ने जहां वैदिक धर्म के सिद्धान्तो की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया, वहां अन्य मत मतान्तरो की कमियो को बताने मे भी आपने सकोच न किया। उनकी असम्भव मान्यताओं की आपने धज्जियां उडा दी। इससे विभिन्न मतावलम्बियो मे हलचल तो मची किन्तु शास्त्रार्थ का साहस उनमें से कोई भी न सजो पाया।

बल का प्रदर्शन

यहा प्रतिदिन स्वामी जी के सत्सग मे उपस्थित रहने वालो मे महाशय बेनी प्रसाद प्रमुख थे। एक दिन वह अपने ६-७ मित्रो सहित स्वामी जी की सेवा मे उपस्थित हुए। रात्रि के ६ बजने लगे थे। वे बोले कि आज तो हम आपके चरण दबाना चाहते हैं। मनोविज्ञान मे पारगत महर्षि तत्काल समझ गए कि इनका इरादा है पैर दबाने के बहाने मेरे बल की परीक्षा। अत. वह तत्काल मुस्कराते हुए बोले "पहले आप सब मिल कर मेरा पैर तो भूमि पर से उठा दो।" स्वामी जी ने अपना पैर आगे बढा दिया और ये सारे युवक एक साथ जुटे, किन्तु स्वामी जी का पाव टस से मस न कर सके। अन्तत वे पानी-पानी हो गये। स्वामी जी ने अपने बल का प्रदर्शन कर दिखाया था।

योग बल की एक झलक

मेरठ की अपनी इस यात्रा मे ही एक ज्योतिषी पडित गौरीशकर जी को आपने छकाया तो अपने योगबल का चमत्कार भी दिखाया। घटना इस प्रकार घटित हुई कि नहर विभाग के एक जिलेदार श्री सेवाराम स्वामी जी के पास आये। उन्होने स्वामी जी के समक्ष अपना यह सकल्प व्यक्त किया कि "यदि मैं डिप्टी के पद पर नियुक्त हो गया तो एक मास का सारा वेतन वेद भाष्य के लिये अर्पित कर दूगा।" कुछ ही समय बाद उनकी यह कामना पूर्ण हो गई। अभी उन्होने यह समाचार अपने निकटतम मित्रो को भी न सुनाया था कि स्वामी जी का बधाई पत्र उन्हे मिल गया। साथ ही इसमे सेवाराम को उनके सकल्प का भी स्वामी जी ने स्मरण कराया था। स्वामी जी को यह जानकारी कैसे मिली यह श्री सेवाराम के लिये आश्चर्य का विषय था। किन्तु वस्तुतः यह स्वामी जी के योग बल की एक झलक थी।

जाति के पराभव पर सजल नेत्र

एक दिन स्वामी जी कतिपय त्रिपुड़ तिलकधारी ब्राह्मणो सहित अपने निवास स्थान पर विराजमान थे। उसी समय एक भद्र जन ने आकर उन्हें

नमस्ते की और कुशल क्षेम पूछा। स्वामी जी के मुख मण्डल पर कुछ विचित्र भाव उभरे और वह बोले "भाई, कुशल कहाँ ?" वह सज्जन पुन बोले "भगवन् ! क्या कोई मानसिक क्लेश है ?" स्वामी जी ने उत्तर दिया "इससे बड़ा क्लेश और क्या होगा कि यह ब्राह्मण मण्डली आज कर्त्तव्य कर्म से कोसो दूर है। बाह्य आडम्बर और पाखण्ड इन्हे भा रहे हैं और धर्म प्रचार का तनिक भी ध्यान नही। आर्य सन्तान की दीन हीन दशा पर भी यह समाज पूर्णत निश्चेष्ट है।" इतना कहते-कहते स्वामी के नेत्रो से अश्रु कण छलक उठे।

दिल्ली मे

मेरठ मे जागरण का शखनाद कर स्वामी जी २ अक्तूबर १८७८ को दिल्ली पधारे और सब्जी मण्डी स्थित लाला बाल मुकुन्द केसरी चन्द के उद्यान मे उन्होने डेरे डाल दिये। यहीं आपने जिज्ञासु जनो को धर्म का मर्म समझाने का कार्य आरम्भ कर दिया। तदुपरान्त सार्वजनिक घोषणा करके मोहल्ला शाह जी के छत्ते मे १३ अक्तूबर से आपके प्रवचन आरम्भ हो गए। दिल्ली वासियो को अपने उपदेशामृत से तृप्त कर स्वामीजी ने कार्तिक मास मे जयपुर जाने का निश्चय किया। १ नवम्बर १८७८ को दिल्ली मे आर्यसमाज की स्थापना का पावन कार्य सम्पन्न हुआ। यहाँ स्वामी जी को देश के विभिन्न भागो से पधारने हेतु निमन्त्रण भी मिले और अनेक सज्जन भेंट करने भी आए। स्वामी जी ने निश्चय किया कि वह पहले जयपुर तथा फिर अजमेर जाएगे और तदुपरान्त कुम्भ के अवसर पर हरिद्वार मे वेदो का नाद गु जाएगे।

राजपूताना की द्वितीय यात्रा

६ नवम्बर, १८७८। स्वामी जी ने दिल्ली से जयपुर के लिये प्रस्थान कर दिया। ७ नवम्बर को जब आप जयपुर पहुँचे तो रेलवे स्टेशन पर आपने जोशी रूपराम एव अन्य कई सज्जनो को देखा जिनके सिर मुडे हुए थे। पूछने पर उन्हें विदित हुआ कि अछरौली के ठाकुर साहब का निधन कुछ ही दिन पूर्व हो गया है। स्वामी जी ने उन्हे बताया कि आप पहले अजमेर जाएगे और वहां से लौटते हुए जयपुर आएगे।

पौराणिक प्रवंचना, जो सफल न हुई

अजमेर रेलवे स्टेशन पर अनेक श्रद्धालु जन स्वामी जी के आगमन की प्रतीक्षा मे पलक पावड़े बिछाए उपस्थित थे। ज्यो ही उन्होने स्वामी जी के

दर्शन पाए, उनके चेहरों पर प्रसन्नता की एक ऐसी मुस्कान खेल उठी मानो उनकी चिर संचित अभिलाषा पूर्ण हो गयी। श्री समर्थ दान एव श्री माधो प्रसाद तो एक स्टेशन पहले ही स्वामी जी से भेंट करने रेलगाड़ी मे आ चुके थे। उनका उद्देश्य सम्भवतः अजमेर आगमन से देव दयानन्द को रोकने के लिये एक पौराणिक पण्डित द्वारा रचे गए जाल से स्वामी जी को अवगत कराना था। वस्तुत स्वामी जी ने अजमेर आने का निमन्त्रण इस आधार पर स्वीकार किया था कि कार्तिक मास मे अजमेर के इस प्रवास मे उन्हे पुष्कर मे लगने वाले सुविशाल मेले मे भी वैदिक ज्ञान की गगा प्रवाहित करने का सुअवसर प्राप्त हो सकेगा। अजमेर के पौराणिको ने स्वामी जी की यात्रा का यह कार्यक्रम रद्द कराने के लिये जुगल बिहारी शर्मा के नाम से स्वामी जी को एक पत्र लिखकर यह सूचित किया था कि यद्यपि मु शी समर्थ दान ने अजमेर आने को आमन्त्रित किया है, किन्तु यहा उनके यात्रा व्यय की समुचित व्यवस्था न हो पाने के कारण वह अपनी यात्रा स्थगित कर दें। स्वामी जी ने इस पत्र की प्राप्ति के उपरान्त २१ अक्तूबर, १८७८ को एक पत्र लिखकर समर्थदान को सूचित किया कि यदि पर्याप्त धन सग्रह नही हो पाया तो भी चिन्ता न करे, मैं बाद मे आ जाऊ गा। किन्तु इस पत्र के प्राप्त होते ही प्रत्युत्तर मे मु शी समर्थदान ने स्थिति स्पष्ट कर दी तथा स्वामी जी ने २८ अक्तूबर को पत्र का उत्तर देते हुए अपनी यात्रा के निश्चय से उन्हें अवगत करा दिया। तदनुसार स्वामी जी ७ नवम्बर, १८७८ को अजमेर पहुँचे।

पुष्कर मे व्याख्यान

अजमेर मे कुछ घण्टे ठहरने के उपरान्त स्वामी जी ने पुष्कर के लिये प्रस्थान कर दिया। वहा नाथजी का बगीचा आपका स्थान बना। स्वामी जी ने यहा पहुँचते ही डोडी पिटवाकर लोगो को वैदिक धर्म के सम्बन्ध मे शका समाधान हेतु जोधपुर घाट पर पधारने का निमन्त्रण दिया। स्वामी जी के व्याख्यानो को सुनने हेतु भारी भीड एकत्र होने लगी। ऐसे ही श्रोताओ मे से एक थे मसूदा के इस्तीमरादार राव बहादुर्रसिह जी भी जो बाद मे स्वामी जी के अनन्य श्रद्धालु बन गए। पुष्कर मे व्याख्यानो के इस क्रम के साथ ही साथ स्वामी जी प्रतिदिन प्रात ११ बजे तक वेद भाष्य भी लिखाया करते थे। यहाँ कई पौराणिको ने मूर्तिपूजा के समर्थन मे आपके समक्ष अपने तर्क प्रस्तुत किए, किन्तु स्वामी जी की ज्ञान गगा मे उनकी कपोल-कल्पनाओ के महल बह गए।

यजुर्वेद के २॥ पृष्ठ

१४ नवम्बर, १८७८ को स्वामी जी अजमेर लौट आए और वहां आपके व्याख्यानो का क्रम आरम्भ हुआ। यही एक दिन व्याख्यान मे उ होंने २॥ पृष्ठ

उठाकर उपस्थित श्रोताओ को दिखाए और बोले "मैंने समग्र आर्यावर्त मे धनुर्वेद को खोजा, किन्तु केवल ये २॥ पृष्ठ ही मिल पाए हैं। यदि मेरे जीवन का क्रम बना रहा तो मैं वेदों से धनुर्वेद का प्रकाश अवश्य ही करूंगा। यहाँ आपका चतुर्थ प्रवचन बाइबल और वेदो पर तथा पचम सती प्रथा आदि कुरीतियो के विरुद्ध एव सातवाँ व्याख्यान आर्यों (हिन्दुओ) के उत्थान और पतन पर हुआ। २८ नवम्बर, १८७८ को यहाँ ईसाई पादरियो को स्वामी जी के अगाध ज्ञान के समक्ष एक शास्त्रार्थ मे पलायन करने के सिवा और कोई विकल्प न सूझा।

दयानिधान दयानन्द

भारत की निर्धन जनता के प्रति दया की सजीव मूर्ति महर्षि दयानन्द के हृदय मे कितनी वेदना विद्यमान थी, उसका परिचय भी एक दिन उनके अजमेर प्रवास मे मिला। उनका उपदेश जारी ही था कि उन्हे सूचना प्राप्त हुई कि भरतपुरिये चमारो के गज मे अग्निकाण्ड घटित हो गया है। इस समाचार के प्राप्त होते ही करुणा के सागर दयानन्द का हृदय भर आया और उन्होने इन पीडितो की सहायतार्थ जहा अपने पास से कुछ धनराशि प्रदान की, वहा उपस्थित श्रोताओ से भी सहायता की अपील की। उनके आह्वान पर तत्काल ही पर्याप्त राशि एकत्र हो गई और उसे पीडितो की सहायतार्थ दे दिया गया।

स्वामी जी के भाषणो की समग्र अजमेर नगरी मे धूम मच गई थी और उनके उपदेशो को श्रवण करने के लिये अनेक उच्चाधिकारी, विदेशी मिशनरी और मुसलमान सज्जन भी उपस्थित होते थे। इतना ही नही, राजकीय कालेज के अनेक छात्र भी उनके उपदेशामृत का पान करने हेतु उपस्थित होते थे। स्थिति यह हो गयी थी कि पनघट से लेकर बाजारो तक मे स्वामी जी का पाण्डित्य चर्चा का विषय बन गया था।

स्वामी जी मसूदा में

राव साहब बहादुरसिंह जी के अनुरोध पर स्वामीजी २ दिसम्बर, १८७८ को मसूदा भी पधारे। यहां आपके कई व्याख्यान हुए। यहाँ से आप १० दिसम्बर को प० सुखदेवप्रसाद के निमन्त्रण पर नसीराबाद पहुँचे। यहा भी आपके तीन व्याख्यान हुए। वहा से प्रस्थान कर आप जयपुर आ विराजे। स्वामी जी के खण्डनात्मक प्रवचनो से जयपुराधीश कुपित हो उठें। उनके कोप से आतकित ठाकुर लक्ष्मणसिंह ने एक दिन स्वामी जी की सेवा मे उपस्थित होकर उनसे कहा "भगवन्! जो स्थिति उत्पन्न हो रही है, उसमे यहा से आपका चले जाना ही उचित होगा।" किन्तु निर्भीकता के सजीव रूप देव दयानन्द ने उन्हे उत्तर देते हुए कहा "ठाकुर महाशय! मैं बाधाओ और

विपत्तियों के कारण अपने पथ से विचलित नहीं हो सकता। मुझे इन बातों का तनिक भी भय नहीं।"

वह २४ दिसम्बर को जयपुर से प्रस्थान कर अगले दिन रिवाड़ी पहुँच गए।

स्वामी जी रिवाड़ी में

राव युधिष्ठिरसिंह के अनुरोध पर स्वामी जी इस नगर मे आए थे। यहाँ आपके ११ व्याख्यान हुए। इनमे मूर्तिपूजा, श्राद्ध और वेद तथा मुक्ति व पुर्नविवाह आदि विषय प्रमुख थे। यहाँ स्वामी जी की प्रेरणा से आर्यसमाज और गोशाला की स्थापना हुई। सम्भवत यही भारत की प्रथम गोशाला थी।

रिवाड़ी से चलकर स्वामी जी दिल्ली आए और तीन व्याख्यान देने के उपरान्त हरिद्वार में हो रहे कुम्भ मेले में सम्मिलित होने के लिये प्रस्थान कर गए।

—o—

उत्तर प्रदेश की पाँचवीं यात्रा

हरिद्वार मे आयोजित होने वाले कुम्भ मेले मे पहुँचने का विचार बनाकर महर्षि ने दिल्ली से प्रस्थान कर मेरठ मे विश्राम किया और वहां से १६ जनवरी, १८७६ को हरिद्वार चल पड़े। मार्ग मे आप चार दिन तक सहारनपुर ठहरे और वहां से रुडकी पहुँचकर एक पखवाडे तक वैदिक ज्ञान की मदाकिनी बहाई। तदुपरान्त २० फरवरी को आपने ज्वालापुर पहुँचकर श्री मूला मिस्त्री के बगीचे मे अपना तम्बू तान दिया। वही आपके धर्मोपदेशों का क्रम भी आरम्भ हो गया।

उपदेशामृत का प्रभाव

यहां के सुप्रसिद्ध मुस्लिम रईस ऐवाज खा भी स्वामी जी के उपदेशामृत का नितान्त मनोयोग सहित पान करते थे। अन्ततः श्री खा के जीवन मे एक नवीन परिवर्तन आया और वह भी गोरक्षा के प्रबल समर्थक हो गए, तथा उन्होंने नित्य स्नान को भी अपना नियम बना लिया। इतना ही नहो, अपितु मासाहार से भी उन्हें पूर्ण विरक्ति हो गई। स्वामी जी ने उक्त मुस्लिम रईस को अपने प्रबल तर्कों द्वारा आर्य सिद्धान्तो के प्रति अनुरक्त बना दिया था और उनकी जीवन धारा को एक नया मोड दे दिया था।

१८७९ ई० का कुम्भ मेला

२७ फरवरी, १८७९ ई० । स्वामी जी ने हरिद्वार मे श्रवणनाथ उद्यान और निर्मलो के शिविर के समक्ष मूला मिस्त्री के खेतो मे ही अपना आसन लगाया । विज्ञापनो द्वारा स्वामी जी के ठहरने के स्थान की जानकारी कुम्भ मेले मे करा दी गयी । विज्ञापन प्रकाशित होते ही स्वामी दयानन्द के नाम की गूंज चतुर्दिक् व्याप्त हो गयी । सहस्रो नर नारी इस युग प्रवर्त्तक के उपदेशो के श्रवणार्थ एकत्रित होने लगे । अनेक साधु भी मडलियाँ बना कर आते थे । जब स्वामी जी ने कुरीतियो व कुप्रथाओ पर कुठाराघात कर वेशमात्रोपजीवी जनो की आलोचना का रणनाद गुंजाया तो साधु समाज मे खलबली मच गई । चतुर्दिक् स्वामी दयानन्द की ही चर्चा इस विशाल मेले मे सुनाई पडने लगी । अनेक पौराणिक पडितो ने स्वामी जी का विरोध करने हेतु कमर कसी, परन्तु अपनी सम्पूर्ण शक्ति जुटा कर भी वे जब कुछ न कर पाए तो निराश होकर बैठ गए ।

आनन्दवन जी का सशय-वन तिरोहित

यही एक दिन महर्षि दयानन्द अपने तम्बू मे बैठे कार्यरत थे । द्वार खुला था । सहसा ही आनन्दवन नामक एक परमहस अपने लगभग दस शिष्यो सहित वहा पधारे । इन परमहस के एक हाथ मे कमण्डल था तो दूसरे मे दण्ड और तन पर सुशोभित लम्बा और उजला चोला । स्वामी जी की दृष्टि ज्यो ही उन पर पडी वह उठे और उन्होंने द्वार पर ही परमहस जी का स्वागत किया । उचित आसन प्रदान किया । शास्त्रार्थ का क्रम आरम्भ हुआ । दोनो विद्वान् द्वैताद्वैत पर चर्चा करते रहे । दिन के ११ बजे स्वामी जी के सेवक ने भोजन करने का अनुरोध किया । स्वामी जी ने अतिथि महोदय से भोजन हेतु अनुरोध किया तो वह बोले "जब तक इस प्रश्न का निर्णय नही हो जाता, हम भोजन नही करेंगे ।" अतएव यह क्रम जारी रहा । स्वामी जी चारो वेदो एव अन्य ग्रन्थो के प्रमाणो द्वारा परमहस जी के सघन सशय-वन को उडाते जा रहे थे । दोनो महात्मा अपराह्न दो बजे के लगभग उठ खडे हुए और तदुपरान्त आनन्दवन जी ने अपनी शिष्य मण्डली को सम्बोधित करते हुए कहा "मैंने स्वामी दयानन्द जी के द्वैत सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया है । इनकी युक्तियों की वायु मेरे अह-ब्रह्मवाद के घमण्ड और घटा टोप घन को तिरोहित कर देने मे सफल रही हैं । मेरा निर्देश है कि अब आप लोग भी स्वामी दयानन्द के ही सिद्धान्त को ग्रहण करें ।"

उसके बाद तो यह ८० वर्षीय महात्मा प्राय स्वामी जी के उपदेशो के श्रवणार्थ आते ही रहे ।

निर्मलों का चित्त निर्मल

स्वामी दयानन्द के सदुपदेशों के श्रवणार्थ प्रतिदिन निर्मला साधुग्रो की टोलिया भी आया करती थी। उनमे से अनेक महर्षि के गहन ज्ञान के कारण उनके प्रति आस्था रखने लगे थे। एक दिन कतिपय निर्मलो का दल स्वामी जी का व्याख्यान सुनने आया। ये निर्मले साधु अपने अखाडे मे ध्वज दण्ड को प्रणाम करना भी धर्म मानते है। निर्मलो के उस दल के आने पर स्वामी दयानन्द सहसा बोले —"आओ भाई लक्कड पूजको! बैठो।" यह सुनते ही यह साधु मण्डली खिलखिला कर हस पडी। तदुपरान्त स्वामी जी ने उन्हे सम्बोधित करते हुए कहा "आप लोग अहर्निश आत्मवाद की रट लगाते हो, वेदान्त सूत्रो की छानबीन मे प्रवीणता दिखाते हो, कर्मकाण्ड की कतर ब्योत का कौशल दिखाते हो और उपनिषदो के वचनो को भी घोट कर पी जाते हो, किन्तु भ्रम मे इतने रत हो कि जड वस्तुओ के समक्ष भी मस्तक झुकाते हो।" स्वामी जी के इन वाक्यो ने उनमे से कई के हृदयो मे एक नवीन चिन्तन का बीजारोपण कर दिया।

वेदना आहत दयार्द्र मन

यही एक बार महर्षि बैठे ही बैठे लेट गये। फिर उठे और इधर उधर टहलने लगे। एक ऋषि भक्त ने उन्हे व्यग्र सा देख कर प्रश्न किया "महाराज, ऐसा प्रतीत होता है कि आपको कोई पीडा सता रही है।" देव दयानन्द ने एक लम्बी सांस ली और बाले "भाई! विधवाओं की दु ख भरी आहो, अनाथो की कराहो एव बधिको का शिकार बन कर रभाती गायो के करुण स्वर इस देश के सर्वनाश के द्योतक है। भला इससे अधिक हृदय वेधक और दारुण वेदना क्या हो सकती है?"

यही स्वामी जी के सम्पर्क मे आकर तहसीलदार नजफअली उनके शैदाई हो गये और उन्होने यह भावना भी व्यक्त की कि सस्कृत पुस्तको सरीखा आत्मिक ज्ञान अन्य किसी भी भाषा की पुस्तको मे उपलब्ध नही है।

शारीरिक अस्वस्थता मे भी शास्त्रार्थ

५ अप्रैल को स्वामी जी को फोडा निकल आया। उसके द्वारा होने वाली पीडा के परिणाम स्वरूप वे शैया पर पडे रहने को बाध्य हो गए। कुम्भ मेले मे भी यह चर्चा सर्वत्र फैल गई कि स्वामी जी बीमार हो गये है। कतिपय पौराणिको ने स्वामी दयानन्द के इस रोग को अपने लिये वरदान समझ कर यह योजना बनाई कि उन्हे शास्त्रार्थ की चुनौती दी जाए और जब वह रुग्ण होने के कारण शास्त्रार्थ से इन्कार कर दें तो यह अफवाह फैला दी जाये कि स्वामी दयानन्द ने पराजय स्वीकार कर ली है। किन्तु जब यह मण्डली स्वामी

जी के पास पहुँची तो वह शास्त्रार्थ के लिये उठ बैठे। उनकी इस स्थिति के बाद उन्होंने वेदान्त पर शास्त्रार्थ करने की इच्छा व्यक्त की। किन्तु स्वामी जी की प्रबल तर्क शक्ति के समक्ष उनकी दाल न गल पाई। यहा स्वामी जी को शारीरिक क्षति पहुँचाने के भी कई असफल प्रयास हुए।

आर्य भाषा ही राष्ट्र भाषा का महामन्त्र

आर्य भाषा (हिन्दी) के प्रचार प्रसार का प्रयत्न भी सर्व प्रथम महर्षि दयानन्द ने ही किया। इस सम्बन्ध मे उनकी धारणा कितनी अडिग और प्रबल थी, इसका परिचय भी इस कुम्भ के अवसर पर घटित एक घटना से मिलता है। हरिद्वार मे जब एक दिन वह सत्सग मे उपस्थित जिज्ञासु जनो को समझा रहे थे तो एक सज्जन ने अनुरोध किया "यदि आप अपनी आर्य भाषा मे लिखित पुस्तकों का अनुवाद कराकर उन्हे फारसी भाषा मे प्रकाशित करा दें तो पजाब आदि प्रदेशो मे ऐसे लोगो को, जिन्हे नागरी अक्षरो का ज्ञान नही है, आर्य धर्म का परिचय प्राप्त करने मे सुविधा रहेगी।"

महर्षि ने उन्हे उत्तर दिया "अनुवाद तो विदेशियो के लिये होता है। नागरी अक्षर तो कुछ ही दिनो के अभ्यास से सीखे जा सकते हैं। यह कठिन कार्य नही। फारसी और अरबी शब्दो को छोड कर ब्रह्मावर्त की सभ्य भाषा ही आर्य भाषा है। जो इस देश मे जन्म लेकर भी स्वभाषा सीखने हेतु थोडा सा परिश्रम करने को तैयार नही, उससे और क्या आशा की जा सकती है। उसमे धर्म के प्रति लगन है, इसका भी क्या प्रमाण है ? आप तो अनुवाद का सुझाव दे रहे हैं, किन्तु दयानन्द के नेत्र तो वह दिन देखने के इच्छुक हैं, जब कश्मीर से कन्याकुमारी और अटक से कटक तक नागरी अक्षरो का प्रचार होगा। मैंने आर्यावर्त भर मे भाषा का ऐक्य सम्पादन करने की दृष्टि से ही तो अपने सकल ग्रन्थ आर्य भाषा मे लिखे एव प्रकाशित किये हैं।"

महामारी की पूर्व सूचना

कुम्भ मेले के समापन से चार दिन पूर्व ही स्वामी दयानन्द ने जनता को चेतावनी दे दी थी कि यहा हैजे का रोग फैलने वाला है। उन्होने अपना प्रवचन सुनने के लिये दो पुलिस अधिक्षको को भी शौचालयो की व्यवस्था आदि के सम्बन्ध मे लताड़ा। स्वामी जी ने मेले मे आये लोगो को रोग की आशका को दृष्टिगत रखते हुए हरिद्वार से चले जाने का सत्परामर्श दिया और स्वयं भी १४ अप्रैल को देहरादून प्रस्थान कर गए जहाँ प० कृपाराम ने उन्हें किराये पर ली गई कोठी मे ठहराया।

देहरादून मे अमृत वर्षा : पादरी का पलायन

गुरु द्रोणाचार्य से सम्बन्धित नगरी देहरादून मे वैदिक ज्ञान की पुनीत भागीरथी

प्रवाहित करना महर्षि ने आरम्भ कर दिया। जिस कोठी मे आपको ठहराया गया था, वही सत्सग स्थल बन गया। एक दिन स्वामी जी का बाइबल पर प्रवचन चल रहा था। अनेक यूरोपीय भी उपस्थित थे और उन्ही मे से एक थे पादरी मौरीसन भी। बाइबल की तर्कसम्मत आलोचना से जहाँ अनेक यूरोपीय सज्जन स्वामी जी की विद्वत्ता और ज्ञान से प्रभावित हो रहे थे, वहा पादरी महोदय बौखला उठे। स्वामी जी जहा उनके प्रश्नो का उत्तर शान्त भाव से देते रहे, वहाँ पादरी अनाप शनाप बातें करने लगे। स्वामी जी ने उनसे सयत भाषा मे वार्तालाप करने का अनुरोध किया तो वह तर्क के स्थान पर बडबडाते हुए उपदेश स्थल से पलायन कर गये।

युवको को सत्य पथ दर्शाया

देहरादून के इस प्रवास मे ही आपने कई यूरोपीय सज्जनो को प्रभावित किया तो उन दो युवको को भी धर्मच्युत होने से बचाया जो मिशन स्कूल मे शिक्षा ग्रहण करते-करते हिन्दू धर्म से विरत होकर ईसाई मत मे दीक्षित होने को तत्पर हो गये थे। स्वामी दयानन्द के श्रीमुख से ईसाई मत की तर्क-सम्मत आलोचना सुन कर और उनके समक्ष किसी मिशनरी के न ठहर सकने से जहाँ ये दोनो युवक विधर्मी होने से बचे वहाँ उनके उपदेशामृत का पान कर मुहम्मद उमर नामक एक जन्मजात मुसलमान सज्जन भी आर्य धर्म मे दीक्षित होकर अलखधारी कहलाने लगे।

कई नगरों मे वैदिक शंखनाद

अमरीका से बम्बई आए कर्नल अल्काट और मैडम ब्लैवट्स्की ने जो थियोसोफिकल सोसायटी के सस्थापक थे, सहारनपुर पहुँच कर स्वामी जी को तार देकर सूचित किया कि वे देहरादून आकर स्वामी जी के दर्शन करना चाहते हैं। महर्षि दयानन्द ने उन्हे उत्तर प्रेषित कर दिया कि मैं स्वय ही सहारनपुर पहुँच रहा हूँ। तदनुसार १ मई, १८७९ ई० को स्वामी जी सहारनपुर पहुँच गए। दो दिन तक सहारनपुर मे वेदो का शखनाद करने के उपरान्त स्वामी दयानन्द दोनो विदेशियो सहित मेरठ पधारे। यहां ६ मई तक ठहर कर कर्नल अल्काट और मैडम ब्लैवट्सकी बम्बई प्रस्थान कर गए। इस अवधि मे स्वामी जी के साथ हुए वार्तालाप मे उन्होने वेदो एव ईश्वर मे पूर्ण आस्था व्यक्त की।

२२ मई तक मेरठ मे वेद के धर्म और मर्म से जन-जन को अवगत कराने वाले परम योगी ने अलीगढ के लिये प्रस्थान किया। वहा पहुच कर स्वामी जी कुछ अस्वस्थ हो गए और २८ मई को छलेसर चले गए, जहां उनका विधिवत् उपचार हुआ। जब स्वामी दयानन्द कुछ स्वस्थ होगए तो छलेसर

से चल कर ३ जुलाई को मुरादाबाद पधारे और वहा श्री जयकृष्ण जी का बगला आपका निवास स्थान बना। पूर्णतः स्वस्थ न हो पाने के कारण यहां महर्षि दयानन्द के केवल ६ व्याख्यान हुए।

राजनीति पर मार्मिक प्रवचन

इन्ही तीन मे से एक था, महर्षि द्वारा मुरादाबाद के कलक्टर स्पेडिग महोदय के अनुरोध पर राजनीति के सम्बन्ध मे दिया गया मार्मिक प्रवचन। छावनी मे हुए इस प्रवचन मे योगिराज दयानन्द ने अनेक भारतीय और यूरोपीय सज्जनो के समक्ष राष्ट्र नीति के उदात्त सिद्धान्तो की विवेचना और शासको तथा शासितो के सम्बन्धो पर प्रकाश डाला तो शासक के पक्षपात आदि दोषो की भी सविस्तार चर्चा की।

कई घन्टे तक हुए इस व्याख्यान के पश्चात् कलक्टर महोदय ने स्वामी जी का आभार व्यक्त करते हुए कहा कि स्वामी दयानन्द ने जो कुछ बताया है, वह सर्वथा सत्य है। यदि इस नीति के अनुरूप राजा-प्रजा के सम्बन्ध होते तो जो कष्ट उठाने पड़े है, वे कभी समक्ष न आ पाते।

वार्तालाप स्वभाषा मे ही करो

यही काली प्रसन्न नामक एक वकील महोदय स्वामी जी के समीप ही बैठे वार्तालाप करते समय अपनें अंग्रेजी भाषा के पाडित्य का परिचय प्रस्तुत कर रहे थे। स्वभाषा के अभिमानी देव दयानन्द ने उन्हें सम्बोधित करते हुए कहा महोदय, स्वभाषा मे वार्ता करना ही उत्तम है। स्वदेशवासियो से विदेशी भाषा में वार्तालाप शोभा नही देता। उससे तो कुछ दर्प ही झलकता है।

नमस्ते श्रेष्ठ अभिवादन

मुरादाबाद में एक दिन ऋषि भक्त श्री इन्द्रमनजी ने नमस्ते की महत्ता स्पष्ट करने का स्वामी जी से आग्रह किया तथा यह भी कहा कि पिता पुत्र को नमस्ते कहता शोभा नही देता। स्वामी दयानन्द ने नमस्ते का वास्तविक अर्थ स्पष्ट करते हुए उन्हें बताया कि नमस्ते का अर्थ चरण-स्पर्श करना नही, अपितु उसका तात्पर्य है सम्मान-सत्कार। सभी छोटे-बडे मेल मिलाप में सम्मान के भागी है। सर्वत्र होता भी ऐसा ही है। आप ही अपने अन्त करण से कहें कि जब कोई व्यक्ति आपके निवास स्थान पर आता है तो उस समय आपके हृदय में कौन सा भाव उत्पन्न होता है?

इन्द्रमन जी को मौन देखकर स्वामी जी पुन. बोले, इस तथ्य से भी सभी परिचित हैं कि जब कोई पूज्य एव प्रतिष्ठित जन घर पर पधारता है तो देख कर झुक कर सम्मान प्रदान करने की इच्छा होती है। पुत्र के प्रति प्रेम का भाव उपजता है। नौकर-चाकरो की अन्न-जल और आइये, बैठिये आदि

शब्दो से सत्कृत करने की प्रेरणा होती है। उपरोक्त समस्त भावनाओं की अभिव्यक्ति 'नमस्ते" से हो जाती है। प्राचीन काल मे आर्य जन नमस्ते ही कहा करते थे। वेदो मे भी यह शब्द अनेक बार आया है। आर्य जनो मे इसी का प्रचार होना चाहिए।

श्रद्धालु जन को यज्ञोपवीत

मुरादाबाद मे कायमगज निवासी एक श्रद्धालु भक्त श्री रामलाल को स्वामी जी ने उनके आग्रह पर विधिपूर्वक यज्ञोपवीत प्रदान कर गायत्री का उपदेश दिया। जब उन्होने गायत्री का शुद्ध उच्चारण किया तो प्रसन्नमना स्वामी दयानन्द ने उन्हे आशीर्वाद देते हुए कहा "वत्स! हमारा शरीर अब बहुत समय तक नही रहेगा। तुम आजीवन हमारे ग्रन्थो से उपदेश प्राप्त करते रहना और यथा सम्भव भूले भटको को सत्य पथ दर्शाना।"

श्री रामलाल ने महर्षि के आदेश को शिरोधार्य कर दस दिन उनके श्री-चरणो मे बिताए और एक दिन विनम्र भाव से बोले —

स्वामी जी ऐसा प्रतीत होता है कि आपके आरोग्य पर कोई आघात लगा है। देव दयानन्द ने श्री रामलाल की जिज्ञासा का शमन करते हुए कहा "इस शरीर को अनेक बार विष दिया जा चुका है। ऐसे कालकूट विष को योग क्रियाओ से वमन तथा बस्ति कर्म द्वारा कितना ही क्यो न निकाल दिया जाए, फिर भी सर्वांश मे यह हलाहल निकल नही पाता और अपना कुछ न कुछ प्रभाव अवश्य ही छोडता है। इसी कारण मेरे स्वास्थ्य की आधारशिला भी हिल गई है। यदि मुझ पर ऐसे भीषण विष के प्रयोग नही होते तो एक शताब्दी तो इस शरीर मे शिथिलता का चिह्न कदापि दृष्टिगोचर न हो पाता और इतनी देर तक जरा व रोग भी इसके निकट नही आते।"

सुयोग्य शिष्य क्यो न मिले ?

स्वामी जी के इन वचनो को सुन कर श्री रामलाल ने अनुरोध और विनय की मुद्रा मे कहा "भगवन्, जब आप स्वजनो को नैराश्य निशा प्रदर्शित करने वाले शब्द सुनाने लग गए हैं तो एसे सुयोग्य शिष्य क्यो नही बना लेते, जो नौका के निपुण नाविक बन सर्वस्व समर्पित करके भी आप के उद्देश्य की पूर्ति करें।"

महर्षि गम्भीर होगए और बोले, "वत्स सर्व प्रथम पाठशालाओ का सचालन कर मैंने अनेक पण्डित शिष्य बनाए। वे मेरे समक्ष तो अनुनय विनय प्रदर्शित करते, किन्तु मुझ से पृथक होते ही जैसे के तैसे पौराणिक बने रहते। अनेक बार तो उनमे से कई मेरे प्रतिकूल वालों का तानाबाना भी पूरने लग जाते थे।

अब तो मुझे यह विश्वास हो गया है की इस जीवन मे कोई सर्वविधि सुयोग्य शिष्य न मिल पाएगा। इसका प्रबल कारण भी है। वह यह कि मैं तीव्र वैराग्य के वशीभूत युवावस्था मे ही अपने पूज्य माता-पिता और परिवार परिजन को त्याग कर मृत्यु पर विजय प्राप्ति हेतु योगाभ्यास करता रहा हूँ। गृह त्याग करते समय मैंने मां की ममता की उपेक्षा की, पितृऋण से भी उऋण नही हो पाया। ये ऐसे कृत्य हैं, जो मेरे सुयोग्य शिष्य मिलने के मार्ग मे अवरोधक हैं। फिर भी निराश होने की आवश्यता नही, क्योकि आर्य समाज मे ऐसे जन अवश्य ही प्रगटेंगे जो मेरे महान् लक्ष्य की पूर्णरूपेण पूर्ति करेंगे।

२० जुलाई १८७६ को स्वामी की उपस्थिति मे ही मुरादाबाद मे आर्य समाज की स्थापना का कार्य भी सम्पन्न हुआ।

स्वामी जी बदायूं मे

३१ जुलाई को स्वामी जी ने बदायू प्रस्थान किया और वहाँ पहुँच कर साहू गगाराम की बगीची मे विराजमान हुए। यहाँ अनेक जिज्ञासु जन उनसे भेंट करने आते और अपनी धर्म सम्बन्धी जिज्ञासा का शमन करते। २ अगस्त, १८७६ को रक्षा बन्धन के पर्व पर जब कुछ लोग स्वामी जी को राखी बाधन पहुँचे तो उनके समक्ष आपने इसके पर्व की महत्ता स्पष्ट करते हुए कहा कि इस दिन राज्य की ओर से एक विशाल हवन हुआ करता था और विद्यालय मे पढने वाले छात्रो की कलाइयो मे एक डोरी बाध कर उन्हे राज्याधिकारियो को ओर से सरक्षण की प्रतिश्रुति दी जाती थी।

यहीं आपका दो दिन तक पडितो से शास्त्रार्थ भी हुआ जिसमे पण्डितो को विद्वद्वर्य दयानन्द के समक्ष अन्तत "मौन सम्मति लक्षणम्" की उक्ति चरितार्थ करनी पड़ी।

बरेली में आगमन

१४ अगस्त को स्वामी दयानन्द ने बदायूं से बरेली प्रस्थान किया। वहां पहुँच कर उन्होने लाला लक्ष्मीनारायण खजाची के बेगमबाग मे अपना डेरा लगाया। यहा प्रतिदिन स्वामी जी के सदुपदेशो के श्रवणार्थ सैकड़ो व्यक्ति उपस्थित होते थे। उनकी प्रशसा सुन कर बरेली के कलक्टर और अनेक यूरो-पियन भी उनके व्याख्यान सुनने आने लगे थे।

पादरी स्काट से शास्त्रार्थ

यहां कतिपय सज्जनो ने स्वामी जी एव पादरी टी० जे० स्काट के बीच शास्त्रार्थ का आयोजन किया। यह शास्त्रार्थ २५ से २७ अगस्त तक ला० लक्ष्मीनारायण खजान्ची की अध्यक्षता मे हुआ। इस शास्त्रार्थ के विषय थे—

आवागमन, ईश्वर देह धारण करता है और ईश्वर पापों को क्षमा करता है—। स्वामी जी द्वारा प्रस्तुत तर्कसम्मत और वेद सम्मत उत्तरों से सभी श्रोता बहुत प्रभावित हुए।

प्रणपालन का ध्यान : दोष किसका ?

स्वामी दयानन्द अपने प्रण की पूर्ति का अत्यधिक ध्यान रखते थे। एक शनिवार की बात है कि कतिपय सज्जनो ने स्वामी जी से अपना व्याख्यान एक घण्टा पूर्व ही आरम्भ कर देने का अनुरोध किया। उन्हे उत्तर देते हुए स्वामी जी बोले "मैं नगर से एक मील दूर ठहरा हूँ। यदि गाडी पहुँच गई तो समय पर उपस्थित हो जाऊगा।" ला० लक्ष्मीनारायण ने वचन दिया कि मैं गाडी की व्यवस्था कर दूंगा। अगले दिन लोग तो समय पर पहुँच गये, किन्तु स्वामी जी को पौन घण्टे का विलम्ब हो गया। व्याख्यान आरम्भ करते ही आपने स्थिति का स्पष्टीकरण करते हुए कहा "मैं समय पर समुद्यत था। किन्तु गाडी समय पर न पहुँच पाई। अन्तत मैं पैदल ही चल पडा। मार्ग मे मुझे गाडी मिली। समय अतिक्रम मे मेरा दोष नही, किन्तु बच्चो के बच्चो का है, अर्थात् बाल विवाह की सन्तान मे ऐसी निर्बलता का होना आश्चय की बात नही।"

निर्भयता की मूर्ति

बरेली मे ही पौराणिक कथाओ की आलोचना करते हुए स्वामी जी ने कहा कि इन ग्रन्थो के रचयिताओ ने कुन्ती आदि पर कितने कपोलकल्पित आरोप थोप दिये हैं। स्वामी जी के प्रवचन मे हास्यरस का ऐसा सम्मिश्रण रहता था कि घण्टो तक भाषण सुनने वाले भी न ऊबते थे। कभी-कभी तो समग्र सभा मे हँसी का फव्वारा फूट पडता था। पुराणो की इस आलोचना पर पादरी महाशय, कलेक्टर, कमिश्नर एव अन्य यूरोपीय सज्जन खुल कर अट्टहास कर रहे थे कि थोडी देर बाद स्वामी जी के श्रीमुख से ये शब्द मुखरित हुए—"यह तो हुई पौराणिको की लीला, अब किरानियो की सुनिए। ये ऐसे हैं कि कुमारी के पुत्र होना बताते हैं और उसका दोष सर्वज्ञ, शुद्ध स्वरूप परमेश्वर पर लगाते हैं।" इतना सुनते ही कमिश्नर महोदय आग बबूला हो उठे। किन्तु स्वामी जी के भाषण का वेग पूर्ववत् ही बना रहा।

अगले ही दिन कमिश्नर ने ला० लक्ष्मीनारायण जी को बुलवाया और कहा "आप पण्डित जी से कह दीजिए कि अधिक तीव्र खण्डन न किया करें। हम ईसाई तो सभ्य एव सहनशील हैं, परन्तु अशिक्षित हिन्दू और मुसलमान उत्तेजित हो उठे तो पण्डित जी के व्याख्यान न हो सकेंगे।"

श्री लक्ष्मीनारायण ने स्वामी जी तक यह सन्देश पहुँचाने का वचन तो दे दिया, किन्तु उनका मन दुविधाग्रस्त था कि स्वामी जी से यह सब कुछ कहेगा कौन ? उन्होंने अपने कई मित्रो को टटोला, अन्तत एक नास्तिक सज्जन ने यह दायित्व ग्रहण किया। किन्तु ज्यो ही उसने देव दयानन्द के तेजस्वी स्वरूप को निहारा वह हतप्रभ हो गया और बडे ही विनम्र शब्दों मे घबराता सा बोला "खजाची साहब आपकी सेवा मे कुछ निवेदन करना चाहते है, क्योकि इन्हे कमिश्नर साहब ने बुलाया था।"

ला० लक्ष्मीनारायण ने अनुभव किया कि ले दे कर आपदा उन्ही पर आ पडी है तो खासते और खखारते हुए बोले—"स्वामी जी, यदि कठोरता का अवलम्बन न किया जाये तो क्या हानि है ? इससे प्रभाव भी अच्छा पडता है और अग्रेजो के रुष्ट होने की सम्भावना नही रहती।" स्वामी जी उनके शब्दो को सुन कर मुस्कराए और बोले "अरे, ऐसी बात ही क्या थी, जिसके लिये गिडगिडाते हो और इतना समय नष्ट कर दिया। साहिब ने कहा होगा कि पण्डित सत्य बोलता है, व्याख्यान बन्द हो जायेंगे। यह होगा, वह होगा। भाई, मैं हौवा तो नही हूँ जो डरते रहे। उसने तुमसे जो कुछ कहा था, सीधे ही मुझे कह देते।" एक विश्वासी पौराणिक हिन्दू भी वहा उपस्थित था, वह बोला "देखो, यह तो कोई अवतार हैं। मन की बात जान लेते हैं।"

अगले दिन आत्मा का स्वरूप स्वामी जी के व्याख्यान का विषय था। सभा भवन श्रोताओ से खचाखच भरा था। पादरी स्काट के अतिरिक्त पहले दिन प्रवचन मे उपस्थित रहे अन्य सभी यूरोपियन सज्जन आज भी विराजमान थे। स्वामी जी ने व्याख्यान में आत्मा के गुणो का वर्णन करते हुए सत्य पर जोर देते हुए कहा—"लोग कहते हैं कि सत्य को प्रकट न करो। कलेक्टर क्रोधित होगा, कमिश्नर कुपित होगा, गवर्नर पीडा देगा। अरे चाहे चक्रवर्ती सम्राट् भी क्यो न अप्रसन्न हो जाये हम तो सत्य ही कहेगे।" तदुपरान्त आपने उस गीता वाक्य को सुनाया जिसमे कहा गया है कि न आत्मा को कोई हथियार छेद सकता है और न ही अग्नि उसे जला सकती है। उन्होने गर्जना की "यह शरीर तो अनित्य है। उसकी रक्षार्थ अधर्म करना व्यर्थ है। जिस किसी भी मनुष्य का मन हो, इसे नष्ट कर दे।" फिर स्वामी जी ने चतुर्दिक् दृष्टिपात किया और आत्मविश्वास से परिपूर्ण शब्दो मे कहा "परन्तु वह शूरवीर तो मुझे दिखाओ जो यह दावा करता हो कि वह मेरी आत्मा को नष्ट कर सकता है। जब तक ऐसा वीर इस ससार मे दिखाई न दे मैं यह विचार करने को कभी तैयार नही कि मैं सत्य को दबाऊ या नही ?"

स्वामी जी की सिंह गर्जना से समग्र सभा अत्यन्त प्रभावित हुई। चतुर्दिक् उन्ही के शब्द प्रतिध्वनित होते से प्रतीत हुए। महाराज का व्याख्यान तो

समाप्त हो गया, किन्तु श्रोताओ के कानों मे उनके उपरोक्त वाक्यों की गूंज पड़ती रही।

मुंशीराम का कायाकल्प

महर्षि दयानन्द बरेली मे ज्ञान की गंगा बहा रहे थे, जिसमे स्नान कर अनेक जन सत्य पथ की प्राप्ति का पुण्य लाभ कर स्वजीवन को धन्य बना रहे थे। उन दिनो श्री मुंशीराम जी (जो बाद मे स्वामी श्रद्धानन्द के नाम से विख्यात हुए) के पिता नगर के कोतवाल थे। मुंशीराम जी उन दिनों राजकीय महाविद्यालय में विद्याध्ययन कर रहे थे, किन्तु न उन्हे ईश्वर पर आस्था थी और न धर्म मे विश्वास। स्वामी जी के व्याख्यानो मे शान्ति और व्यवस्था कायम रखने का उत्तरदायित्व मुंशीराम जी के पिता पर ही रहता था। उन्होंने जिस दिन स्वामी जी का प्रथम व्याख्यान सुना, उसी दिन घर आकर वह अपने पुत्र से बोले—"मुंशीराम ! नगर मे एक दण्डी स्वामी आये हैं। बड़े विद्वान् और योगी हैं। उनके उपदेश सुनोगे तो तुम्हारे मन के संशय-घन छंट जाएंगे।" पुत्र ने पिता के आदेशो को शिरोधार्य किया। अगले दिन मुंशीराम अपने पिताजी के साथ सत्संग स्थल पर पहुँचे। स्वामी जी के भव्य और तेजस्वी रूप के दर्शन करते ही मुंशीराम प्रभावित हुए बिना न रह पाये। अनेक यूरोपियनो की भी स्वामी जी के प्रति आदर भावना देख कर उनके मन पर स्वामी जी की महत्ता का प्रभाव पड़ा। फिर स्वामी जी के उपदेश सुन कर मुंशीराम की जीवन धारा ही बदलने लगी। "ओ३म्" की महत्ता पर सुने स्वामी जी के इस प्रवचन के बाद मुंशीराम जी प्रायः ही महर्षि के उपदेशामृत का पान करने के लिए उपस्थित रहने लगे।

मुंशीराम जी के हृदय मे अब स्वामी दयानन्द की जीवनचर्या को देखने की लालसा जगी। इसी धुन में पहली बार तो वह रात्रि के २॥ बजे गाडी मे सवार होकर उस उद्यान के निकट जा पहुँचे जहा स्वामीजी ठहरे हुए थे। जब कौपीन मात्र धारण कर स्वामीजी उद्यान द्वार से बाहर भ्रमणार्थ जाने लगे तो मुंशीराम भी उनके पीछे पीछे चल दिए किन्तु स्वामी जी की चाल का वेग इतना था कि मुंशीराम कुछ ही दूरी तक उनके साथ चलने में हांफ गए और गाड़ी मे बैठ कर घर वापस आ गए। किन्तु अगले दिन पुनः उन्हें मानसिक लगन और जिज्ञासा ने ऐसा प्रेरित किया कि वह रात मे १२ बजे उठ बैठे और उद्यान के निकट जा पहुँचे। इस बार वह बहुत दूर तक स्वामी जी के साथ गए और उन्होंने स्वामी जी को कुछ काल के लिये ध्यानावस्थित मुद्रा मे भी देखा।

फिर स्वामी दयानन्द से मुंशीराम जी की प्रत्यक्ष वार्ता भी हुई। ईश्वर-सम्बन्धी विषय पर पूछे गए प्रश्नो के महर्षि द्वारा दिए गए उत्तरो ने उन्हें दस

पल में ही अवाक् कर दिया। किन्तु जिज्ञासु मुंशीराम ने तीन बार यह वाक्य दोहराया "महाराज! आपने मेरा मुख तो बन्द कर दिया किन्तु मुझ मे अब तक विश्वास का अंकुर नही उपजा।" स्वामी जी ने उत्तर देते हुए कहा "आपकी युक्तियो का मैंने युक्तियो द्वारा खण्डन कर दिया है। विश्वास तो प्रभु कृपा से ही उपजा करता है।"

महर्षि के सम्पर्क मे आकर नास्तिक मशीराम के जीवन मे एक नया मोड आया तो एक बार की मधुर झाड ने ही लाला लक्ष्मीनारायण को वेश्या के घर से छुटकारा भी दिला दिया।

बरेली से ही महर्षि दयानन्द ने अपनी आत्मकथा का प्रथम भाग "थियोसोफिस्ट" में प्रकाशनार्थ प्रेषित किया था, जिसकी अन्य किश्तें बाद में भेजी गई। स्वामी जी के प्रारम्भिक जीवन का सही विवरण "थियोसोफिस्ट" में प्रकाशित आत्मकथा ही है।

शाहजहांपुर मे आगमन

बरेली से प्रस्थान कर स्वामी जी ४ सितम्बर १८७६ को शाहजहापुर पधारे। यहा भी आपने उपदेशो द्वारा ज्ञान गगा के प्रवाह का अपना कार्यक्रम गतिमान् रखा। यही एक दिन लक्ष्मण शास्त्री नामक एक सज्जन स्वामी जी से शास्त्रार्थ के लिये आ डटे।

वेदों का शंखासुर द्वारा हरण

शास्त्रार्थ का विषय था मूर्त्ति पूजा। जब स्वामी जी ने शास्त्री जी से अनुरोध किया कि वह अपनी मान्यताओ के समर्थन मे वेद मन्त्र उदधृत करें तो शास्त्रीजी निराशा की मुद्रा में बोले "महाराज, मैं वेद का प्रमाण कहां से दू ? वेदो का तो शखासुर द्वारा हरण कर लिया गया था। स्वामीजी ने तत्काल वेद अपने हाथ मे उठाते हुए शास्त्री जी को सम्बोधित करके कहा: शास्त्री जी, आपके आलस्य और प्रमाद रूप शखासुर का वध करके ये वेद मैंने जर्मनी से मगाए हैं। लीजिए, इनमे से खोज कर कोई प्रमाण प्रस्तुत कर दीजिए। उस समय श्रोता मण्डली जहा हंसते हसते लोटपोट हो गई, वहां शास्त्री जी ने मौन धारण करना ही श्रेयस्कर समझा।

राज्य अंग्रेजी है, औरंगजेबी नहीं

निर्भीकता स्वामी जी के चरित्र का महान् गुण था। एक दिन शाहजहांपुर का डिप्टी कलेक्टर अली जान उस मार्ग से गुजरा जहां स्वामी जी के व्याख्यान हुआ करते थे। उसने स्वामीजी से कहा "पण्डित जी! अपनी तकरीरों मे कुछ

संभल कर बात कहा कीजिए।" किन्तु उसे तत्काल ही महाराज ने करारा उत्तर दिया "भय की क्या बात है भाई ! राज्य अंग्रेजी है, औरंगजेबी नहीं।"

गोरक्षा का महत्त्व

१७ सितम्बर को शाहजहापुर से विदाई लेकर स्वामी जी १८ को लखनऊ पहुचे और वहा ६ दिन ठहरने के उपरान्त २४ को कानपुर पधारे। इस नगर में एक दिन ठहर कर फर्रुखाबाद के लिए प्रस्थान कर दिया। २५ सितम्बर से ८ अक्तूबर तक आपने फर्रुखाबाद मे वेदसुधा सरसाई। यहा प्रतिदिन साय ५ से ७ बजे तक आपके उपदेशो और व्याख्यानों का क्रम चलता रहा। ज्वाइन्ट मजिस्ट्रेट श्री डेनियल और पादरी स्काट प्राय ही स्वामी दयानन्द के उपदेशामृत का पान करने हेतु पधारते थे। एक दिन यहा स्वामी जी का गोरक्षा पर प्रवचन हुआ। स्वामी जी ने कहा कि गोहत्या के उपरान्त उसके मास और १० सेर अनाज से लगभग २० आदमियो का भोजन हो पाता है किन्तु गोदुग्ध और थोडा सा चावल जीवन भर के लिए व्यक्ति का आहार जुटा सकता है। इसके अतिरिक्त गोवश भी उपयोगी है। सिद्ध होता है कि इस प्रकार गोहत्या का तात्पर्य है देश का विनाश और गोरक्षा है देश के विकास का मार्ग।

यही आर्य समाज के तत्वावधान मे हुए अपने प्रवचनो मे आपने आर्यसमाज के दस नियमो पर भी प्रकाश डाला और बताया कि वे सभी के लिये उपयोगी हैं। तदुपरान्त आपने ब्राह्म समाज के सिद्धान्तो की भी आलोचना कर अनेक लोगो की शकाओ का समाधान किया।

दान का सच्चा स्वरूप

एक दिन यहा दान का स्वरूप स्पष्ट करते हुए स्वामी जी ने अपने प्रवचन मे कहा : "अन्न-जल का दान किसी भी भूखे प्यासे व्यक्ति को दे देना चाहिए। ऐसा दान पहले अपने दीन-दु खी पडोसी को देना चाहिए। पास रहने वाले की दरिद्रता के निवारण मे सच्ची अनुकम्पा और उदारता का प्रकाश होता है। इससे वाह-वाही नही मिलती, अतएव अभिमान को भी अवकाश नहीं मिलता। सज्जन समीपस्थ दु खी जन को देख कर दया, अनुकम्पा और सहानुभूति आदि हार्दिक भाव प्रकट करते हैं। जो समीपस्थ व्यक्ति पर तो दया भाव नही दर्शाता, किन्तु दूरस्थ व्यक्तियों के लिये उनका प्रकाश करता है, उसे दयावान्, अनुकम्पाकर्ता और सहानुभूति प्रकाशक नही कहा जा सकता। ऐसे मनुष्य का दान तो आडम्बर मात्र है। दान आदि वृत्तियो का विकास दीप ज्योति के तुल्य समीप से दूर फैलना ही उत्तम है।"

यहाँ कतिपय पौराणिक सज्जनो ने स्वामी जी के पास २५ प्रश्न लिख कर

भेजे, जिनका स्वामी जी ने युक्तियुक्त उत्तर लिख कर दिया। इनमें से एक प्रश्न यह भी था कि "धर्म के लक्षण क्या हैं ?" स्वामी जी ने इस प्रश्न का उत्तर इन शब्दों में दे दिया था "धर्म का लक्षण है निष्पक्ष न्याय, जो सत्य पर आधारित हो और असत्य को अस्वीकार करता हो।"

कर्म फल क्या है ?

फर्रुखाबाद के मजिस्ट्रेट स्काट महाशय स्वामी जी के प्रति अत्यन्त श्रद्धा रखते थे। एक दिन उन्होंने स्वामी जी से प्रश्न किया "हमे कर्मफल का पता कैसे लग सकता है ?" स्वामी जी ने उनसे बदले मे प्रश्न किया "आपके पैर में लगडापन क्यों हैं ?" वह बोले "यह तो ईश्वर की इच्छा है।" स्वामी जी बोले "इसे प्रभु इच्छा न कहिए। यही है कर्म-फल। सुख दु ख के भोग का नाम ही कर्मफल है। जिस भोग का यहाँ कोई कारण प्रतीत न हो, उसे पूर्व जन्म के कर्म का ही परिणाम मानना चाहिए।"

देवालय तोड़ना मेरा काम नहीं

उन्ही दिनो फर्रुखाबाद की सडको का सर्वेक्षण चल रहा था। बाजार मे सडक पर एक छोटी सी मढिया थी। अनेक लोग वहा धूप-दीप जलाते थे। एक दिन बाबू मनमोहन लाल स्वामी जी के पास आए और बोले "महाराज ! स्काट साहब आपको बहुत मानते हैं। यदि आप उन्हे इशारा कर दे तो मार्ग मे स्थित मढिया मार्ग से हट सकती है। भ्रम का स्थान दूर हो सकता है।" स्वामी जी ने उन्हें उत्तर मे कहा "तिरछे और टेढे मार्ग से किसी मत को हानि पहुँचाना धर्म नही अधर्म है। मुस्लिम शासको ने सैकडो मन्दिरो का विध्वस किया, किन्तु वे मूर्ति पूजा बन्द न कर सके। हमारा काम तो मानव हृदय से मूर्तियो को निकालना है, ईंट पत्थर के बने देवालयो को तोडना-फोडना नही।"

सहानुभूतिपूर्ण हृदय

दीन-हीन जन को निहारते ही देव दयानन्द का दयालु हृदय तुरन्त पिघल जाता था। एक दिन वह श्री कालीचरण के बगीचे मे शंका समाधान कर रहे थे। उसी समय एक महिला अपने मृत बालक को मैले कुचैले कपडो मे लपेटे जाती दिखाई दी। महाराज ने तत्काल उसे रोका और वह बोले "माई ! आपने इस पर स्वच्छ वस्त्र क्यों नही लपेटा ?" वह महिला रो पडी और बोली "स्वामी जी ! मेरे पास स्वच्छ वस्त्र था ही कहां जिससे मैं इसे ढकती।" उस नारी के मुख से यह वाक्य निकलते ही स्वामी दयानन्द के नेत्रों से अविरल अश्रुधारा प्रवाहित हो उठी और उन्होने अपने नेत्र पोछते हुए कहा—"कभी यह भारत

विभूति का भव्य भवन था, ऐश्वर्य धाम था, शोभा और सुखों की क्रीड़ा-स्थली थी, किन्तु आज इस देश की यह दशा है कि मृत बालक का तन ढांपने के लिए स्वच्छ वस्त्र तक नहीं जुड़ पाता।"

कई नगरों का भ्रमण

८ अक्तूबर को स्वामी दयानन्द फर्रुखाबाद से पुनः कानपुर पधारे और वहाँ १६ अक्तूबर तक ठहरे। वहाँ वह वेद भाष्य लिखाने मे ही रत रहे। १७ अक्तूबर को आपने प्रयाग नगरी को अपनी चरण रज से पावन किया और ६ दिन तक ससार की उत्पत्ति, पुनर्जन्म, श्राद्ध और नवीन वेदान्त आदि विषयो पर आपके प्रवचन हुए। यहीं एक दिन आपको श्री भगवान् दास ने योग मुद्रा मे धरती से ६ इच ऊंचे शून्य मे बिना किसी सहारे के ध्यान मग्न देखा तो आश्चर्यचकित रह गए।

२३ अक्तूबर को महर्षि दयानन्द मीरजापुर आए और वहाँ भी आपके तीन प्रवचन हुए। यहीं बाबू माखन लाल और श्यामलाल जी आपको दानापुर पधारने के लिये निमन्त्रित करने आए। स्वामी जी इन सज्जनों के आग्रह पर ३० अक्तूबर को सायकाल दानापुर पहुँचे। स्टेशन पर ही इस युग पुरुष के स्वागतार्थ भारी जन समूह उपस्थित था। स्वामी जी को ससमारोह नगर मे लाया गया। महर्षि यहाँ अपने प्रवचनो मे ईश्वर, आत्मा और अन्य गूढ़ विषयो पर तो प्रवचन करते ही थे, बीच-बीच मे नाना वेदविरुद्ध पथो की तर्कसम्मत आलोचना भी करते थे।

"मत मतान्तरों की पोल खोलने से न रुकूंगा"

एक दिन महर्षि के एक भक्त महाशय गुलाबचन्द लाल जी ने स्वामी जी से अनुरोध किया "भगवन्! मुसलमानो के विरुद्ध कुछ भी न कहिएगा। ये लोग तुरन्त बिगड उठते हैं और झगडे पर उतारू हो जाते हैं। स्वामी जी ने उस समय तो कोई उत्तर न दिया, किन्तु अपने व्याख्यान मे इस्लाम मत की तीव्र आलोचना की और बोले : "मुझ से कहा जाता है कि इस्लाम का खण्डन न कीजिए। किन्तु मैं सत्य को कैसे छिपा सकता हूँ।" जब इनकी चलती थी तो इन्होने खड्ग से हमारा खण्डन किया। परन्तु अन्धेर है कि आज मुझे वचनो से भी इनका खण्डन करने से रोका जाता है। भला मत-मतान्तरो की पोल खोलने से मैं कैसे रुक सकता हूँ।"

दानापुर के अपने प्रवास मे आपने ठाकुरदास नामक एक सज्जन को योग द्वारा रोग निवृत्त किया तो जोन्स नामक एक पादरी को गोमास भक्षण से विमुख किया।

देश की दुर्दशा : दयानन्द के आँसू

एक रात की बात है कि देव दयानन्द अर्ध रात्रि मे जाग उठे और उठ कर इधर-उधर टहलने लगे। उनकी पद चाप ने एक कर्मचारी की नींद उचाट कर दी। ऐसा प्रतीत हुआ कि स्वामी जी बड़े व्याकुल हैं और घबराहट मे घूम रहे हैं। उसने विनम्रतापूर्वक पूछा "महाराज ! यदि कोई वेदना हो तो मुझे बताइए। सेवक औषधोपचार हेतु तत्पर है। यदि आपकी आज्ञा हो तो किसी वैद्य को ले आऊं।" स्वामी जी ने एक लम्बा श्वास लिया और बोले "भाई ! यह वेदना औषधोपचार से दूर होने वाली नही। यह तो भारतीयो की दुर्दशा के सम्बन्ध में चिन्ता से चित्त मे उभरती है। ईसाई लोग कोल, भील आदि भारतवासियो को ईसाई मत मे दीक्षित करने हेतु ताने-बाने बुनने मे लगे हैं। रुपया पानी के तुल्य बहाने को तैयार हैं, किन्तु आर्य जाति के पुरोहित कुम्भकर्णी निद्रा मे निमग्न हैं। उनके कानो पर जूं तक नही रेंगती। मेरी अब यही इच्छा है कि राजा-महाराजाओ को सन्मार्ग पर लाकर उनका सुधार करूँ। आर्य जाति को एक उद्देश्यरूपी दृढ सूत्र मे आबद्ध करने की मेरी प्रबल इच्छा है।"

निरभिमान संन्यासी

एक दिन एक सज्जन स्वामी दयानन्द के पास आए और उनसे कहने लगे कि आप तो ऋषि हैं। किन्तु देव दयानन्द ने उन्हे जो उत्तर दिया उससे उनके निरभिमान स्वभाव का परिचय मिलता है। स्वामी जी बोले—"ऋषियो की अनुपस्थिति मे लोग मुझे कुछ भी कह सकते हैं किन्तु यदि मैं कणाद और अन्य ऋषियो के जमाने मे होता तो मुझे कठिनाई से ही कोई विद्वान् भी कह पाता।"

वाराणसी में : वैदिक यन्त्रालय की स्थापना

१६ नवम्बर को स्वामी दयानन्द ने कानपुर से वाराणसी के लिए प्रस्थान किया। यहा आकर आपने महाराजा विजयनगर के आनन्द बाग मे पडाव डाला। २ दिसम्बर को पंडित भीमसेन के नाम से प्रकाशित एक विज्ञापन मे स्वामी जी की ओर से विभिन्न मतावलम्बियो को शास्त्रार्थ की चुनौती दी गयी, किन्तु कोई भी मैदान मे न आया। यहीं १५ दिसम्बर को कर्नल अलकाट और मैडम ब्लावत्स्की भी स्वामी जी के दर्शनार्थ आए और कर्नल अलकाट के वाराणसी मे कुछ व्याख्यान हुए।

१२ फरवरी, १८८० ई० को लक्ष्मीकुण्ड मे वैदिक यन्त्रालय की स्थापना भी स्वामी जी के ग्रथो के मुद्रण हेतु की गई। यन्त्रालय (प्रिंटिंग प्रेस) की स्थापना का प्रस्ताव सर्वप्रथम मुरादाबाद की आर्यसमाज ने किया था और फर्रुखाबाद की आर्यसमाज ने इसकी खरीद के लिये ३१५० रुपए का

दान दिया था। इसी यन्त्रालय की इमारत की छत से २१ मार्च से ५ अप्रैल तक स्वामी जी के प्रवचन होते रहे। बाद में जनता के प्रबल आग्रह पर स्वामी जी के ६ व्याख्यान और भी हुए एव १५ अप्रैल को वाराणसी मे आर्यसमाज की स्थापना भी कर दी गई।

इस बार स्वामी जी का काशी प्रवास ६ मास तक रहा और वह ५ मई १८८० ई० को वहा से लखनऊ पहुँचे। यहा भी आपके कई व्याख्यान हुए।

"हिन्दू समाज से कटना नहीं चाहता"

लखनऊ मे एक दिन ज्ञानचर्चा मे स्वामी दयानन्द ने अपना मन्तव्य स्पष्ट करते हुए पडित रामाधर को बताया कि वह ब्राह्म समाज के समान स्वय को हिन्दू (आय) समाज से पृथक् नही करना चाहते अपितु उनका उद्देश्य इस समाज मे रहकर ही इसे सुधारना है।

पुन· फर्रुखाबाद आगमन

२० मई को स्वामी जी पुन फर्रुखाबाद पहुँचे और कालीचरण रामचरण के बगीचे मे ठहरे। यहीं फतेहगढ के मुशी गोरेलाल वकील आपके ज्ञान से प्रभावित होकर धर्मविहीन से धर्मनिष्ठ बने और आपने आर्यसमाज का मन्त्री पद भी सभाला। ३० जून तक इस नगर मे विराजने के बाद आपने मैनपुरी प्रस्थान किया और १ जुलाई को वहा थानसिंह सोहिया के उद्यान में आसन जमाया। यहाँ आप केवल दो दिन ठहरे किन्तु सैकडो लोग आपके दर्शनार्थ आते रहे। प्रवचनों और उपदेशो द्वारा सत्य धर्म का प्रचार करते हुए स्वामी दयानन्द ६ जुलाई को वहा से प्रस्थान कर भारोल होते हुए ८ जुलाई को मेरठ पहुँचे। इस बार आपका निवास मेरठ छावनी में रहा।

अलकाट की आलोचना

मेरठ से प्रस्थान कर १५ सितम्बर को स्वामी दयानन्द मुजफ्फरनगर पहुँचे और वहा राय बहादुर निहालचन्द के बगले मे ठहरे। यहा स्वामी जी के दस व्याख्यान हुए और आप पुन मेरठ आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव मे सम्मिलित होने के लिये लौट आए। यहा अपने एक भाषण मे आपने कर्नल अलकाट व मैडम ब्लावत्स्की के असत्य आचरण की आलोचना करते हुए लोगों से थियोसोफिकल सोसायटी की सदस्यता ग्रहण न करने की अपील की।

मेरठ से स्वामी दयानन्द ७ अक्तूबर को देहरादून गए और २० नवम्बर तक वहा ठहरने के बाद आगरा आए।

आगरा में नास्तिकों की बोलती बन्द

देव दयानन्द के उपदेशो में ऐसा अनुपम रस था कि कई-कई मील की दूरी से लोग उनके प्रवचन सुनने आते थे। उनकी प्रबल तर्क शक्ति का लोहा बड़े-बड़े तर्कशास्त्री भी मानने लगे थे। आगरा मे भी एक प्रबल तार्किक किन्तु नास्तिक बगाली डाक्टर महोदय निवास करते थे। उन्होने अनेक लोगो के मन पर अपने ज्ञान-विज्ञान की धाक जमा रखी थी। एक दिन वह एक विशाल दल सहित स्वामी जी के व्याख्यान स्थल पर आए। व्याख्यान के पश्चात् शका समाधान का क्रम चला करता था। उस दिन सर्वप्रथम यह बगाली महाशय ही प्रश्न करने उठे। अनेक नेत्र उत्सुकतावश इस ओर गड गए। कइयो ने कहा कि स्वामी जी के लिए इस बगाली से जीतना टेढी खीर है। किन्तु कुछ ही क्षण बाद लोग स्तब्ध रह गए, जब यह बगाली महोदय दो तीन प्रश्न करने के उपरान्त ही अपने मुख से झाग उगलते हुए बैठ गए। उस दिन महाराज की प्रचण्ड शक्ति की छाप सारे आगरा नगर पर बैठ गयी और चतुर्दिक् "महर्षि दयानन्द धन्य-धन्य" का उद्घोष गूज उठा।

स्वदेश की रीति वरेण्य

आगरा भारत मे रोमन कैथोलिक मिशन का प्रमुख केन्द्र था। एक दिन आगरा के लाट पादरी ने एक सज्जन को स्वामी जी से भेंट का समय निश्चित करने के लिये भेजा। किन्तु किसी के प्रति भी घृणा या विद्वेष का भाव न रखने वाले महर्षि दयानन्द ने स्वय ही पादरी महाशय से भेंट की। वार्तालाप के अवसर पर आपने उनसे कहा—"आइए, सर्वप्रथम आपस मे मिलकर एक धर्म स्थिर कर नास्तिकवाद को निर्मूल करे।" पादरी महोदय ने एकता के मार्ग की अनेक कठिनाइया बताई। उनकी शकाओ के उत्तर मे स्वामी जी ने कहा 'यदि वेद का आधार सभी स्वीकार कर ले तो इस कठिनाई का निवारण हो सकता है।"

स्वामी जी एक दिन आगरा स्थित सेन्ट पीटर गिरजाघर देखने गए। जब महर्षि गिरजे मे प्रवेश करने लगे तो एक ईसाई सज्जन बोले "महाराज! सिर से पगडी उतार कर ही आप भीतर जा सकेंगे।" स्वामी जी रुक गए और बोले "हमारे देश की रीति के अनुसार सिर पर पगडी धारण करके ही किसी जगह जाना प्रतिष्ठा का चिह्न है। अपने देश की सभ्यता के प्रतिकूल आचरण हम नही करेंगे। हा, मैं अपने पाव के जूते खोले देता हूँ।" किन्तु जब यह सज्जन इस बात पर सहमत न हुए तो स्वामी जी बरामदे से ही लौट आए।

महान् तत्त्वदर्शी

महर्षि ने यही गोकरुणानिधि नामक अपनी पुस्तक की रचना की। ब्रह्मानन्द नामक एक युवक आगरा कालेज के छात्र थे। एक दिन सत्सग हेतु स्वामी जी के निवास स्थान पर पहुँचे। उस समय स्वामी जी वहा नहीं थे। किन्तु श्री भीमसेन और श्री ज्वालादत्त जी आदि पडित जन आत्म-चर्चा मे लीन थे। ब्रह्मानन्द जी ने उनसे प्रश्न किया—

क्या आप किसी आत्मज्ञानी जन को जानते हैं? उत्तर मे श्री ज्वालादत्त जी बोले—इस समय सर्वश्रेष्ठ आत्मदर्शी स्वामी दयानन्द हैं। हमने उन्हें अनेक बार ध्यानस्थ देखा है। उन्हे योग की सिद्धिया प्राप्त हैं। हमें वेद भाष्य लिखाते समय कोई कठिन विषय उपस्थित होने पर वह अनेक बार बीच मे उठ जाते हैं और कोठरी का द्वार बन्द कर अन्तर्ध्यान मे बैठते है। फिर बाहर आकर पहले लिखाए गए मे से कई वाक्य और पक्तियां कटवा कर नवीन वाक्य की योजना लिखाते हैं। उनका अन्त करण इतना विमल और शुद्ध है कि सातवी कोठरी मे हुई वार्ता का भी उन्हे आभास मिल जाता है। उन्होंने कई बार हमारे प्रच्छन्न मनोरथ बताए हैं।

यहा सेन्ट जान कालेज के सस्कृत अध्यापक प० कालिदास को लोगो ने स्वामी दयानन्द के साथ शास्त्रार्थ करने को उकसाया, किन्तु उन्होने इन लोगो को बताया कि स्वामी विरजानन्द की पाठशाला मे स्वामी दयानन्द उनके सहपाठी रहे हैं और उन्हे पता है कि स्वामी दयानन्द को तर्क मे परास्त नही किया जा सकता।

१० मार्च १८८१ को आगरा की आर्यसमाज द्वारा स्वामी जी को एक मानपत्र भेट किया गया। उसी दिन देशी रियासतो के नरेशो को सत्य पथ की ओर आकृष्ट करने के उद्देश्य से महर्षि दयानन्द ने राजस्थान की यात्रा के लिए प्रस्थान कर दिया और आपका प्रथम गन्तव्य स्थल बना भरतपुर।

राजस्थान की तृतीय यात्रा

फाल्गुन शुक्ला दसवी सवत् १६३७ (१० मार्च १८८१) को दयानन्द रूपी भास्कर की किरण भरतपुर मे प्रस्फुटित हो उठी। यहा आपने रेलवे स्टेशन के समीप स्थित एक उद्यान को अपना निवास स्थान बनाया। यहा दस दिन तक आप ठहरे। किन्तु प्रवचन या व्याख्यान न देकर अपने पास आने वालो की शकाओ का समाधान ही आपका भरतपुरवासियो के लिये वरदान रहा।

१६ मार्च को स्वामी जी ने भरतपुर से विदाई ली और २० मार्च को जयपुर जा विराजे। यहा आप कुछ दिन ठहरे और आपके उपदेशो से प्रभावित हुए सज्जनो ने वैदिक धर्म सभा की स्थापना की और इसी ने बाद मे आर्य समाज का रूप ले लिया।

अजमेर आगमन : पं० लेखराम श्रीचरणो में

जयपुर निवासियो की ज्ञान पिपासा का शमन करने के उपरान्त ५ मई १८८१ को महर्षि दयानन्द पुन अजमेर पधारे। यहा साय ७ बजे से रात्रि ६ बजे तक स्वामी जी वैदिक ज्ञान की पुनीत सरिता बहाते थे, जिसमे प्रतिदिन सैकडो जिज्ञासु जन नहाते थे और जीवन को वास्तविक अर्थों मे धार्मिक भावो से ओतप्रोत करने का सुअवसर पाते थे। बाईस दिन मे इस नगर मे स्वामी जी के २६ प्रवचन हुए।

काफी समय से महर्षि के दर्शनो की लालसा अपने हृदय मदिर मे बसाए प० लेखराम जी अपना सारा काम-काज छोड कर पजाब से यहा आए। १६ मई को वह अजमेर आए थे। उन्होने स्वामी जी की चरण शरण मे उपस्थित हो प्रणाम किया। स्वामी दयानन्द के कातिमय मुखमण्डल, शोभाशाली विशाल ललाट और प्रभावशाली आकृति को देखते ही पेशावर (पुष्यपुर) का यह परम वीर सपूत आनन्द विभोर हो उठा। मार्ग की सारी थकान को भूल कर पण्डित लेखराम देव दयानन्द को देखते ही रह गए। कुछ क्षण बाद वह सभले और स्वामी जी से बोले—"स्वामी जी! आकाश और ब्रह्म दोनो पदार्थ व्यापक हैं। ये दोनो एक स्थान मे किस प्रकार रह सकते हैं?" स्वामी दयानन्द ने एक पत्थर उठाया और प्रश्न किया कि इसमे अग्नि है या नहीं? प० लेखराम बोले कि अवश्य है। फिर महर्षि ने उसी पाषाणखण्ड मे वायु,

जल, मिट्टी, आकाश एव परमात्मा की व्यापकता के सम्बन्ध मे पूछा। पडित जी ने इन सभी की व्यापकता स्वीकार कर ली। तदुपरान्त महर्षि बोले "भद्र! आपने समझ ही लिया है कि एक पत्थर मे सब पदार्थ व्याप्त हो सकते हैं। इस व्यापकता का सरल सिद्धान्त यही है कि जो पदार्थ जिससे सूक्ष्म होता है, वह उसमे व्यापक हो सकता है। परमात्मदेव परम सूक्ष्म हैं। अतएव सभी पदार्थों मे परिपूर्ण हो रहे हैं।"

स्वामी जी ने अनुभव कर लिया कि भक्त की हृदय भूमि उर्वरा है और उसमे धर्म कल्पतरु का बीजारोपण करने की भावना से उन्होने प० लेखराम से कहा कि आप यथेष्ट प्रश्न कर अपनी शकाओ का समाधान कर लें। तदुपरान्त प० लेखराम ने स्वामी जी से दस प्रश्न किए और उन सभी का स्वामी जी ने सतोषजनक उत्तर दिया। स्वामी जी की जीवनी लिखते समय प० लेखराम को इन दस प्रश्नो मे से केवल तीन प्रश्न ही स्मरण रह पाए, जिनका उन्होने उसमे उल्लेख किया है। वे ये थे —

प्रश्न—महाराज! जीव और ब्रह्म के अलग-अलग होने का कोई प्रमाण प्रस्तुत कीजिए।

उत्तर—यजुर्वेद का ४०वां अध्याय जीव और ब्रह्म का भेद वर्णन करता है।

प्रश्न—क्या अन्य मतावलम्बियो को वैदिक धर्म मे दीक्षित किया जा सकता है?

उत्तर—निश्चित रूप से ही उन्हे शुद्ध कर लेना चाहिए।

प्रश्न—विद्युत् क्या है और यह किस भाति उत्पन्न होती है?

उत्तर—विद्युत् सर्वत्र व्यापक है और घर्षण से अभिव्यक्त होती है। बादलो की विद्युत् भी वायु और बादलो के सघर्षण से प्रकट होती है।

अन्त मे स्वामी जी से विदाई लेते समय पडित लेखराम ने उनसे प्रार्थना की—"महाराज! अपना कोई स्मृति चिह्न मुझे प्रदान कर कृतार्थ कीजिए।" स्वामी जी ने अपने इस अनन्य भक्त को अष्टाध्यायी की एक प्रति प्रदान की। तदुपरान्त सच्चे गुरु भक्त आर्य पथिक प० लेखराम ने ऋषिवर के चरण-कमल छू कर पेशावर हेतु प्रस्थान किया।

स्वामी जी मसूदा में

मसूदा के राव बहादुरसिह जी महर्षि के प्रति श्रद्धाभावना रखते थे। जब उन्हे विदित हुआ कि स्वामी जी अजमेर आए हुए हैं तो उन्होने अपने एक प्रतिनिधि को स्वामी जी की सेवा मे भेजा। स्वामी जी ने राव साहब का निमन्त्रण स्वीकार कर बृहस्पतिवार आषाढ बदि द्वादशी, सवत् १६३८ (२३ जून १८८१ ई०) को मसूदा राज्य को अपनी चरण रज से पावन किया। आप रात्रि मे

लगभग ९ बजे उस नगर मे पहुँचे। आप को रामबाग मे ठहराया गया। यहां राजमहल और दुर्ग मे स्वामी जी के प्रवचन हुए।

पादरी शूलब्रेड से वार्ता

यहीं राव साहब ने नया नगर (ब्यावर) से पादरी शूलब्रेड को स्वामी दयानन्द से वार्ता के लिये बुलाया। २८ जून, १८८१ को वह मसूदा आये। स्वामी जी ने पादरी से अनेक प्रश्न किए किन्तु वह कोई उत्तर न दे पाए। उन्हो ने पादरी शूलब्रेड के एक प्रश्न के उत्तर मे बताया कि वेदो मे गोमेध, अश्वमेध आदि का वर्णन नहीं है। उसी समय बिहारीलाल नामक एक भारतीय ईसाई ने स्वामी जी से प्रश्न किया कि "महाराज, आप राजा महाराजाओ को ही उपदेश क्यो देते हैं? जनसाधारण मे जाकर उन्हें क्यो नही समझाते?" स्वामी जी ने उन्हें बताया कि "मेरे व्याख्यानो मे तो धनी और निर्धन सभी आते हैं। किसी छोटे बडे के उनमे आने पर कोई रोक नही है।"

भक्तों को यज्ञोपवीत

उन्ही दिनो यहां आए जैन साधु श्री सिद्धकरण स्वामी जी द्वारा किए गए प्रश्नो के उत्तर देने मे असमर्थ रहे। इस पर अनेक जैनियो ने स्वामी जी से भेंट कर यज्ञोपवीत धारण कर आर्य धर्म की दीक्षा लेने की कामना व्यक्त की। स्वामी दयानन्द के निर्देश पर श्रावण पूर्णिमा १९३८ को राव महोदय की ओर से एक भव्य महोत्सव आयोजित हुआ। उसमे एक बृहद् हवन भी हुआ और स्वामी जी ने अपने कर कमलो से तेंतीस भद्रजनो को यज्ञोपवीत प्रदान कर उन्हें वैदिक धर्म मे दीक्षित किया। मसूदा के अनेक जैन मतावलम्बियो के वैदिक धर्म मे दीक्षित होने से जहा आर्य जनो का उत्साह चौगुना हुआ, वहा भाद्रपद कृष्णा द्वितीया को भरतपुर के कई राजपूतो, क्षत्रियो, वैश्यो, कायस्थो और चारणो ने भी स्वामी जी से एक भव्य उत्सव मे यज्ञोपवीत धारण किया।

आर्य ललनाओं का उद्धार

मारवाड के कई राज्यो मे आर्यजन मुगल काल मे मुसलमान बने लोगो को भी अपनी ललनाए दे दिया करते थे। स्वामी जी ने ऐसे लोगो की एक सभा आयोजित कर उन्हे समझाया कि वे अपनी पुत्रियो को मुसलमान बनाने का पातक न करें। स्वामी जी के पावन उपदेश के प्रकाश मे उनके नेत्र खुल गए और इस प्रकार बीसियो आर्य ललनाओ को स्वामी जी ने विधर्मी होने से बचा लिया।

भावभीनी विदाई

स्वामी दयानन्द की कीर्ति की चर्चा अब अन्य रियासतो मे भी होने लगी थी।

रायपुर नरेश ने भी महर्षि दयानन्द को निमन्त्रित किया। दो बार तो मसूदा के राव साहब ने स्वामीजी को प्रस्थान करने से रोक लिया, किन्तु तीसरी बार निमन्त्रण प्राप्त होने पर स्वामी जी ने रायपुर जाने का निश्चय कर लिया। राव साहब ने पुन स्वामी जी से मसूदा मे ही रहने की प्रार्थना की और बोले "महाराज आप यहीं विराजें, यहीं से आपके वेदभाष्य के लिये सहायता का प्रबन्ध कर दिया जायगा।" किन्तु स्वामी जी ने उन्हें सप्रेम समझाया "मैं तो साधु हूँ। मेरा कार्य तो सर्वत्र घूम कर कार्य करना है। अतः आप मुझे प्रसन्नतापूर्वक विदा कीजिए।"

स्वामी जी के नगर से प्रस्थान के दिन एक भव्य विदाई समारोह आयोजित किया गया और राव साहब ने एक अभिनन्दन पत्र इस सभा मे पढ़ा तथा ५०० रुपये की धन राशि भेंट की। बाद मे स्वामी जी को बग्घी मे बैठाया गया और लगभग ४०० प्रमुख नागरिक आधा कोस तक उन्हे पहुँचाने आए। राव महोदय तो लगभग ४ कोस तक स्वामी जी का उपदेश सुनते ही चले गए। भाद्रपद कृष्णा नवमी सवत् १९३८ को मसूदा से हुई थी। स्वामी दयानन्द की यह भव्य विदाई थी। बग्घी से ही स्वामी जी उसी दिन सायकाल ७ बजे ब्यावर पहुँचे और लगभग तीन घण्टे तक एक सराय मे ठहरे।

रायपुर

ब्यावर से स्वामी जी ने रेलगाडी द्वारा प्रस्थान किया और अगले दिन प्रात ३ बजे हरिपुर रेलवे स्टेशन पर उतरे और वहां से प्रात काल ८ बजे रायपुर पहुँचे। वहा आपको माधोदास की बगीची के निकट स्थित एक महल मे ठहराया गया।

रायपुर के ठाकुर हरि सिंह जी अपने सबन्धियों व अधिकारियो सहित स्वामी जी के दर्शनार्थ आए और उन्हे एक स्वर्ण मोहर तथा ५ रुपये भेंट किए।

"दासीपुत्र को मन्त्री बनाना अनुचित"

एक स्वागत सत्कार के उपरान्त स्वामी जी ने आगन्तुको को अपने अपने स्थान पर बैठने का निर्देश दिया और कुशलक्षेम के उपरान्त ठाकुर साहब से प्रश्न किया कि आपके यहा राज्य मन्त्री कौन हैं? इस पर ठाकुर साहब बोले कि शेख इलाहीबख्श हैं, किन्तु वह इस समय जोधपुर गए हुए हैं। अतएव उनकी अनुपस्थिति मे उनके भतीजे शेख करीमबख्श सब काम देखते हैं। यह सुनते ही स्वामी जी ने कहा कि "आर्य पुरुषो को उचित नही है कि यवनो को राज्य मन्त्री बनाए, क्योंकि ये दासीपुत्र हैं। इस पर करीमबख्श एवं पांच सात मुसलमान उत्तेजित हो गए और ९ दिन पश्चात् उन्होंने काजी इलाही बख्श के साथ स्वामीजी के पास जाकर पूछा कि "आप हमें दासीपुत्र क्यों कहते हैं?"

किन्तु स्वामी जी ने कुरान के आधार पर जब अपने कथन के पक्ष मे प्रबल तर्क प्रस्तुत किए तो काजी समेत वे सभी निरुत्तर हो गए।

महर्षि बनेड़ा में

बीस दिन तक रायपुर मे निवास करने के उपरान्त महर्षि दयानन्द ने ६ सितम्बर १८८१ को रायपुर से प्रस्थान कर दिया। वहा से आप ब्यावर आए और वहा भी आपने व्याख्यानो से लोगो की ज्ञान पिपासा शान्त की। ब्यावर मे आप १२-१३ दिन ठहर कर पुन मसूदा आए और एक पखवाड़े तक वहां विराजे। वहा से प्रस्थान कर आप बनेडा जा विराजे।

बनेडा नरेश राजा गोविन्द सिंह ने स्वामी जी को बनेडा आमन्त्रित किया था। ३ अक्तूबर १८८१ को मसूदा से रवाना हो कर हुर्दा और रुपाहेली होते हुए महर्षि जब १० अक्तूबर को बनेडा पधारे तो उनके विशाल भाल, नेत्रो की ज्योति और मुख की उज्ज्वल कान्ति का दर्शन कर राजा गोविन्द सिंह गद्गद हो उठे। उन्होने स्वामीजी के चरणस्पर्श करते हुए नम्रभाव से कहा "भगवन्! आप का आगमन हमारे लिये सौभाग्य सूचक है।" स्वामी जी ने भी महाराज से कुशल क्षेम पूछने के बाद कहा कोई प्रश्न पूछना चाहे तो पूछ सकते हैं। बनेडा नरेश स्वय भी अच्छे विद्वान् थे। उन्होने जीव और ब्रह्म के विषय में प्रश्न किया, जिसके उत्तर मे स्वामी ने बताया कि जीवात्मा ब्रह्म से न्यारा है। स्वामी जी ने उन्हें यह तथ्य भी समझाया कि परमात्मा जीवात्मा मे रमा हुआ है, किन्तु जीव उससे न्यारे ही रहते है।

यही बनेडा के राज पण्डित से महीधर भाष्य पर चर्चा हुई तो स्वामी जी ने उसका ऐसा प्रबल तर्कसम्मत खडन किया कि राजपडित महोदय निरुत्तर हो गए।

चित्तौड़गढ़ में आगमन

बनेडा नगरी को लाभान्वित कर देव दयानन्द ने वहाँ से विदाई ली और २६ अक्तूबर को ऐतिहासिक भूमि चित्तौडगढ़ पहुँचे तथा गभीरी नदी तटवर्ती खखेश्वर महादेव मन्दिर मे आसन लगाया। उन दिनो लार्ड रिपन ने चित्तौड मे एक भव्य दरबार का आयोजन किया था। अनेक राजा महाराजा वहा आए थे। स्वामी दयानन्द का आतिथ्य उदयपुर राज्य की ओर से किया गया। राजपूत नरेशो के इस समागम मे जब महर्षि ने महाराणा प्रताप और वीरव्रती दुर्गादास की सन्तानो की दशा निहारी तो उनके नेत्र सजल हो उठे। वीरता के आदर्श और स्वाभिमान तथा स्वातन्त्र्य के सजग प्रहरियो की सतानो की दशा निहार कर महर्षि का हृदय सतप्त हो उठा। उन्हें वे विलासिता व मादक द्रव्यो के प्रति आसक्त और अंग्रेजी दासता के अनुरक्त प्रतीत हुए। महर्षि

जब अपने शिष्यों सहित चित्तौड दुर्ग को देखने पहुँचे तो आपके नेत्रो से अविरल अश्रुधारा प्रवाहित हो उठी और सहसा ही उनके मुख से मानसिक वेदना इन शब्दो मे मुखरित हो उठी **ब्रह्मचर्य का नाश होने से ही भारतवर्ष का नाश हुआ है और ब्रह्मचर्य का उद्धार हुए बिना देश का पुनरुद्धार भी सम्भव नहीं।**

महाराणा सज्जनसिंह से भेंट

स्वामी दयानन्द की गौरव गरिमा का गुणगान महाराणा सज्जन सिंह तक भी पहुँच चुका था। एक दिन वह कई अन्य प्रतिष्ठित नरेशो सहित चुपचाप स्वामी जी से भेंट करने पहुँच गए। उन्होने स्वामी जी को प्रणाम किया और समीप ही पडे एक पटडे पर बैठ गए। उसी समय स्वामी जी ने राजकीय कर्तव्य और कर्म का इतने उत्तम ढग से वर्णन किया कि सभी के मुख से धन्य-धन्य की ध्वनि गूज उठी। स्वामी जी का एक-एक वचन महाराजा के हृदय मे उतरता गया। व्याख्यान की समाप्ति पर देव दयानन्द ने शाहपुराधीश की ओर निहारा और उनसे कुशल क्षेम पूछा। फिर आपने महाराणा की ओर दृष्टिपात करते हुए कहा "इससे पूर्व तो आपसे कही भेंट नही हुई, ऐसा लगता है। कृपया अपनी शोभा वर्णन कीजिए।" कुछ क्षण शाहपुराधीश मौन रहे, फिर बोले "आप ही महाराणा सज्जनसिंह हैं।"

स्वामी जी ने जब उनसे चुपचाप आने का कारण पूछा तो महाराणा बोले "महाराज! आप सरीखे महान् सन्तो के श्रीचरणो मे सामान्य अवस्था मे आने और साधारण आसन पर बैठने मे ही हम गृहस्थो की शोभा है। अन्य सभाओ मे तो हमे राजसी ठाट बाट से जाना ही पडता है, यदि सन्यासियो के श्रीचरणो मे भी उसी ठाट बाट से आए तो क्या बात हुई। वस्तुत. आप सरीखे सन्यासियो का आसन ही तो ऐसा आसन है जहा शासनकर्ताओ को भी नम्रता का पाठ पढ़ने को मिलता है।"

लार्ड रिपन के दरबार के समापन के उपरान्त महाराणा ने स्वामी जी को अपने दरबार मे आमन्त्रित कर उनका अभिनन्दन किया। आपने सम्मान सहित उन्हें आसन प्रदान कर स्वय शिष्य भावना से उनके समीप स्थान ग्रहण किया।

उस दिन के प्रवचन से महाराणा को इस तथ्य की अनुभूति हो गई कि देव दयानन्द सरीखा स्पष्टवक्ता और उपदेष्टा स्वदेश में दुर्लभ है।

चार दिसम्बर १८८१ को महाराणा स्वय स्वामी जी के डेरे पर पधारे और उनसे धर्म तथा राजनीति के विषय पर बहुत देर तक वार्तालाप करते रहे।

मातृशक्ति का सम्मान

एक दिन स्वामी जी कतिपय राजाओ और राज्याधिकारियो सहित भ्रमणाथ जा रहे थे। एक मन्दिर के समीप उन्होने कतिपय बालको को खेलते हुए देखा। उन्हीं में थी एक चार वर्ष की बालिका भी। स्वामी जी का मस्तक सहसा झुक गया। स्वामी जी को नतमस्तक होते देख कर उनके साथ चल रहे सज्जनो मे से एक बोले "यद्यपि स्वामी जी मूर्तिपूजा का खण्डन करते हैं, किन्तु जब देवालय के निकट आए तो उनका मस्तक स्वतः ही नत हो गया।" देव दयानन्द यह सुनते ही सहसा ठहर गए और बालिका की ओर सकेत करते हुए बोले "देखते नही हो, वह मातृ शक्ति है। हम सभी को माताओ ने ही तो जन्म प्रदान किया है। स्वामी जी के इन शब्दो को सुनते ही एक सन्नाटा सा व्याप्त हो गया। आसन पर लौटने तक प्रत्येक के कानो मे स्वामी जी के यही वाक्य गूजते रहे।

स्वामी जी २७ अक्तूबर से १४ दिसम्बर तक चित्तौड मे विराजे और फिर उन्होने बम्बई आर्यसमाज के उत्सव मे सम्मिलित होने के लिए वहां से प्रस्थान कर दिया। विदाई के समय राणा जी ने अपनी बग्घी भेज कर अपने भवन पर आमन्त्रित किया और चरणस्पर्श कर ५०० रुपये भेंट किए।

स्वामी जी बम्बई जाते समय मार्ग मे इन्दौर ठहरे। महाराजा होल्कर तो उन दिनो वहा नही थे, किन्तु उनके दीवान ने स्वामी जी की आवभगत की और स्वामी जी ने एक सप्ताह तक इस नगरी मे सत्सग-सुधा की वर्षा की। तदुपरान्त आप बम्बई रवाना हुए।

बम्बई की अन्तिम यात्रा

३० दिसम्बर १८८१ को महर्षि बम्बई रेलवे स्टेशन पर पधारे तो अल्काट महोदय और उनके आर्य सभासद् आपके स्वागतार्थ उपस्थित थे। रेलगाडी से उतरते ही उन सबने स्वामी जी को नमस्ते कहते हुए उनका अभिवादन किया और स्वामी दयानन्द ने भी सब से कुशलक्षेम पूछा। तत्पश्चात् आप एक गाड़ी मे बैठ कर बालकेश्वर मे गोशाला नामक स्थान पर पहुँचे।

उन दिनो बम्बई में पादरी यूसुफ ने एक व्याख्यान द्वारा यह सिद्ध करने का प्रयास किया था कि ईसाई धर्म ही ईश्वरीय धर्म है। किन्तु जब स्वामी दयानन्द ने उन्हें शास्त्रार्थ के लिये ललकारा तो पादरी महोदय टकराने का साहस

न सजो पाये । स्वामी जी ने अपने सार्वजनिक भाषण मे पादरी महोदय के दावे का भली भाँति खण्डन कर अनेको जिज्ञासु जनो की जिज्ञासा शान्त की ।

आर्य समाज का वार्षिकोत्सव

बम्बई आर्यसमाज का वार्षिकोत्सव समारोह सम्पन्न हुआ । इस उत्सव की दो घटनाए विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण रही । प्रथम तो यह कि स्वामी जी ने थियोसोफिकल सोसायटी से आर्यसमाज के सम्बन्ध विच्छेद की स्पष्ट घोषणा की जिसके परिणाम स्वरूप कर्नल अलकाट का प्रभाव शिथिल पड गया और दूसरी यह कि बम्बई आयसमाज ने पहले निश्चित किए गये विस्तृत नियमो को छोड कर लाहौर आर्यसमाज द्वारा स्वीकृत दस नियमो को मान्यता प्रदान की ।

अद्भुत स्मरण शक्ति

स्वामी जी की स्मरण शक्ति विलक्षण थी । वह जब किसी को एक बार देख लेते और उसे कभी भी पुन॰ देखते तो तुरन्त पहचान लेते । दानापुर से जनकधारी लाल, आदित्य नारायण जी और श्री राम नारायण लाल स्वामी जी से भेंट करने आए थे । अभी वे स्वामी जी से कुछ दूरी पर ही थे कि स्वामी जी ने उन्हे तुरन्त पहचान लिया, जबकि वे स्वामी जी को न पहचान पाए । स्वामी जी ने उनसे अपने साथ आर्यसमाज चलने का आग्रह किया, जहा एक यज्ञ होने वाला था । इन सज्जनो की स्वामी जी से मनोहर वार्ता भी हुई । स्वामी जी ने जनकधारी लाल आदि को सम्बोधित करते हुए कहा "दानापुर मे चलते समय आपकी यह कामना थी कि वहा चल कर अमुक-अमुक प्रश्न पूछेंगे । इस समय हमे भी अवकाश है, जो कुछ पूछना चाहे पूछ ले ।" स्वामी जी के मुख से यह शब्द सुन कर वे सभी चकित हुए बिना न रहे ।

इधर प्रश्न, उधर उत्तर

श्री जनकधारी लाल ने महाराज के निवास स्थान के बाहर बैठ कर अपने पूर्व चिन्तित कठिन प्रश्नो को स्वामी जी से पूछने के लिये लिखना आरम्भ किया । किन्तु ज्यो ही वह एक प्रश्न लिखते, स्वत. ही उन्हे भीतर से उत्तर प्रकाशित लगता । इस प्रकार वे प्रश्न लिखते रहे और उत्तर पाकर उसे काटते रहे । अन्तत एक भी ऐसा प्रश्न न रहा जो वे स्वामी जी को लिख कर दें और उत्तर पूछें । इतने मे ही स्वामी दयानन्द बाहर आ गए और बोले "कहिए, आपने प्रश्न लिख लिए हैं ?" जनकधारी जी बोले "महाराज, अब तो पूछने योग्य कुछ भी नहीं रहा । कृपया ईश्वरोपासना की ही विधि बता दीजिए ।

स्वामी जी ने उन्हे उत्तर दिया "वह तो आपको दानापुर मे ही बता दी गई थी। प्रतीत होता है कि आप तदनुसार आराधना नही करते।"

यथायोग्य उपदेश

श्री जनकधारी लाल के साथ दानापुर से आए एक अन्य सज्जन ने स्वामी जी से उपासना पद्धति का उपदेश देने का अनुरोध किया। महाराज ने अपने नेत्रो की ज्वलन्त ज्योति उस पर डाली और बोले "अभी तो आप यम नियम का ही पालन कीजिए।" वह स्वामी जी के इस उत्तर से खिन्न हो गया और अपने साथियो से बोला "मैं तो इतनी दूरी से आया, किन्तु मैंने कुछ भी नही पाया। इस पर उन सज्जन को उनके सहयोगियो ने समझाया "स्वामी जी, मानव मन के गुप्त भेदो को भी जान जाते है। उन्होने तुम्हे सही उपदेश दिया है।" तभी उसे अपने दुष्कर्म का ध्यान हो आया। उसने मन ही मन कहा कि "जब मैं दाय भाग के एक बडे भारी विवाद मे मिथ्या गवाही देकर आया हूँ, और यहा से जाकर भी उसी मिथ्या कथन को कहूँगा तो स्वामी जी ने मुझे ठीक ही उपदेश दिया था। इससे अधिक का तो मै अधिकारी ही नही था।"

बम्बई के इसी प्रवास मे महर्षि दयानन्द ने एक जिज्ञासु को बताया कि योग शास्त्र अक्षरश सत्य है और इनके साथ ही यह भी कहा कि "यदि आप तीन मास तक मेरे पास निवास करें और मेरे कथनानुकूल योग-क्रियाए साधे तो इस शास्त्र की सिद्धियो का स्वत साक्षात् कर लेंगे।"

ब्राह्मण को सदुपदेश

एक दिन बम्बई मे एक पैंशन प्राप्त ब्राह्मण स्वामी जी की सेवा मे उपस्थित हुआ और उसे आपने परामर्श दिया कि "आप उपदेश कार्य करने लग जाइए।" वह कोई धन्धा न करता था। स्वामी जी ने कहा "आपको पैंशन प्राप्त होती है। उसमे पुत्र पौत्रो का पालन भली भाति होता होगा। आप ब्राह्मण वशीय हैं। आपके पूर्वज पूर्व काल मे जगद्गुरु समझे जाते थे। आपके लिये भी उन्ही का अनुगमन करना श्रेयस्कर है। अपने पूर्वजो के समान ही परोपकार का संकल्प लेकर भीलो की बस्तियो मे चले जाइए। वे दिन प्रतिदिन ईसाई बनते जा रहे हैं। उन्हे ईश्वर भक्ति का उपदेश देकर ईसाइयत के जाल से मुक्त कराइए। आर्य जाति के छीलते हुए तलुओ, फूटती हुई अगुलियो और कटते हुए पदो की रक्षा कीजिए।" किन्तु उस अभागे के भाग्य मे यह सौभाग्य कहा था कि वह महर्षि के आदेशो को शिरोधार्य करता।

"भिक्षुक नहीं बनाना चाहता"

बम्बई मे आर्यसमाज मन्दिर निर्माण निधि मे योगदान देने के लिए एक

दिन एक मारवाडी सज्जन दस हजार रुपये की अपनी समग्र पूंजी लेकर महर्षि के श्रीचरणों मे उपस्थित हुआ। आपने स्वामीजी से कहा कि "मैं अपना सारा द्रव्य आर्यसमाज मन्दिर कोष हेतु समर्पित करना चाहता हूँ।" किन्तु स्वामी जी ने उनकी भावना की प्रशसा करते हुए कहा "मैं आपकी सम्पूर्ण पूंजी लेकर आपके परिवार को परमुखापेक्षी और परान्न-परायण भिक्षु नही बनाना चाहता। जिस धर्म के अग का पालन करते पहला धर्मांग बिगड जाए, वह उचित नहीं है। उस मन्दिर की शोभा भला क्या होगी, जिसके बनने से आपका कारोबार ठप्प हो जाए। हा, आपसे एक सहस्र की राशि ली जा सकती है।" वह सज्जन स्वामी जी के प्रति और भी अधिक श्रद्धालु हो गए।

महादेव गोविन्द रानाडे

यही महादेव गोविन्द रानाडे ने भी स्वामी जी से भेंट कर एक घण्टे तक वार्ता की थी और तदुपरान्त वह आजीवन स्वामी जी को अपने गुरु के रूप मे मानते रहे और सार्वजनिक रूप से यह घोषणा भी करते रहे।

मोनियर विलयम्स से मिलन

उन्ही दिनो सुप्रसिद्ध पाश्चात्य विद्वान् मोनियर विलियम्स भी बम्बई आए हुए थे। उन्होने स्वामी जी से भेंट की। पहले दोनो का वार्तालाप संस्कृत मे हुआ। किन्तु बाद मे दुभाषिए की सहायता ली गई। एक लम्बे कथनोपकथन के उपरान्त श्री विलियम्स ने स्वामी जी की विद्वत्ता की प्रशसा करते हुए कहा "आपके विचार अत्यन्त परिमार्जित और उच्च हैं। यूरोप-वासियो मे भी इन विचारो का प्रचार होना आवश्यक है। यदि आप इस महाद्वीप की यात्रा करना चाहे तो मैं आपके व्यय का भार उठाने को तैयार हूँ।"

स्वामी जी ने उन्हे धन्यवाद देते हुए उत्तर दिया **जिस भारत भूखण्ड में मैं रहता हू, वहां अविद्या अधकार के सघन घन घहरा रहे हैं। इस देश के वासी दिन प्रतिदिन अधिकाधिक विपन्न और निर्धन होते जा रहे हैं। यहां के समाज मे कुरीतियों का भी पारावार नहीं। अतः इस देश का सुधार ही मैं अपना प्रमुख कर्त्तव्य मानता हू।**

गोरक्षार्थ प्रबल प्रयास

महर्षि दयानन्द ने राष्ट्र हित की दृष्टि से जिन महत्त्वपूर्ण कार्यों को सम्पन्न किया उनमे से एक गोरक्षा की दृष्टि से किया गया प्रयास भी था। उन्होने इस विषय मे भारत भर में सैकडो व्याख्यान दिए तो सहस्रो ईसाइयों और मुसलमानो को भी गोरक्षा की उपादेयता के सम्बन्ध में समझाया। उन्होंने

गोकरुणानिधि नामक पुस्तिक का प्रकाश कराया और गोहत्या पर रोक लगाने के लिए महारानी विक्टोरिया को ज्ञापन पहुँचाने हेतु कटिबद्ध हुए। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये उन्होने करोडो हस्ताक्षर करवा कर महारानी को प्रेषित करने का भी निश्चय किया था किन्तु उनके असामयिक निधन ने उनकी यह योजना पूर्ण न होने दी।

इसके साथ आर्य भाषा (हिन्दी) के प्रचार और प्रसार और विदेशी मिशनरियो की गतिविधियो के प्रतिकार के लिये भी उन्होने भारत भर मे अनुकूल वातावरण तैयार किया।

———ooo———

स्वामी जी और महाराणा सज्जनसिंह

बम्बई से प्रस्थान कर स्वामी दयानन्द २५ जून १८८२ को खण्डवा पहुँचे और वहा से इन्दौर तथा रतलाम होकर १६ जुलाई को जावडा जा विराजे। वहा से २५ जुलाई १८८२ को उदयपुर जाते हुए आपका चित्तौड मे पुनरागमन हुआ। चित्तौड दो सप्ताह तक ठहर कर महर्षि ने उदयपुर की राह ली और अगस्त ११ को राजस्थान की वीर भूमि की इस महानगरी मे प्रवेश किया।

यहा महाराणा ने आपके ठहरने की व्यवस्था नौलखा उद्यान मे की।

महाराणा के जीवन को नई दिशा

उदयपुर मे श्री मोहनलाल विष्णुलाल पड्या आदि अनेक सज्जन महर्षि के श्रीचरणो मे बैठ कर अध्ययन करने लगे। उनके बाद महाराणा सज्जन सिंह भी इसी श्रेणी मे सम्मिलित हो गए। वह पहले भी सस्कृत का कुछ अभ्यास कर चुके थे, अत उन्हे शास्त्रो के पढने मे कोई विशेष कठिनाई नही हुई। विशेष आग्रह पर महर्षि ने उन्हे मनुस्मृति का राज प्रकरण भी पढाया। राजा के धर्मो का अनुशीलन कर महाराणा को एक नवीन ज्योति मिली। उनके जीवन मे यथा मोड आया। महाराणा प्रात काल उठने लगे, सन्ध्योपासना भी नियमानुसार होने लगी। मदिरापान और वेश्यागमन से भी वह सर्वथाविमुख हो गये। धीरे-धीरे महाराणा ने वैशेषिक और योग दर्शन पढे तथा प्रायाणाम विधि भी सीख ली। इस स्थिति का प्रभाव राज्याधिकारियो पर भी पड रहा था।

महर्षि दयानन्द द्वारा लिखित एक पत्र से महाराणा उदयपुर के जीवन मे आये परिवर्तन पर प्रकाश पडता है। उस पत्र मे महर्षि ने लिखा था —

"महाराणा जी ने सत्संग किया। केवल श्रवण मात्र ही नहीं, किन्तु उसका निदिध्यासन और मनन भी किया। सो महाराणा जी ने केवल दिन-चर्या के उपदेश पर चल कर अपने जीवन को नियमानुसार ही नही बनाया वरन वेश्यादि के दर्शन को भी छोड दिया।

भारत का पूर्ण हित कब ?

एक दिन पण्ड्या जी ने महर्षि से पूछा कि महाराज ! भारत का पूर्ण हित और जातीय उन्नति कब होगी ?

स्वामी जी ने उत्तर दिया "एक धर्म, एक भाव और लक्ष्य बनाए बिना भारत का पूर्ण हित और जातीय उन्नति होना दुष्कर कार्य है। सभी उन्नतियो का केन्द्र-स्थल है ऐक्य। जहा भाषा, भाव और भावना मे एकता आ जाए, वहाँ सागर मे नदियो की भाति सारे सुख एक-एक करके प्रवेश करने लग जाते हैं। मेरी इच्छा है कि देश के राजा महाराजा अपने शासन मे सुधार तथा सशोधन कर अपने राज्य मे धर्म, भाषा और भावो मे एकता उत्पन्न करें।

मत-मतान्तरो के खडन के सम्बन्ध मे पण्ड्या जी की शका का समाधान करते हुए स्वामी जी ने कहा "एक तो मेरा धार्मिक लक्ष्य सार्वजनिक है। इसे सकुचित नही किया जा सकता। दूसरे भारतवासी ऐसी गहरी निद्रा मे निमग्न हैं कि मीठे शब्दो से तो वे आखें खोल कर देखने को भी तैयार नही होते।सुधार का तो ये नाम तक लेने को तैयार नही। यदि ये कुरीतियो के खडन रूपी कोडे से भी जाग जाए तो ईश्वर को कोटि-कोटि धन्यवाद दूंगा।"

आपने पुन कहा "कोई देश जन शून्य नही हो जाया करता। जनता तो विद्यमान रहती ही है। परन्तु धर्म-गुरुओ तथा सामाजिक नेताओ की असावधानी, आलस्य और प्रमाद से भाव, भावना और एकता आदि के चिह्न परिवर्तित हो जाते है। रहन-सहन के ढग मे भेद आ जाता है। ठीक ऐसी ही स्थिति आज देश की है। यदि स्थिति को सम्भाला न गया तो आर्य जाति परिवर्तन के प्रबल चक्र मे पड कर अतिशय उतावलीवश अपने पूर्व पावन शरीर को ही परिवर्तित कर लेगी। इसके पिछले प्रमाद के परिणामस्वरूप करोडो लोग मुसलमान हो गए। अब प्रति दिन सैकडो ईसाई बनते जा रहे हैं। ऐसे समय स्वधर्म बन्धुओ को कठोर हाथो से उनकी शिखायें पकड कर जगाना होगा। मैं इस कटु कर्तव्य का पालन अपने स्वार्थ के लिए नही कर रहा। मुझे तो इसके कारण अवहेलना, निन्दा, कुवचन, ईंट-पत्थर और विष भी स्थान-स्थान पर मिलता है किन्तु मैं धर्म और जाति के उत्थान के लिए यह सब कुछ सह रहा हूँ।"

पांड्या जी का हृदय भी भावोद्रेक से भर गया और वह बोले "भगवन् !

यदि आप सरीखे दो चार धर्माचार्य हो जाए तो आर्य जाति का उद्धार हो सकता है।"

स्वामी जी का क्रोध

एक दिन स्वामी दयानन्द जी अकेले बैठे थे तो महाराणा सज्जनसिंह पधारे और विनीत भाव से बोले "महाराज, आप मूर्तिपूजा का खण्डन करना छोड दें। यह राजनीति के सर्व सग्रह सिद्धान्त के प्रतिकूल है। यदि आप मेरी बात मान लें तो एकलिंग महादेव की महान् गद्दी आपकी है। यो तो यह राज्य भी उसी को समर्पित है, किन्तु मन्दिर के नाम से राज्य का जो भाग लगा हुआ है उसकी आय भी लाखो रुपये वार्षिक है। यह सभी ऐश्वर्य आपका हो जाएगा और आप राजगुरु माने जायेंगे।"

महाराणा की इस प्रार्थना को सुनते ही कभी क्रोध न करने वाले देव दयानन्द का मुख मण्डल तमतमा उठा और वह गरज उठे "महाराणा, मुझे तुच्छ प्रलोभन दिखा कर परमात्मदेव से विमुख करना चाहते हो। उसकी आज्ञा भग कराना चाहते हो। आपके छोटे से राज्य और मन्दिर से मैं एक दौड लगाकर बाहर निकल सकता हूँ। वह मुझे अनन्त ईश्वर की आज्ञा भग करने हेतु विवश नही कर सकता।"

महाराणा सज्जनसिंह ने तत्काल ही करबद्ध हो निवेदन किया कि "महाराज मैंने तो आपके निश्चय की दृढता जानने के लिए ऐसा कह दिया था। कृपा करके मुझे क्षमा प्रदान कीजिए। मुझे विस्वास हो गया है कि विश्व की कोई भी वस्तु आपकी दृढता को नही हिला सकती।"

सदुपदेश

महर्षि दयानन्द ने दशहरा महोत्सव के अवसर पर महाराणा को भैंस न काटने का सदुपदेश दिया तो एक दिन यह मर्म भी महाराणा को मनुस्मृति का पाठ पढाते हुए समझाया कि "यदि कोई अधिकारी धार्मिक आज्ञा दे तभी पालन करना चाहिए, अधर्मयुक्त कथन का नही।" उसी अवसर पर आपने सरदारगढ के ठाकुर मोहनसिंह के एक शका उपस्थित करने पर कहा कि "धर्म हीन होने से तो भीख माग कर खाना कही अधिक श्रेयस्कर है।"

परोपकारिणी सभा का गठन

दूरदर्शी महर्षि दयानन्द ने अब अपनी जीवन लीला के निकट आते हुए अन्त को देख लिया था। मेरठ से प्रस्थान करते समय उन्होने जो वाक्य कहे थे, उन से इस तथ्य की पुष्टि हो जाती है। वहा अपने व्याख्यान मे उन्होने आर्य जनो का आह्वान किया था "महाशयो! मैं सदैव नही बना रहूँगा।

विधाता के न्याय नियम से मेरा शरीर क्षण भगुर है। काल सभी को अपने कराल गाल मे समा लेता है। अन्त मे इस देह के कच्चे घडे को भी उसके हाथो टूटना ही है। सोचो, यदि तुम स्वावलम्बी न बनोगे तो मेरे नेत्र मूदने के बाद क्या करोगे ? अभी से स्वयं को सुसज्जित कर लो। स्वावलम्बन का सिद्धान्त अपनाओ। अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने के योग्य बन जाओ। किसी दूसरे के सहारे की आशा त्याग कर आत्म निर्भर बनो।"

महर्षि चिन्तित थे कि मेरे देह त्यागने के उपरान्त कौन पीछे से सारे कार्य को सभालेगा। सभालने को भी तो बहुत कुछ था। सर्वप्रथम तो महर्षि यह विचार रखते थे कि देश भर मे फैले आर्यसमाजो का एक केन्द्रीय सगठन बने। दूसरी चिन्ता थी उन्हे वेद प्रचार की। इसके अतिरिक्त महर्षि ने वेदभाष्य और अपने अन्य ग्रन्थो के मुद्रणार्थ १८८० मे ही वैदिक यत्रालय की स्थापना तो कर दी थी, किन्तु हिसाब किताब मे गडबडी की शिकायतें भी मिलने लगी थी।

इस समग्र स्थिति पर विचार करने के उपरान्त उन्होने एक ऐसी सभा के गठन का निश्चय किया जो इन सारे कार्यों का सचालन करे तथा त्रुटियो को भी दूर कर सके। एतदर्थ उदयपुर मे अपने निवास की इस अवधि मे ही उन्होंने परोपकारिणी सभा का गठन एक स्वीकार पत्र (वसीयतनामे) के रूप मे किया। इसका प्रारम्भ इन शब्दो मे किया गया —

मैं स्वामी दयानन्द सरस्वती निम्नलिखित नियमो के अनुसार २३ आर्य पुरुषो की सभा को वस्त्र, पुस्तक, धन और यत्रालय आदि अपने सर्वस्व का अधिकार देता हूँ और उसको परोपकार सुकार्य मे लगाने के लिए अधिष्ठाता बना कर यह स्वीकार पत्र लिख देता हू कि समय पर काम आए।"

इस सभा को ही महर्षि ने अपनी उत्तराधिकारिणी बनाया था और उसके अध्यक्ष थे महाराणा सज्जनसिंह तथा उपाध्यक्ष थे लाला मुरारीलाल एम० ए० (लाहौर) एव मन्त्री श्री कवि श्यामलदास जी (उदयपुर) व लाला रामशरण दास रईस (मेरठ)। इसके सदस्यो मे महान् ऋषि भक्त और क्रान्तिकारियो मे अग्रगण्य श्यामजी कृष्ण वर्मा तथा महादेव गोविन्द रानाडे आदि प्रमुख थे।

२७ फरवरी को महर्षि दयानन्द को महाराणा उदयपुर ने एक भव्य समारोह मे विदाई दी। स्वामीजी ने पहली मार्च १८८३ को वहा से शाहपुरा के लिए प्रस्थान किया।

—:०००:—

स्वामी जी शाहपुरा में

उदयपुर से प्रस्थान कर स्वामी जी एक मार्च को निम्बाहेडा पहुँचे और वहा से प्रस्थान कर उसी रात को ६ बजे चित्तौड आगए। वहा सात मार्च तक ठहर कर आपने उस प्रतिनिधि मण्डल के साथ शाहपुरा के लिये प्रस्थान किया जो शाहपुराधीश ने आपकी अगवानी के लिये भेजा था। स्वामी दयानन्द ६ मार्च १८८३ को शाहपुरा पधारे। वहा राजकीय उद्यान मे आपके ठहरने की व्यवस्था की गयी। सायकाल ही शाहपुरा नरेश राज्य के सम्मानित सज्जनो सहित स्वामी जी के दर्शनार्थ आए।

दैनिक कार्यक्रम

यहा स्वामी जी का अधिकाश समय वेद-भाष्य मे ही लगता था। कुछ समय तक वे श्रद्धालु भक्त जनो को उपदेश देते थे और उनकी शकाओ का समाधान भी किया करते थे। किन्तु सायकाल ६ से रात्रि ६ बजे तक शाहपुराधीश स्वामी जी के श्रीचरणो मे बैठ कर उनसे शिक्षा ग्रहण करते थे और एक घण्टे धर्म सम्बन्धी सशयो का निवारण किया जाता था।

देव दयानन्द के श्रीचरणो मे बैठ कर शाहपुराधीश ने मनुस्मृति, पातजल योगदर्शन और वैशेषिक दर्शन के कुछ अशो का अध्ययन तो किया ही, साथ ही प्राणायाम का भी अभ्यास किया। स्वामी जी के उपदेशो का यह प्रभाव हुआ कि राजमहल मे महर्षि की इच्छानुसार एक यज्ञशाला बनी और दैनिक यज्ञ की भी व्यवस्था की गयी।

रामस्नेही शास्त्रार्थ को आए

शाहपुरा मे रामस्नेही सम्प्रदाय के महन्तो की प्रमुख गद्दी है। यहाँ उनके प्रमुख महन्त महात्मा हिम्मत राय जी को स्वामी जी ने शास्त्रार्थ हेतु आमन्त्रित किया, किन्तु उन्होने शास्त्रार्थ करने से स्पष्ट शब्दो मे इनकार कर दिया। यहा रामस्नेहियो के वार्षिक समागम के अवसर पर अनेक श्रद्धालु जन स्वामी जी के दर्शनार्थ आए और उनकी तर्क शक्ति और सत्य ज्ञान से अपने हृदयो को आलोकित करके लौटे।

योग बल से सूक्ष्म विषय का भी ज्ञान

शाहपुरा मे जिस स्थान पर स्वामी दयानन्द को ठहराया गया था, वहाँ दोपहर मे प्रचण्ड गर्मी और लू से बचाव हेतु खस की टट्टियां लगा दी गई थी। एक दिन मध्याह्नोत्तर जब जल छिड़का गया तो स्वामी जी महाराज ने सहसा ही कहा "आज तो कही से दुर्गन्ध आरही है।" सेवको ने चतुर्दिक् देखा, किन्तु कही भी कोई गली सडी वस्तु दिखाई न दी। तदुपरान्त एक सेवक को बुलाकर स्वामी जी ने पूछा "क्या खस की टट्टियों पर कुड का बासी पानी डाला है।" उसने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया "यो तो मैंने कुँड से कल का सारा जल निकाल दिया था, किन्तु हो सकता है कि घडा आधा घडा रह गया हो। किन्तु उसमे तो ताजा जल के लगभग १०० घडे डलवाए गए है।" "हा, तो फिर उसी थोडे से बासे पानी के कारण दुर्गन्ध आ रही होगी। इसी समय ये खस की टट्टिया उतार दो और फिर कभी ऐसा न करना। योगिराज की धारणा शक्ति का परिचय प्राप्त कर श्रद्धालु ऋषि भक्तो को विश्वास होगया कि महाराज को योग बल से ऐसे सूक्ष्म विषय का ज्ञान हो जाता है।

जोधपुर से निमन्त्रण

शाहपुरा के इस प्रवास काल मे जोधपुराधीश महाराजा जसवन्तसिह का निमन्त्रण पत्र स्वामी जी को प्राप्त हुआ, जिसमे कहा गया था कि "आप हमे इस राज्य मे पधारकर कृतार्थ करे।"

जब स्वामी जी ने जोधपुर जाने का निश्चय किया तो शाहपुराधीश ने उनकी सेवा मे निवेदन किया 'महाराज! राजा लोग विलास और मनमाने आमोद-प्रमोद मे निमग्न रहते हैं। जहाँ आप जा रहे हैं, वहाँ वारागनाओ का अधिक खण्डन न कीजिएगा। स्वामी जी ने उन्हे उत्तर दिया "मैं बडे-बडे कटीले वृक्षो को नुहरने से नही कतरता। उनके लिये तो अति तीक्ष्ण शस्त्रों की आवश्यकता होगी।"

विदाई

शाहपुराधीश ने ज्येष्ठ कृष्णा ६ शनिवार सवत् १६४० को दिन के दस बजे स्वामी दयानन्द को जोधपुर जाते समय विदाई दी और उन्हे २५० रुपए भी भेंट किए। इसके साथ ही एक उपदेशक के लिए ५० रुपया मासिक देने का भी वचन दिया।

—+—

जोधपुर आगमन

२६ मई, १८८३ को स्वामी जी ने शाहपुरा से विदाई ली। शाहपुरा नरेश स्वयं कई मील तक स्वामी जी के साथ गाडी मे आए। सडक माग से यात्रा करते हुए स्वामी जी २८ मई को अजमेर पधारे। वहा सेठ फतेहमल भवकरिया की कोठी मे एक दिन ठहरे और सायकाल आपका प्रवचन हुआ। यहा कई प्रमुख व्यक्तियों मे आपकी भेंट हुई।

"सत्योपदेश ही करूगा"

अजमेर के आर्य जनो ने भी स्वामी जी को जोधपुर की स्थिति से अवगत कराया, किन्तु उन्होने उत्तर दिया "यदि लोग हमारी अगुलियो की बत्तियाँ बनाकर भी जला देगे तो भी हमे चिन्ता नही। मै वहाँ जाकर भी सत्योपदेश ही करूगा।"

स्वामी जी ने २९ मई को रेलगाडी द्वारा प्रस्थान किया और पाली स्टेशन पर उतरे। वहाँ स्वामी जी की अगवानी हेतु नवलदास एक हाथी, तीन रथ, तीन ऊट, एक सुसज्जित गाडी और चार अश्वारोही सैनिको समेत उपस्थित थे। स्वामी जी ने एक रात पाली मे विश्राम किया। अगले दिन प्रात काल आपने वहा से जोधपुर के लिए प्रस्थान किया। पाली से जोधपुर तक सडक मार्ग से ही जाना था। भारी वर्षा के कारण मार्ग मे कठिनाइयाँ उपस्थित हो रही थी। रथ शिखर का एक भाग भी वायु के थपेडो मे उड गया। अत: स्वामी जी को उस दिन मार्ग मे रोहित नामक स्थान पर ठहरना पडा। वहा के जागीरदार ठाकुर गिरधारीसिंह ने आपका समुचित आदर सत्कार किया। स्वामी जी रात्रि को वहाँ से चलकर ३१ मई को प्रात काल उस समय वाहन से उतरे जब जोधपुर लगभग ४ मील दूर रह गया। राव राजा जसवन्तसिंह ने नगर से बाहर कुछ दूर पैदल चलकर युग पुरुष दयानन्द की अगवानी की और उनके श्रीचरणो का स्पर्श कर स्वय को धन्य माना।

भेंट समर्पण

जोधपुर मे फैजुल्ला खा की कोठी मे स्वामी जी को ठहराया गया। ज्यो

ही स्वामी जी वहां पहुँचे त्यों ही जोधपुर नरेश के छोटे भाई महाराजा कर्नल सर प्रतापसिंह और राव राजा तेजसिंह ने आकर स्वामी जी का स्वागत किया और उन्हे भेंट स्वरूप एक स्वर्ण मोहर तथा २५ रुपए समर्पित किए। उनके निवास स्थान पर एक अंग रक्षक की भी व्यवस्था कर दी गयी। महाराजा जसवन्तसिंह गले मे पीडा होने के कारण स्वय स्वामी दयानन्द के स्वागतार्थ न आ सके थे। स्वामी जी का आगमन जोधपुर मे चतुर्दिक् चर्चा का विषय बन गया और सैकडो श्रद्धालु जनो का समुदाय उनके दर्शनार्थ उमडने लगा।

महाराजा जोधपुर से भेंट

स्वामी जी को जोधपुर पधारे जब २७ दिन हो गए तो महाराजा भी काफी स्वस्थ हो गए थे। अतएव वह भी स्वामी जी के दर्शनार्थ नजर बाग के समक्ष स्थित उस कोठी पर पधारे, जहा स्वामी जी के ठहरने की व्यवस्था की गई थी।

उन्होने स्वामी जी का अभिवादन कर उन्हे पाच स्वर्ण मुद्राए और एक सौ पाच रुपया भेंट के रूप मे अर्पित किए। अपनी विनम्रता का प्रदर्शन करते हुए महाराजा फर्श पर ही बैठ गए। जब उनसे आसनासीन होने के लिये कहा गया तो उन्होने श्रद्धा भावना सहित उत्तर दिया "भगवन्! आप हमारे स्वामी है और हम हैं आपके सेवक। आपके समक्ष तो नीचे आसन पर बैठने मे ही हमारी शोभा है।"

महाराजा जसवन्तसिंह स्वामी जी से तीन घण्टे तक वार्तालाप करते रहे और इसी प्रकार वह दो बार पुनः स्वामी जी की सेवा मे उपस्थित हुए। स्वामी जी भी तीन बार राजप्रसाद को अपनी चरण रज से पवित्र करने वहा पहुँचे।

जोधपुर मे स्वामी जी द्वारा सत्य सनातन वैदिक धर्म की ज्ञान गगा अविरल प्रवाहित की जा रही थी, जिसमे स्नान कर अनेक जिज्ञासु जन नव-जीवन पा रहे थे, किन्तु कुछ ऐसे भी थे, जिन्हे इस युग पुरुष के उपदेश अपनी चलती दुकानो का दिवाला निकाल देने वाले प्रतीत हो रहे थे। इस वर्ग के लोग मन ही मन महर्षि के प्रति डाह का भाव सजोने गए। स्वामी जी की सभाओ मे आकर उनके समक्ष कुछ कहने का साहस तो वे न सजो पाते थे, किन्तु उन्होने महर्षि के विरुद्ध षड्यन्त्र रचने आरम्भ कर दिए थे। इधर जोधपुर मे स्वामी दयानन्द की गुण गरिमा की चर्चा बढती जाती थी तो दूसरी ओर षड्यन्त्रों के सिलसिले भी।

—✱—

स्वामी जी के अन्तिम दिन

स्वामी दयानन्द अर्थात् एक क्रान्तिमय जीवन एक विद्रोही चिन्तन । यही था इस युग महापुरुष का जीवन सार । १८५७ के क्रान्ति समर के सूत्रधार इस महान् मनीषी द्वारा जगाई गई राष्ट्रवाद की ज्योति से अपना पथ खोजने के लिये प्रवृत्त हुए तो सामाजिक क्षेत्र मे क्रान्ति का शखनाद करने वाले श्री केशवचन्द्र सेन, राजा राममोहन राय एव महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर सरीखे समाज सुधारक भी उनके अनुकरणीय जीवन से प्रभावित हुए बिना न रह पाए ।

देव दयानन्द के भव्य व्यक्तित्व ने तत्कालीन राजाओ और महाराजाओ को भी उनके चरणो मे नतमस्तक होने को प्रेरित किया तो प्रजा के कल्याण हेतु देव दयानन्द द्वारा दिये गये उपदेश उनके लिये भी आप्त वाक्य बन गए । उनके जीवन के प्रमाद महर्षि के सम्पर्क मे आकर दूर हो गए और उनमे सात्विक आदर्श एव राजपद योग्य गुणो का विकास हुआ ।

कट्टरपंथी विरोधी

किन्तु जहा एक ओर महर्षि दयानन्द के पारस रूपी जीवन का स्पर्श पा कर अनेक लोहे भी कुन्दन बन रहे थे, वहा दूसरी ओर इस देश के विशुद्ध राष्ट्रीयता और धर्म के उद्भव से सशक वर्ग और विकृत परम्पराओ को ही धर्म मानने वाले अनेक कट्टरपथियो का एक वर्ग उनका घोर विरोधी भी बन गया था और इसके साथ ही उनके विरोधियो का एक और वर्ग भी उभरा, जिसकी यह धारणा थी कि यदि हिन्दू जाति मे एकेश्वरवाद, शुद्धि और नारी शिक्षा के फलस्वरूप धार्मिक क्रान्ति को सफलता मिल गयी तो हिन्दुओ मे विद्यमान फूट का एक प्रमुख आधार समाप्त हो जाएगा ।

अपने भी, पराए भी

इस प्रकार अपने और पराए अनेको महर्षि के कार्यों के चारो ओर अपनी लौह परिधि खडी करके अड गए । किन्तु देव दयानन्द एक महावीर के तुल्य अपने सकल्पित पथ पर बढते ही गए । उन्होने विपदाओ के बवण्डर की चिन्ता नही की और न ही विरोधो के प्रबल झझावात के समक्ष ही उनके मन रूपी हिमालय ने किसी प्रकार का कम्पन अनुभव किया । यह युग द्रष्टा स्वजाति

को आपदा मुक्त करने हेतु अपने लिये आपदाओ को निमन्त्रण देता रहा। हर युग मे जन्मे मानव मात्र के मुक्तिदाता महापुरुषो के समान ही अपनो और परायो की डाह इसकी भी नियति बनी।

जोधपुर राजमहल की स्थिति

इस प्रकार के वायुमण्डल मे ही महर्षि दयानन्द जोधपुर पहुँचे। वहा की सत्ता महाराजा जसवन्तसिह के हाथो मे थी और उनके राज्य मे सभी मतो का आलम्बन करने वालो को पूर्ण धार्मिक स्वातन्त्र्य प्राप्त था। राज्य के उच्च पदो पर नियुक्तियो मे कोई भेदभाव नही बरता जाता था। उन दिनो राज्य के दीवान थे फैजुल्ला खाँ। दानशील और सज्जनो तथा विद्वज्जनो और महात्माओ का आदर करने वाले महाराज जसवन्तसिह के चतुर्दिक् चाटुकारो की मण्डली ने एकत्र होकर राज्य की आतरिक व्यवस्था को असतोषजनक बना दिया था। वे वैभव विलास मे मग्न रहने लगे थे और उस समय की परम सुन्दरी वैष्णवी भगतिन नन्ही तो उनके दिल और दिमाग पर कब्जा जमाए बैठी थी। वेश्या होते हुए भी वह थी कट्टर वैष्णव। उसकी छोटी बहन लाली भी वेश्या ही थी और उसने महाराजा के छोटे भाई किशोरसिंह को अपने रूप लावण्य के पाश मे आबद्ध कर लिया था। नन्ही के राजमहल मे आने पर और लौटने पर प्राय महाराजा स्वय ही उसकी अगवानी करते और उसे विदाई देते थे। इतना ही नहीं, रूप और लावण्य की इस जीवित जागृत प्रतिमा को महाराजा "नन्ही जी" कहकर सम्बोधित किया करते थे।

नन्ही का महाराजा पर प्रभाव

नन्ही का महाराजा पर इतना प्रभाव था कि एक बार राज्य के एकउच्चाधिकारी ने महाराजा का धर्म जनगणना के अवसर पर लिखे जाने की दृष्टि से नन्ही से ही पूछा था। नन्ही ने तो उसे कह दिया था कि महाराजा का धर्म वैष्णव लिख दिया जाए। महाराजा ने उसका विरोध किया और अपना धर्म वैदिक ही लिखवाया। किन्तु इस घटना से यह तो स्पष्ट हो जाता है कि नन्ही की महाराजा के व्यक्तिगत मामलो मे भी कितनी आवाज थी। यह इस तथ्य का भी द्योतक है कि महर्षि का महाराजा पर पर्याप्त प्रभाव पड चुका था और उनके हृदय मन्दिर मे देव दयानन्द श्रद्धापूर्ण स्थान बना चुके थे।

नन्ही का वैभव

जहा तक नन्ही के वैभव का सम्बन्ध था, उसका अनुमान इसी बात से लग जाता है कि जब उसकी मृत्यु हो गयी तो उसकी सम्पत्ति की नीलामी से राज्य को लगभग बीस लाख रुपए की आय प्राप्त हुई थी। उसकी घाघरो की

सख्या ही छः सात सौ थी। इसके साथ ही उसके पास हीरे जवाहरात के अगणित आभूषण भी थे। आज के युग में यदि उस सम्पदा का आकलन किया जाये तो उसका मूल्य लगभग दस गुना तो माना ही जाएगा।

वह चार-पाच वर्ष तक भयकर रोगिणी और अत्यन्त पीडित रहकर २४ जुलाई, १६०६ को मरी थी। आज भी जोधपुर मे स्थित एक हवेली उसकी याद दिला देती है।

महर्षि का आह्वान

एक ओर राज्य परिवार से लेकर जोधपुर के नरेश तक मे वेश्यावृत्ति का प्राबल्य था तो दूसरी ओर स्वामी दयानन्द वेश्यावृत्ति आदि के परम विरोधी थे। क्षत्रियो के आचार और कर्त्तव्यो का निरूपण करते हुए वे मूर्ति पूजा के समान ही इस बुराई की भी कठोर शब्दो मे निन्दा किया करते थे। उनके इस आह्वान से वेश्यावृत्ति के प्रति अनुरक्त एक बडा और प्रभावशाली वर्ग स्वामीजी का विरोधी हो गया तो राज्य के कतिपय मुसलमान अधिकारियो को भी वह खलने लगे थे, क्योंकि मुसलमान मत की उनकी समालोचना से फैजुल्ला खा कुपित थे। एक दिन चिढ कर उन्होने यहा तक कह दिया था कि "स्वामी जी! यदि मुसलमानो का राज्य होता तो आपको लोग जीवित न छोडते।"

किन्तु निर्भीक दयानन्द ने उन्हे उत्तर भी बडा करारा दिया था—"यदि ऐसा अवसर आता तो मै भी कदापि न घबराता और दो चार वीर राजपूतो की पीठ ठो/क कर ऐसे विरोधियो के धुर्रे उडा देता।"

इसी भाति /उनका मूर्ति पूजा खण्डन कई पण्डे पुजारियो को खल रहा था।

षड्यंत्रकारियो को बल

इस प्रकार की परिस्थितियो मे एक ऐसी घटना घटी कि असतोष का यह दावानल और भी अधिक धधक उठा। वह घटना थी नन्ही भक्तिन के साथ सम्बन्धो को लेकर महाराज द्वारा महल मे ही महाराजा की उपस्थिति मे ही की गई कटु आलोचना।

हुआ यह कि एक दिन जब स्वामी जी महाराजा से मिलने पधारे तो नन्ही भक्तिन भी वहा उपस्थित थी। द्वारपाल स्वामी जी को भीतर आने से रोकने का साहस न सजो पाया। महाराज के आगमन का समाचार ज्यो ही महाराज जसवन्त सिंह को प्राप्त हुआ, उन्होने सेवको को आदेश दिया कि नन्हीं भक्तिन को यथाशीघ्र राजमहल से बाहर ले जाओ। शीघ्रता मे नन्ही जब पालकी मे बैठ रही थी तो वह कुछ डगमगा गई। जोधपुर नरेश ने सहारा

देकर उसे सभालने का प्रयास किया । कुछ हास-परिहास भी हुआ । इस दृश्य को महर्षि दयानन्द ने निहारा और वे वहीं जोधपुर नरेश से बोले "महाराज ! क्षत्रिय वीर सिंह के तुल्य समझे जाते हैं । यत्र तत्र भटकने वालियों के साथ उनका ऐसा सम्बन्ध शोभनीय तो है ही नहीं, साथ ही आर्य मर्यादा के भी विपरीत है ।"

महर्षि के इन वाक्यो ने नन्ही को क्रोधाग्नि से दग्ध कर दिया, किन्तु जोधपुराधीश महर्षि के वाक्यो से अभिभूत हुए । तदुपरान्त महर्षि ने नितान्त प्रेम सहित उन्हें समझाया और पत्रादि भी लिखे । इस सबका परिणाम भी हुआ और जोधपुराधीश के जीवन मे सयम व सदाचार के विचार बल पाते गये । दूसरी ओर नन्ही के लिये यह स्थिति असह्य हो उठी और प्रतिशोध की ज्वाला से दग्ध यह नारी विरोधी वर्ग से जा मिली ।

दूध में विष

और अन्तत॰ षड्यत्रकारियो के गुट को और अधिक बल मिला गया और २५ सितम्बर, १८८३ की रात्रि मे महर्षि के निवास स्थान से ६००-७०० रुपये का सामान चोरी हो गया । स्वामी जी की सेवा मे रहने वाले रामानन्द ब्रह्मचारी को भी इन दिनो षड्यत्रकारियो ने फोड लिया था । इस घटना के चार दिन पश्चात् अर्थात् २९ सितम्बर १८८३ को महर्षि को दूध मे कांच पीस कर पिला दिया गया । इस कुकृत्य का सूत्रधार बना उनका रसोइया जगन्नाथ । दया की साक्षात् मूर्ति देव दयानन्द ने इस नराधम को क्षमा मात्र ही नही किया, अपितु राज्य से पलायन कर जाने हेतु धन भी प्रदान किया । किन्तु वह तो था निमित्त मात्र । षडयत्र के सूत्रधार तो कुछ बडे लोग थे ।

रोग बढ़ता ही गया

स्वामी जी जगन्नाथ द्वारा दिया दूध पीकर सो गए तो रात्रि मे ही भयंकर उदर शूल से पीडित हो उठे । वे जागे और उन्होने तीन बार वमन किया । कुल्ले कर कर के देव दयानन्द ने सोने का प्रयास किया । किन्तु वेदना के फलस्वरूप उनकी आँख न लग पाई । उदर शूल कम न हुआ व हृदय मे घबराहट भी बढती गई । कण्ठ सूखने लगा और दस्तो का क्रम भी आरम्भ होगया । सर्व प्रथम डा० सूर्यमल ने उन्हें दवाई दी और फिर सहायक सर्जन ने । किन्तु दस्तो की सख्या बढती ही गई और हृदय मे घबराहट भी । कहा जाता है कि महर्षि की इच्छा के विपरीत सहायक सर्जन ने उपचार आरम्भ किया ।

बताया जाता है कि यह सहायक सर्जन डा० अली मरदान नन्हीं जान का

दीवाना था और चाटुकार भी । महर्षि की दुर्बलता बढते-बढते स्थिति अनियंत्रित हो गई तो स्वामी जी को आबू पर्वत पर भेजने की योजना बनी । २१ अक्तूबर को स्वामी जी को पालकी द्वारा आबू पर्वत पर पहुँचाया गया । मार्ग मे ही अस्पताल के चिकित्सक डा० लक्ष्मणदास स्थानान्तरित होकर आबू से अजमेर जा रहे थे कि उन्होने पालकी मे लेटे एक काषाय वस्त्रधारी सन्यासी को देखा और पूछताछ करने पर जब उन्हे विदित हुआ कि वह तो सुप्रसिद्ध सन्यासी देव दयानन्द हैं तो आपने उनकी नाडी देखी और उन्हें मोनिया की थोडी थोड़ी मात्रा तीन बार दी। इस औषधि के फलस्वरुप अचेत महर्षि की चेतना लौटी और उन्होंने लेटे लेटे नेत्र खोले और बोले "मुझे किसी ने अमृत दिया है ।" डा० लक्ष्मणदास ने भी निश्चय कर लिया कि चाहे नौकरी रहे या जाए, वे स्वामी जी की चिकित्सा करेंगे और वे भी महाराज के साथ ही आबू पर्वत लौट आए । उनकी चिकित्सा से स्वामी जी को काफी लाभ भी हुआ और उनका उदरशूल शान्त हो गया और दस्त बन्द हो गए। २४ अक्तूबर को महाराज को निद्रा भी आगयी ।

ऋषि की परहित चिन्ता

राजस्थान के मुख्य चिकित्सा अधिकारी कर्नल स्पेन्सरकी आज्ञानुसार डा० लक्ष्मणदास को अजमेर जाना था, किन्तु वे स्वामी जी की सेवा मे लगे रहना चाहते थे। उन्होने दो मास के अवकाश की प्रार्थना की, परन्तु कर्नल ने उसे स्वीकार न किया । इस पर उन्होने सेवा से त्यागपत्र लिख दिया, किन्तु देव दयानन्द ने त्यागपत्र फाड कर डा० लक्ष्मणदास को अजमेर जाने का आदेश दिया। यह था देव दयानन्द का परहित चिन्तन । अन्तत डा० लक्ष्मणदास ने पुनः कर्नल को त्याग पत्र भेजा, किन्तु उसे अस्वीकार करते हुए स्पेन्सर ने कहा कि तुम चिन्ता न करो, मैं स्वय तुम्हारे गुरू (महर्षि दयानन्द) की चिकित्सा करूँगा ।"

कर्नल की चिकित्सा स्वामी जी के अनुकूल नही आई और रोग पुन उग्र हो गया। यद्यपि महर्षि शरीर की इस विषम स्थिति मे भक्तजनो को कष्ट न देना चाहते थे किन्तु भूपालसिह व श्री सेवकराम कर्षनदास आदि के अनुरोध पर २६ अक्तूबर को स्वामी जी ने आबू पर्वत से प्रस्थान किया और अगले दिन चार बजे ब्राह्म मुहूर्त मे अजमेर पहुँचे। वहा आगरा दरवाजे के समीप स्थित भिनाई हाउस मे उनके विश्राम की व्यवस्था की गई ।

डा० लक्ष्मणदास ने पुन चिकित्सा आरम्भ की, किन्तु स्वास्थ्य मे उतार चढाव दीखते ही रहे । अन्ततः देव दयानन्द को आभास हो गया कि अब इस देह के त्याग की घडी सन्निकट है । सारे शरीर मे विष का प्रभाव व्याप्त हो



विष देने वाले पाचक जगन्नाथ को—क्षमादान देते हुए : दयालु दयानन्द



धरती से विदा लेते हुए . मृत्युञ्जय दयानन्द

चुका था। छाले भी फैलने लगे थे। दीपावली से दो दिन पूर्व प० गुरुदत्त एम० ए० और ला० जीवनदास भी महाराज के दर्शनार्थ लाहौर से यहां पहुँच गए तो उदयपुर से मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या भी उनका कुशल-क्षेम जानने के लिए आए।

कार्तिक अमावस्या (३० अक्तूबर, १८८३) को डा० लक्ष्मणदास ने महाराज के जीवन की सब आशाए छोड दी। अजमेर के सिविल सर्जन डा० न्यूमैन बुला लिए गए। उन्होने स्वामी जी की अवस्था देखकर कहा . ये बड़े साहसी तथा सहनशील हैं। इनकी नस नस और रोम रोम मे रोग का विषैला कीडा घुसकर कुलबुलाहट कर रहा है, परन्तु ये प्रसन्न चित्त हैं। ऐसे रोग में भी जीते रहना इन्ही का काम है।

जब डा० लक्ष्मणदास ने उन्हे बताया कि ये महापुरुष स्वामी दयानन्द हैं तो उन्हे अत्यधिक शोक हुआ। एक अन्य मुस्लिम वैद्य पीर जी ने भी स्वामी जी की सहनशीलता देखकर दातो तले अगुली दबा ली।

महाप्रयाण

यद्यपि आज के दिन दशा अधिक गम्भीर थी, किन्तु स्वामी जी स्वय को कुछ अच्छा अनुभव कर रहे थे। ११ बजे चार जनो की सहायता से उठकर शौच से निवृत्त हुए। उस समय श्वास की गति तीव्र थी। भक्तजनो के प्रश्न करने पर आप बोले एक मास के उपरान्त आज का दिन आराम का है। जब लाला जीवनदास ने पूछा . आप कहां हैं, तो महाराज बोले ईश्वरेच्छा मे।

अपराह्न दो सौ रुपये और दो दुशाले मगवाकर कहा—ये आत्मानन्द और भीमसेन को दे दो।

सुदूर प्रदेशो से आए सभी ऋषिभक्त शोकविह्वल थे। वे श्रद्धा-भरी भावना सहित महाराज के समक्ष खडे हो गए। स्वामी जी ने सभी पर कृपा दृष्टि डाली। मानो मौन उपदेश दे रहे हो कि भक्त पुरुषो! धैर्य और साहस रखो। अधीर न होओ। उदास होने से क्या लाभ ? यह शरीर तो नाशवान् है।

महाराज का शान्त मुखमण्डल, किसी शोक या खेद का चिह्न नही। न कोई आह न कराह। उसी समय अलीगढ से महाराज के भक्त शिष्य श्री सुन्दरलाल भी आ गए।

५ बजे के पश्चात् स्वामी जी ने समागत भक्तजनो को आदेश दिया कि वे उनके पीछे खडे हो जाएँ और कहा कि सभी द्वार और खिडकिया खोल दो। फिर पूछा—आज कौन सा मास, पक्ष और दिवस है ?

एक भक्त ने उत्तर दिया भगवन्, आज कार्तिक मास, अमावस्या और

मगलवार है। यह सुनकर स्वामी जी ने ऊपर दृष्टि डाली। फिर चतुर्दिक् ज्योतिपूर्ण दृष्टि से निहारा और वेदमत्रो का पाठ किया। तदुपरान्त सस्कृत मे ईश्वर स्तुति की। प्रभु गुणगान मे रत होकर गायत्री मत्र का उच्चारण किया और शान्त समाधिस्थ हो गए। पुन नेत्र खोले और ओ३म् का उच्चारण कर बोले हे दयामय, सर्वशक्तिमन् ईश्वर ! तेरी यही इच्छा है, तेरी यही इच्छा है, तेरी इच्छा पूर्ण हो। अद्भुत है तेरी लीला।

इन शब्दो का उच्चारण कर स्वय करवट ली। एक बार श्वास को रोका और पुन सदैव के लिए बाहर निकाल दिया। दीपमालिका का दिन, साय ६ बजे थे। देव दयानन्द इहलीला ममाप्त कर ज्योतिर्मय की शरण मे समर्पित हो गए। भक्तजन निहारते रह गए। पाश्चात्य विज्ञान के विद्यार्थी, ईश्वर के प्रति कुछ कम विश्वास रखने वाले गुरुदत्त विद्यार्थी ने भी महायोगी की यह लीला देखी। गुरुदत्त के मन का अन्धकार नष्ट हो गया। दिव्य ज्योति का अन्त प्रवेश हो गया और वे आज से पूर्ण आस्तिक हो गए। भक्तजनो के नेत्र अश्रुपूर्ण थे। इस विदाई के दृश्य से उनके हृदयो मे एक अद्भुत ज्योति का प्रवेश हो रहा था। उनके लिये यह दीपमालिका का अमिट प्रकाश था।

देव दयानन्द धरती के घरौदे को त्याग कर प्रभु की अनन्त सत्ता में विलीन हो गए थे। पूर्ण प्रभा सहित भारत के गगन पर चमका यह महान् नक्षत्र भावी पीढियो का पथ आलोकित कर अपनी कीर्ति कौमुदी से अगजग मे एक अमर सुगध और एक शाश्वत ज्ञान का प्रकाश बिखेर गया था।

अगले दिन इस योगिराज के शरीर की अन्त्येष्टि क्रिया की तैयारी हुई। शरीर पर चन्दन का लेप किया गया। उनकी शव यात्रा के साथ सहस्रो जन चल रहे थे—सभी प्रदेशो के तथा सभी वर्गों के। अरथी बहुत बडी थी। उनके शव को उठाने के लिये १६ व्यक्ति लगे थे। श्मशान भूमि मे शव दाह सम्पन्न हुआ। रामानन्द और आत्मानन्द ने यथाविधि अग्न्याधान किया। अग्नि स्पर्श होते ही घृतसिंचित चिता ज्वालमालाओ से आवृत्त हो गई। उस दाह कुण्ड मे चार मन घी, पाच सेर कपूर, एक सेर केसर और दो तोले कस्तूरी डाली गई। चरु और घृत की पुष्कल आहुतियों से हुत श्री महाराज का शव भक्तो के सजल नेत्रों के समक्ष अपने कारणो में लीन हो गया।

स्वामी जी की अस्थियो का चयन करके उन्हे शाहपुराधीश के दिए उद्यान मे गाड दिया गया। यह उद्यान अन्नासागर के किनारे पुष्कर जाने वाली सडक पर है।

विष दान . इतिहासकारों का मत

कतिपय क्षेत्रो में महर्षि को विष दिए जाने के सम्बन्ध मे आज तक शका-

कुचक्रों का घटाटोप उठाया जाता रहा है। किन्तु महर्षि की जीवनी के लेखकों ने, जिनमें श्री हरविलास शारदा, बंगाली विद्वान् देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय, अमर हुतात्मा पण्डित लेखराम और स्वामी सत्यानन्द जी उल्लेखनीय हैं, सर्वसम्मति से यही मत व्यक्त किया है कि महर्षि को विष दिया गया था।

महाराजा सर प्रतापसिंह ने भी अपनी आत्म-कथा मे लिखा है कि स्वामी दयानन्द जी महाराज की मृत्यु का कारण विष ही बना था। उस समय के समाचारपत्रो मे जो समाचार प्रकाशित हुए थे, उनके आधार पर मैक्स मूलर ने भी अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कहा था कि स्वामी दयानन्द सरीखे महान् वेदज्ञ संत का निधन विष से हुआ।

राजस्थान के ख्यातिनामा इतिहासकार मुंशी देवीप्रसाद के पौत्र श्री पुरुषोत्तम प्रसाद गौड ने भी कहा था कि ऋषिवर के हत्यारे कालिया उर्फ जगन्नाथ की मृत्यु १९२२ मे हुई। अन्तिम दिनो मे उसने अपने कुकर्म को स्वीकार किया।

श्री हरविलास शारदा तो महर्षि के महाप्रयाण के समय अजमेर मे ही थे। उन्होंने भी महर्षि की मृत्यु का कारण उन्हे विष दिया जाना ही माना है। इस प्रकार उपलब्ध विवरणो से यह सिद्ध है कि महर्षि का देहान्त विष का परिणाम था और इस कुकृत्य के पीछे अनेक बड़े लोग थे, जो सत्य ज्ञान के प्रचार और प्रसार से भयभीत थे।

इस प्रकार भारत के उद्धारक वेद-ज्ञान के प्रसारक युग प्रवर्त्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती का देहान्त हुआ। एक युग समाप्त हो गया।

जो देदीप्यमान प्रकाश दयानन्द ऋषि ने दिया था उसी के द्वारा देश जागा, स्वतन्त्र हुआ और उदित हुआ नया युग—स्वर्ण युग।

— ००: —

ऋषि दयानन्द के चरणों में श्रद्धांजलियाँ

●●

"स्वामी दयानन्द सरस्वती ने हिन्दू धर्म के सुधार का बडा कार्य किया और जहाँ तक समाज सुधार का सम्बन्ध है, वे बडे उदार हृदय थे। वे अपने विचारो को वेदो पर आधारित और उन्हे ऋषियो के ज्ञान पर अवलम्बित मानते थे। उन्होने वेदो पर बडे-बडे भाष्य किये, जिस से मालूम होता है कि वे पूर्ण विज्ञ थे। उनका स्वाध्याय बडा व्यापक था।" —मैक्समूलर

"ऋषि दयानन्द ने भारत के शक्तिशून्य शरीर मे अपनी दुर्धर्ष शक्ति, अविचलता तथा सिंह- पराक्रम फूँक दिया है।"

"ऋषि दयानन्द उच्चतम व्यक्तित्व के पुरुष थे। यह पुरुष सिंह उनमे से एक था जिन्हे यूरोप प्राय. उस समय भूला देता है, जब कि भारत के सम्बन्ध मे अपनी धारणा बनाता है। किन्तु एक दिन यूरोप को अपनी भूल मानकर उसे याद करने के लिए बाधित होना पडेगा, क्योंकि उसके अन्दर कर्मयोगी, विचारक और नेता के उपयुक्त प्रतिभा का दुर्लभ सम्मिश्रण था। दयानन्द ने अस्पृश्यता व अछूतपन के अन्याय को सहन न किया और उससे अधिक उनके अपहृत अधिकारो का उत्साही समर्थक दूसरा कोई न हुआ। भारत मे स्त्रियो की शोचनीय दशा को सुधारने मे भी दयानन्द ने बडी उदारता व साहस से काम लिया। वास्तव मे राष्ट्रीय भावना और जागृति के विचार को क्रियात्मक रूप देने मे सबसे अधिक प्रबल शक्ति उन्ही की थी। वह नवनिर्माण और राष्ट्रीय सगठन के अत्यन्त उत्साही पैगम्बरो मे से थे।" —फ्रेंच लेखक रोम्याँ रोलाँ

"यह निश्चित है कि शकराचार्य के पश्चात् दयानन्द से अधिक सस्कृतज्ञ, गम्भीर अध्यात्मवेत्ता, आश्चर्यजनक वक्ता और बुराई पर निर्भीक प्रहार करने वाला भारत को प्राप्त नही हुआ।"—मैडम ब्लैवट्स्की

"यह स्वीकार करना पडेगा कि भारत के सास्कृतिक व राष्ट्रीय नव-जागरण मे स्वामी दयानन्द का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। उनकी मान्यताओ और सिद्धान्तो ने एक बार तो हीन भाव ग्रस्त इस जाति को अपूर्व उत्साह से भर दिया।"

—एमर्सन

स्वामी दयानन्द निःसन्देह एक ऋषि थे। उन्होंने अपने में महान् भूत और भविष्य को मिला दिया। वह मर कर भी अमर हैं। ऋषि का प्रादुर्भाव मानव को कारागार से मुक्त करने और जाति बन्धन तोडने के लिए हुआ था। ऋषि का आदेश है—"आर्यावर्त्त, उठ जाग! समय आ गया है, नये युग मे प्रवेश कर। आगे बढ।"

—पाल रिचर्ड

"हमे वेदों के अध्ययन को प्रबल प्रोत्साहन देने और यह सिद्ध करने में कि मूर्तिपूजा वेद सम्मत नही है, स्वामी दयानन्द के महान् उपकार को अवश्य स्वीकार करना चाहिए। आर्य समाज के प्रवर्त्तक वर्त्तमान जाति की मूर्खता और उसकी हानियो के विरुद्ध अपने अनुयायियो को तैयार करने के अतिरिक्त यदि और कुछ न भी करते तो भी वह वर्त्तमान भारत के बडे नेता के रूप में अवश्य सम्मान पा जाते।"

—डा० विन्टरनीज

वर्त्तमान स्वराज्यान्दोलन के कारण स्वामी दयानन्द की गिनती भारत के निर्माताओ मे स्वीकार की जानी चाहिए। स्वामी दयानन्द एक महान् तथा पुण्यशाली व्यक्ति थे। वे भारत के कीर्ति स्तम्भ थे, यह सब को स्वीकार करना पडेगा। उनको खोकर भारत की भीषण शोचनीय हानि हुई है।"

—प्रास बोल्ड

स्वामी दयानन्द एकेश्वरवादी, वेद पर आधारित सिद्धान्तो को माननेवाले, प्रगति समर्थक तथा देशोद्धारक थे।"

—मोनियर विलियम्स

आर्यसमाज समस्त ससार को वेदानुयायी बनाने का स्वप्न देखता है। स्वामी दयानन्द ने इसे जीवन और सिद्धान्त दिया। उनका विश्वास था कि आर्य जाति चुनी हुई जाति है, भारत चुना हुआ देश है और वेद चुनी हुई पुस्तक है।"

—रेमजे मेकडानल्ड

स्वामी दयानन्द के सिद्धान्तो के विषय मे कोई मनुष्य कैसी ही सम्मति स्थिर कर ले, परन्तु यह सबको मान लेना पडेगा कि स्वामी दयानन्द अपने देश के लिए गौरव रूप थे। दयानन्द को खोकर भारत को महान् हानि उठानी पडी है। वे एक महान् और श्रेष्ठ पुरुष थे।

—कांग्रेस के संस्थापक श्री ए०ओ० ह्यूम

आर्यसमाज मे मेरे दादा अर्जुनसिंह भी शामिल थे। फिर भी मेरे पिता सरदार किशनसिंह जी और चाचा सरदार अजीतसिंह जी को महात्मा हंसराज जी तथा लाला लाजपतराय के साथ समाज का कार्य करने का शुभ अवसर प्राप्त रहा है। हम चारों, बल्कि पाचो भाई यानी सरदार भगतसिंह भी डी० ए० वी० स्कूल मे पढ़ते रहे—और हमारे विचार और

मानसिक उन्नति भी बड़ी हद तक आर्यसमाज की देन है। इसलिए तथा और बहुत दूसरे उपकारो के लिये हम आर्यससाज के ऋणी हैं।—**कुलतारसिंह**

"वह दिव्य ज्ञान का सच्चा सैनिक, विश्व को प्रभु की शरण मे लानेवाला योद्धा और मनुष्य व सस्थाओ का शिल्पी तथा प्रकृति द्वारा आत्मा के मार्ग में उपस्थित की जाने वाली बाधाओ का वीर विजेता था और इस प्रकार मेरे समक्ष आध्यात्मिक क्रियात्मकता की एक शक्ति-सम्पन्न मूर्ति उपस्थित होती है। इन दो शब्दो का, जो हमारी भावनाओ के अनुसार एक दूसरे से सर्वथा भिन्न है, मिश्रण ही दयानन्द की उपयुक्त परिभाषा प्रतीत होती है। उनके व्यक्तित्व की व्याख्या की जा सकती है कि वह मनुष्य, जिसकी आत्मा मे परमात्मा है, चर्म चक्षुओ मे दिव्य तेज है और हाथो मे इतनी शक्ति है कि जीवन-तत्त्व से अभीष्ट स्वरूप वाली मूर्ति गढ सके तथा कल्पना को क्रिया मे परिणत कर सके। वह स्वय दृढ चट्टान थे जिनमे दृढ शक्ति थी कि चट्टान पर घन चलाकर पदार्थों को सुदृढ व सुडौल बना सकें।"

—योगी अरविन्द घोष

महर्षि दयानन्द के उपदेशो ने करोडो लोगो को नवजीवन, नव-चेतना और नया दृष्टिकोण प्रदान किया है। उन्हे श्रद्धाजलि अर्पित करते हुए हमे व्रत लेना चाहिए कि उनके बताये मार्ग पर चलकर हम देश को शान्ति और वैभव पूर्ण बनायेंगे।" **—डा० राजेन्द्र प्रसाद (भारत के प्रथम राष्ट्रपति)**

"मैं स्वामी दयानन्द को साम्प्रदायिक नही मानता। मेरे विचार मे वे महान् थे। उनका धर्म विस्तृत था। मैं उन्हे राजनीतिक पुरुष भी मानता हूँ।"

—राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन

स्वामी दयानन्द भारतवर्ष के विख्यात पुरुषो की श्रेणी मे एक उज्ज्वल नक्षत्र थे।"

—एम० रगाचार्य

"स्वामी दयानन्द एक महान् सुधारक और प्रखर क्रान्तिकारी महापुरुष तो थे ही, साथ ही उनके हृदय मे सामाजिक अन्यायो को उखाड फेंकने की प्रचण्ड अग्नि भी विद्यमान थी। उनकी शिक्षाओ का हम सब के लिए भारी महत्त्व है। उन्होने हमे यह महान् सन्देश दिया कि हम सत्य की कसौटी पर कस कर ही किसी बात को स्वीकार करें।"—**सर्वपल्ली डा० राधाकृष्णन्**

"स्वामी दयानन्द वर्त्तमान काल की महान् शक्ति थे। उनका सारा उपदेश वास्तव मे प्राचीन वैदिक धर्म का सच्चा निचोड और तत्त्व था। वे जाति को पुनः जीवन देने वाले तथा अपने प्रभाव और आदर्श दूर तक ले जाने वाले थे। भारतवर्ष मे इस समय आत्मिक ज्ञान प्रकट करने की आवश्यकता है। स्वामी दयानन्द जैसे दूरदर्शी और विचारशील पुरुष ही भारत के सुधार

का मार्ग बता सकते हैं और उसे उन्नति के शिखर पर ले जा सकते हैं।"

—सरोजिनी नायडू

"स्वामी दयानन्द जी अज्ञान दूर करने वालो मे अग्रणी थे। अपनी दिव्यदृष्टि से उन्होने भारत का सास्कृतिक निर्माण किया। स्वामी जी ने राजनैतिक स्वतन्त्रता प्राप्त करने की प्रेरणा दी और उस वातावरण को तैयार किया जिससे प्रेरणा पाकर, पीछे गाधी जी, लोकमान्य तिलक तथा प० नेहरू जैसे नेताओ ने काम करके देश को स्वतन्त्र कराया। स्वामीजी ने भारत मे एक नई व्यवस्था का आधार रखा। कुछ दिनो मे ही उन्होन अनुभव कर लिया था कि भारत को सगठित रखने के लिए एक सयुक्त भाषा आवश्यक है और केवल 'हिन्दी' ही वह काम कर सकती है।"

—यशवन्तराव बलवन्तराव चव्हाण

"महर्षि दयानन्द भारत माता के उन प्रसिद्ध और उच्च आत्माओ मे से थे जिनका नाम ससार के इतिहास मे सदैव चमकते हुए सितारो की तरह प्रकाशित रहेगा। वह भारत माता के उन सपूतो मे से हैं, जिनके व्यक्तित्व पर जितना भी अभिमान किया जाय थोडा है। नैपोलियन और सिकन्दर जैसे अनेक सम्राट् एव विजेता ससार मे हो चुके हैं परन्तु स्वामी जी उन सबसे बढकर थे।"

—खदीजा बेगम, एम० ए०

"महर्षि दयानन्द महान् राष्ट्रनायक और क्रातिकारी महापुरुष थे। उन्होने व्यावहारिक रूप से जीवन के प्रत्येक पहलू मे अपनी छाप छोडी है। स्वामी जी को श्रद्धापूर्वक स्मरण किया जाना चाहिए। उन्होने देश मे धार्मिक, सास्कृतिक और राजनैतिक क्षेत्र मे जो काम किया वह अभूतपूर्व है। उन्होंने जो काम पकडा उसे पूरी तरह से निभाया। उन्होने हिन्दू धर्म का कल्याण किया। वह बड़े दृढ व्यक्ति थे। उन जैसा क्रातिकारी नेता होना विरले ही लोगो का काम होता है। उन्होने ऐसे समय मे देश का नेतृत्व किया जब बुराइयो की ओर सकेत करना भी कठिन काम था। उन्होने हिन्दी के राष्ट्रभाषा होने का घोषनाद किया और छूत-छात तथा जात-पात के विरुद्ध आन्दोलन छेडा। स्वराज्य और स्वदेशी की उन्होने ऐसी लहर चलाई, जिससे इण्डियन नेशनल काग्रेस के निर्माण की पृष्ठभूमि तैयार हो गई।"

—लाल बहादुर शास्त्री

"मेरे निर्बल शब्द ऋषि की महत्ता का वर्णन करने मे अशक्त है। ऋषि के अप्रतिम ब्रह्मचर्य, सत्य सग्राम और घोर तपश्चर्या के लिए अपने हृदय के पूज्य भावो से प्रेरित होकर मैं उनकी वन्दना करता हू। मैं ऋषि को शक्ति-सुत अर्थात् कर्मवीर योद्धा समझ कर उनका आदर करता हूँ। उनका जीवन राष्ट्र निर्माण के लिए स्फूर्तिदायक, बलदायक और माननीय है।

"दयानन्द उत्कट देशभक्त थे, अत मैं राष्ट्रवीर समझकर उनकी वन्दना करता हूँ।" —साधु टी० एल० वास्वानी

"वह इतने अच्छे विद्वान् आदमी थे कि प्रत्येक धर्म के अनुयायियों के लिए सम्मान के पात्र थे।" —सर सैयद अहमद खाँ

ईसाइयत और पश्चिमी सभ्यता के मुख्य हमले से हिन्दुस्तानियो को सावधान करने का सेहरा यदि किसी व्यक्ति के सिर बाँधने का सौभाग्य प्राप्त हो तो स्वामी दयानन्दजी की ओर इशारा किया जा सकता है। १९वी सदी मे स्वामी दयानन्द जी ने भारत के लिए जो अमूल्य काम किया है उससे हिन्दू जाति के साथ-साथ मुसलमानो तथा अन्य धर्मावलम्बियो को भी बहुत लाभ पहुँचा है।" —पीर मुहम्मद यूनिस

"स्वामी दयानन्दजी के राष्ट्र प्रेम के लिए, उनके द्वारा उठाये गये कष्टो, उनकी हिम्मत, ब्रह्मचर्य-जीवन और अन्य कई गुणो के कारण मुझे उनके प्रति आदर है। अपने समाज मे उस समय जो-जो त्रुटियाँ, कुरीतियाँ वहम, अज्ञानता और बुराइयाँ थी स्वामीजी ने उनको दूर करने के लिए बल लगाया। यदि स्वामीजी न होते तो हिन्दू-समाज की क्या हालत होती, इसकी कल्पना भी कठिन है। आज देश मे जो भी कार्य चल रहे है उनका मार्ग स्वामीजी वर्षों पूर्व बना गये थे। शताब्दियो मे ऐसे विरले महापुरुष मिलते हैं। समाज मे जब बुराइयाँ घर कर जाती हैं, तब ईश्वर ऐसी विभूतियो को भेजता है। ऐसे महापुरुष कभी मरते नही, अमर होते हैं। उनका जीवन हमारे लिए आदर्श बन जाता है।" —सरदार वल्लभभाई पटेल

"स्वामी दयानन्द ने पददलित भारत का पुनरुत्थान किया, राष्ट्र को नवजीवन का सन्देश दिया। उन्होने सामाजिक क्रान्ति की, अन्धश्रद्धा को दूर करने का प्रयत्न किया और राष्ट्र का निर्माण किया।"

—मोरारजी देसाई

"स्वामी दयानन्द सरस्वती वर्त्तमान भारत के सर्वप्रथम महान् निर्माता थे। उनकी विद्या अगाध थी और चरित्र महान् था। परन्तु सबसे बढ़कर उनकी दृष्टि उस दृष्टि से कही अधिक स्वच्छ और विशाल थी जो साधारणत· राष्ट्र निर्माता को प्राप्त रहती है। आज के सुधरे हुए हिन्दू धर्म मे, हिन्दू जाति की मनोवृत्ति की प्रबलता मे और महात्मा गाधी की कार्य प्रणाली मे हम स्वामी जी की निर्भ्रान्त दृष्टि और राजनैतिकता के प्रभाव को देख सकते हैं। नि सन्देह उनकी स्मृति भावी भारत की बपौती को समृद्ध करती रहेगी।"

—के० एम० मुंशी

"हमे ऋषियो की सतान होने का सौभाग्य प्राप्त है और इसके लिए

हम गर्व करते हैं तो कहना होगा कि ऋषि दयानन्द से बढकर हमारा उपकार इधर किसी भी दूसरे महापुरुष ने नही किया, जिन्होने स्वय कुछ भी न लेकर हमे अपार ज्ञान-राशि वेदो से परिचित करा दिया।"

—महाकवि सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

"महर्षि दयानन्द स्वाधीनता सग्राम के सर्वप्रथम योद्धा और हिन्दू जाति के रक्षक थे। उनके द्वारा स्थापित आर्यसमाज ने राष्ट्र की महान् सेवा की है और कर रहा है। स्वतन्त्रता के सग्राम मे आर्यसमाजियो का बडा हाथ रहा। महर्षि जी का लिखा अमर ग्रथ 'सत्यार्थप्रकाश' हिन्दू जाति की रगो मे उष्ण रक्त का सचार करने वाला है। 'सत्यार्थप्रकाश' की विद्यमानतामे कोई विधर्मी अपने मजहब की शेखी नही मार सकता।"

—स्वातन्त्र्यवीर सावरकर

"ऋषि दयानन्द ने भारतवर्ष के वृक्ष का जल सिंचन किया था। उनके शुभ प्रयास से विविध प्रकार के स्वादिष्ट फल मिले और मिलेंगे। स्वामी जी ने युवको के हृदय मे त्याग, परोपकार और देश भक्ति की ज्योति जगाई। हिन्दू जाति की जो उन्नति दिखाई दे रही है उसका श्रेय स्वामीजी को ही प्राप्त है। भारतवर्ष के इतिहास मे स्वामीजी का नाम महान् सुधारको की पवित्र श्रेणी मे स्वर्ण अक्षरो मे लिखा जाएगा।"

—ला० हरदयाल एम० ए०

"स्वामी दयानन्द मेरे गुरु हैं, मैंने ससार मे केवल उन्ही को अपना गुरु माना है। वे मेरे धर्म के पिता है और आर्यसमाज मेरी धर्म की माता है। इन दोनो की गोदी मे मैं पला। मुझे इस बात का गर्व है कि मेरे गुरु ने मुझे स्वतन्त्रता-पूर्वक विचार करना, बोलना और कर्त्तव्य पालन करना सिखाया तथा मेरी माता ने मुझे एक सस्था मे बद्ध होकर नियमानुवर्तिता का पाठ दिया।

—पजाब केसरी ला० लाजपतराय

"गाधी जी से पूर्व महर्षि दयानन्द ने राष्ट्र के लिये महान् कार्य किया। उन्होने भारतीयो को 'स्वराज्य' का मार्ग बताया। ऋषि एक पूर्ण पुरुष थे। भारत के युग निर्माता थे।"

—डा० पट्टाभि सीतारामैया

"महर्षि दयानन्द सरस्वती उन महापुरुषो मे से थे, जिन्होने आधुनिक भारत का निर्माण किया और जो इसके आचार-सम्बन्धी पुनरुत्थान तथा धार्मिक पुनरुद्धार के उत्तरदाता है। हिन्दू समाज का उद्धार करने मे 'आर्यसमाज' का बहुत बडा हाथ है। रामकृष्ण मिशन ने बगाल मे जो कुछ किया, उससे कही अधिक आर्यसमाज ने पजाब और उत्तर प्रदेश मे किया है। यह कहना अतिशयोक्ति पूर्ण न होगा कि पजाब का प्रत्येक नेता आर्यसमाजी

है। स्वामी दयानन्द को मैं एक धार्मिक और सामाजिक सुधारक तथा कर्मयोगी मानता हूँ। सगठन कार्यों मे सामर्थ्य और प्रसार की दृष्टि से आर्य समाज अनुपम सस्था है।

सगठन कार्य, दृढता, उत्साह और समन्वय की दृष्टि से आर्य समाज की समता कोई समाज नही कर सकता।"

—नेताजी सुभाषचन्द्र बोस

"स्वराज्य की कल्पना से कई वर्ष पूर्व स्वामी दयानन्द ने वेद धर्म का प्रचार शुरू किया था। भारत मे दलित जाति को ऊँचा उठाने वाली कोई संस्था है तो वह आर्य समाज ही है। मैंने भारत भर का भ्रमण किया है, मैंने स्थान-स्थान पर देखा है कि जहाँ-जहाँ आर्य समाज का प्रचार है, वहाँ-वहाँ दलित जाति उन्नति कर रही है।" —श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

"भारत मे अग्रेजी प्रभुत्व और पाश्चात्य शिक्षा के प्रवेश के कारण यह खतरा उत्पन्न हो गया था कि एक दिन देश का जीवन और दृष्टिकोण राष्ट्रीयता से शून्य हो जायेगा। यह भी भय हुआ कि प्रतिक्रिया के तौर पर पुरानी रूढियो और पद्धतियो के प्रति उत्पन्न अन्धश्रद्धा, राष्ट्रीय जीवन और चरित्र की उचित उन्नति को रोकने का कारण बन जाय। जाति के जीवन की ऐसी नाजुक घडी मे कार्य-क्षेत्र मे अवतीर्ण होकर आत्मरक्षा का मार्ग दिखाने वाले महापुरुषो मे महर्षि दयानन्द का स्थान बहुत ऊंचा है।

"नि सन्देह यह परम सन्तोष की बात है कि महर्षि के आध्यात्मिक उत्तराधिकारी आर्यसमाज ने धर्म क्षेत्र मे अपना दरवाजा सदा खुला रखा है।"

—श्यामाप्रसाद मुखर्जी

"ऋषिवर! आपकी दिव्य मूर्ति मेरे हृदय पटल पर अब तक ज्यो की त्यो अकित है। मेरे निर्बल हृदय के अतिरिक्त कौन मरणधर्मा मनुष्य जान सकता है कि कितनी बार गिरते-गिरते आपके स्मरण-मात्र ने मेरी आत्मिक रक्षा की है। आपने कितनी गिरी हुई आत्माओ की काया पलट दी, इसकी गणना कौन मनुष्य कर सकता है? परमात्मा के बिना जिनकी पवित्र गोद मे आप इस समय विचर रहे हो, कौन कह सकता है कि आपके उपदेशो से निकली हुई अग्नि ने ससार मे प्रचलित कितने पापो को दग्ध कर दिया है। परन्तु अपने विषय मे मैं कह सकता हूँ कि आपके सहवास ने मुझे कैसी गिरी हुई अवस्था से उठाकर सच्चा जीवन लाभ करने के योग्य बनाया।

मैं क्या था, क्या बन गया और क्या हूँ, यह सब आपकी कृपा का ही परिणाम है।

आप वाणी द्वारा प्रचार करने वाले तत्त्ववेत्ता ही न थे किन्तु जिन सच्चाइयो का आप ससार मे प्रचार करना चाहते थे, उनको क्रिया मे लाकर

सिद्ध कर देना भी आपका ही काम था। भगवान् श्रीकृष्ण की तरह आपके लिए भी तीनों लोकों में कोई कर्त्तव्य शेष नहीं रह गया था, परन्तु आपने भी मानव-ससार को सीधा मार्ग दिखलाने के लिए कर्म की उपेक्षा न की।

भगवन्! मैं आपका ऋणी हूँ। उस ऋण से मुक्त होना चाहता हूँ। इस लिए जिस परमात्मा की असीम गोद मे आप परमानन्द का का अनुभव करते हैं उसी से प्रार्थना कर रहा हूँ कि मुझे आपका सच्चा शिष्य बनने की शक्ति प्रदान करें।"
—स्वामी श्रद्धानन्द

"स्वामी दयानन्द सरस्वती को मैं अपना मार्ग दर्शक गुरु मानता हूँ। उन के चरणो मे रह कर मैंने बहुत कुछ पाया है। उनकी मुझ पर सदैव कृपा रहती थी। स्वामीजी की यह इच्छा थी कि विदेशो मे भी वैदिक धर्म का प्रचार हो, उन्होने मुझे विदेशो मे वैदिक सस्कृति के प्रचार की प्रेरणा दी।"

"मैंने राष्ट्र, जाति तथा समाज की जो सेवा की है उसका श्रेय महर्षि दयानन्द को प्राप्त है। मैंने जो कुछ प्राप्त किया है, उसमे सबसे बडा हाथ उस सर्वहितैषी, वेदज्ञ और तेजस्वी युगद्रष्टा का है। मुझे उस स्वतन्त्र विचारक का शिष्य होने मे अभिमान है।"
—श्यामजी कृष्ण वर्मा

"स्वामी दयानन्द एक ऐसे प्रकाश-स्तम्भ हैं जिन्होने असख्य मनुष्यों को सत्य का मार्ग बतलाया है उनके देश तथा देश की जनता पर किये गए उपकार सदैव अमर रहेंगे।

"महर्षि वर्त्तमान अन्धकार के युग के लिए 'वैदिक सूर्य' थे। मैं अपने को उनका अनुयायी कहलाने मे गर्व अनुभव करता हू। मैं उनके प्रशसको मे हूँ।"
—देवतास्वरूप भाई परमानन्द एम० ए०

"मैं देखता हूँ कि कोई भी हिन्दू जब आर्यसमाज में आता है तो उस विशेषता आ जाती है। उसके अन्दर उत्साह, देशभक्ति, कर्मशीलता और एक प्रकार की अद्भुत स्पिरिट (Spirit) काम करने लगती है।

देश के कामो को ही लीजिए, जब तक और लोग स्वराज्य का स्वप्न देख रहे थे, स्वामी दयानन्द और आर्यसमाज अपनी पुस्तको द्वारा उसका प्रचार करने मे लगे थे। मं प्रसन्नता के साथ कहता हूँ कि असहयोग के युग से पहले लगभग ९० प्रतिशत आर्यसमाजी स्वराज्य के कार्यो मे हिस्सा लेने वाले लीडर थे जबकि अन्य सोसाइटियो के मुश्किल से २-३ प्रतिशत आदमी ही स्वराज्य का काम करते थे।"
—मौलाना हसरत मोहानी

"उनकी मृत्यु से भारत ने अपने योग्यतम पुत्रो मे से एक को खो दिया। हमारा स्वामी जी से पत्रव्यवहार होता था। सचमुच वे एक आला इन्सान ही नहीं, फरिश्ते थे।"
—कर्नल अलकाट

महर्षि दयानन्द द्वारा लिखित ग्रन्थों की सूची

(१) अनुभ्रमोच्छेदन
(२) अष्टाध्यायी भाष्य (१)
(३) अष्टाध्यायी भाष्य (२)
(४) आर्याभिविनय
(५) आर्योद्देश्य रत्नमाला
(६) कुरान हिन्दी
(७) गोकरुणा निधि
(८) गौतम अहल्या की कथा
(९) जालन्धर की बहस
(१०) पञ्च महायज्ञ विधि (सध्या भाष्य) प्रथम स०
(११) पञ्चमहायज्ञ विधि द्वितीय स०
(१२) पोप लीला
(१३) प्रतिमा पूजन विचार
(१४) प्रश्नोत्तर हलधर
(१५) प्रश्नोत्तर उदयपुर
(१६) प्रश्नोत्तर (जगन्नाथ कृत का उत्तर)
(१७) भ्रमोच्छेदन
(१८) मेला चादपुर
(१९) ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका
(२०) ऋग्वेद भाष्य
(२१) यजुर्वेद भाष्य
(२२) वेद विरुद्ध मत खण्डन
(२३) वेदान्तिध्वान्त-निवारण
(२४) शिक्षापत्रीध्वान्त
(२५) व्यवहारभानु
(२६) सस्कार विधि
(२७) सस्कृत वाक्य प्रबोध
(२८) सत्यार्थ प्रकाश—प्रथम स०
(२९) सत्यार्थ प्रकाश—द्वितीय स०
(३०) सत्यासत्यविवेक
(३१) वर्णोच्चारण शिक्षा
(३२) सधि विषय (३३) नामिक
(३४) आख्यायिक (३५) पारिभाषिक
(३६) सौवर (३७) उणादिकोष
(३८) निघण्टु (३९) अव्ययार्थ
(४०) पाणिनि के ग्रन्थ—अष्टाध्यायी धातु-गणपाठ, उणादि गण शिक्षा और प्रातिपदिक गण
(४१) आलकारिक कथा

आनन्द सुधासार दया कर पिला गया ।
भारत को दयानन्द दुबारा जिला गया ॥
डाला सुधार-वारि, बढ़ी बेल मेल की ।
देखो समाज-फूल फबीले खिला गया ॥
खोली कहा न पोल ढके ढोग ढोल की ।
ससार के कुपन्थ मतों को हिला गया ॥
'शकर' दिया बुझाय दिवाली को देह का ।
कैवल्य के विशाल बदन में खिला गया ॥

—नाथूराम शकर

आध्यात्मिक साहित्य

१६ **गायत्री शतक**—प० शिवदयालु आर्य मूल्य २)
इस ग्रन्थ मे १०० गायत्री मन्त्रो की नितान्त प्रभावशाली ढग से आध्यात्मिक व्याख्या की गई है। आध्यात्मिक ज्ञान की उपलब्धि का यह सुलभ माध्यम कही जा सकती है।

२०. **ईश्वर भक्ति**—स्वामी सर्वदानन्द सरस्वती मूल्य १) ४० पैसे
यह ग्रन्थ स्वामी सर्वदानन्द जी के चिन्तन का प्रतिदान है। ईश्वर-भक्ति के सम्बन्ध मे इस पुस्तक को महान् आर्य विद्वान् की अनमोल कृति कहा जा सकता है। ग्रन्थ को पढ़ कर प्रभु से मिलने की प्रेरणा स्वत जाग जाती है।

२१ **माँ गायत्री** तृतीय सस्करण मूल्य १)४० पैसे
इस पुस्तक मे महर्षि दयानन्द, श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, महात्मा आनन्द स्वामी आदि द्वारा गायत्री मन्त्र की व्याख्या पर प्रेरक विचार सग्रहीत हैं। ग्रन्थ प्रत्येक दृष्टि से चिन्तन योग्य है।

२२ **धर्म का मार्ग**—प० सुरेशचन्द्र वेदालकार मूल्य १ रु० ४० पैसे
धर्म क्या है और उसका मार्ग क्या है, यही इस पुस्तक मे स्पष्ट किया गया है। पाकेट साइज मे यह ग्रन्थ प्रत्येक व्यक्ति को धर्म का मर्म समझा सकेगा।

२३. **अमृत-पथ**—पं० दीनानाथ सिद्धान्तालकार सजिल्द मूल्य ५)
दु ख से छूटने के लिए अपना ज्ञान आवश्यक है और जो आत्म ज्ञान कराये वह अमृत है। हम सब प्रभु भक्त अमृत पान करें तो हमारा यह जीवन सफल हो जाये। प्रस्तुत ग्रन्थ मे प० दीनानाथ सिद्धान्तालकार ने अपने अनेक वर्षों के अनुभव का सार प्रस्तुत किया है।

२४. **नारायण अध्यात्म सुधा**—महात्मा नारायण स्वामी जी मूल्य १)
इस ग्रन्थ मे सकल्प और जीवन के अन्त का परिणाम, पाप-पुण्य का विवेचन

वैदिक साहित्य

१ **ऋग्वेद [६ मण्डल]**—महर्षि दयानन्द कृत भाष्य मूल्य ७१)
ग्रंथ १० × १५ इच के ६०४ पृष्ठो मे है। सुनहरी कपडे की जिल्द, वजन लगभग ३ किलो है।

२ **यजुर्वेद-सामवेद भाष्य** पृ० ४८०। साइज १० × १५ इच। वजन लगभग २ किलो। भाष्यकार महर्षि दयानन्द सरस्वती, आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री लागत मूल्य ७१)

३ **अथर्ववेद भाषा भाष्य**। १० × १५ इच के ४५६ पृष्ठ। सुनहरी जिल्द मूल्य ७१)

४ **यजुर्वेद भाष्य महर्षि दयानन्द कृत** सजिल्द २०) कपडे की जिल्द २५)

५. **अथर्ववेद परिचय**—प० विश्वनाथ विद्यामार्तण्ड मूल्य ५)

६ **अथर्ववेदीय चिकित्सा शास्त्र**—विद्यामार्तण्ड स्वा० ब्रह्ममुनि जी, कपडे की सुनहरी जिल्द मूल्य १०)

७ **वैदिक सत्सग पद्धति (हिन्दी) नया सस्करण** सजिल्द मूल्य १), ६५) सैकडा

८. **वैदिक अर्थनीति** श्रीपाद दामोदर सातवलेकर पृ० ३२ (रायल साइज) मूल्य ४० पैसे

९. **वैदिक अर्थशास्त्र परिचय** प० भारतेन्द्रनाथ मूल्य १)

१० **क्या वेद में मांस भक्षण का विधान है ?** लेखक—आचार्य शिवपूजन सिह जी, कानपुर मूल्य १)

११ **वेद और बाइबिल** दीनानाथ सिद्धान्तालकार मूल्य १)

१२ **वैदिक ज्ञान सुधा** प० हरिश्चन्द्र जी वर्मा मूल्य १)

१३ **वैदिक सिद्धान्त—प० यशःपाल सिद्धान्तालकार** मूल्य ३)

१४. **वेदामृत** पृष्ठ ४०० से अधिक मूल्य ५)

१५. **शतपथ ब्राह्मण प्रथम काण्ड**—स्वामी समर्पणानन्द जी मूल्य १५)

१६ **बृहस्पति राज धर्म सूत्र—प० शिवदयालु आर्य** मूल्य १)

१७. **वेदों का यथार्थ स्वरूप—प० धर्मदेव विद्यामार्तण्ड** पृष्ठ ३७६, सजिल्द मूल्य १०)

१८ **वेद ज्योति** चारो वेदो के १००-१०० मन्त्रो का सग्रह मूल्य ४)